ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH & IIJIF
Impact Factor 2.541

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Volume-21 Issue - 4 October-December 2016 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-21 October-December 2016

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Deputy Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
BBD Govt. PG College, Chimanpura

Dr. Pankaj Gupta
Government P.G. College, **Kotputli**

Advisory Board

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume-21 **Issue-4** **October-December 2016**

1.	**नवीनतम विषयों का साक्षात्कार करती मधु कांकरिया की कहानियां** डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी, कोलकात्ता (पश्चिम बंगाल)	1-3
2.	**लोकनायक जय प्रकाश नारायण की पंचायतीराज की अवधारणा** डॉ. सुरेन्द्र सिंह, एटा (उत्तर प्रदेश)	4-6
3.	**भक्त शिरोमणि मीरांबाई** डॉ. देवाराम, पाली	7-12
4.	**स्वामी दयानन्द का 'त्रैतवाद'** संजीव कुमार लवानियाँ, बिलासपुर (छत्तीसगढ.)	13-16
5.	**आम्बेर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि** अशोक कुमार यादव, जयपुर	17-20
6.	**शरद जोशी के व्यंग्य साहित्य में मूल्यविघटन की चिन्ता** डॉ. ऋता दीक्षित, एटा (उत्तर प्रदेश)	21-24
7.	**उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति में परिवर्तन : कारण व परिणाम** डॉ. अमित कुमार, नैनीताल (उत्तराखण्ड)	25-29
8.	**भारत में खाद्यान्न प्रबंधन** डॉ. प्रवीण ओझा, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)	30-32
9.	**भारत में विपक्ष के रुप में कॉंग्रेस की भूमिका (1977 से 2004 तक)** अनिता गुप्ता, जयपुर	33-37
10.	**विवेकानन्द के वेदान्त चिन्तन में ब्रह्म का स्वरुप** डॉ. किरन, एटा (उत्तर प्रदेश)	38-41
11.	**भारत-बांग्लादेश सम्बन्धों पर चुनौतियों का प्रभाव** संगीता सैनी, उदयपुर	42-47
12.	**नागौर के प्राचीन मंदिर एवं मूर्तिकला** संतोष कुमार, जयपुर	48-51
13.	**पूर्व-मध्यकालीन भारत में वैष्णव धर्म एवं समाज** प्रेम सिंह, जयपुर	52-56
14.	**संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्योत्कर्ष के उपादान** डॉ. ऋतु दीक्षित, कासगंज (उत्तर प्रदेश)	57-60
15.	**कोस मीनारो का संरक्षण एवं महत्व** ओम प्रकाश बैरवा, जयपुर	61-64
16.	**राजस्थानी लोकगीतों में पर्यावरण संबंधी चेतना** डॉ. संबोध गोस्वामी, दौसा	65-69

17. बीसवीं शताब्दी के भारत में पर्यावरणीय विधानों का ऐतिहासिक परीक्षण 70-72
डॉ. शुक्ला ओझा, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

18. शिक्षकों की जवाबदेही 73-75
डॉ. अनार सिंह चौधरी, भोपालगढ़ एंव सुनील कुमार, जोधपुर

19. पश्चिमी राजस्थान "सौर ऊर्जा की कुंजी" 76-78
सरोज गोस्वामी, ब्यावर

20. 21 वीं शती के कथा-साहित्य में स्त्री विमर्श 79-81
दर्शना जी. वैश्य, अहमदाबाद (गुजरात)

21. ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (तहसील हल्द्वानी के ऊँचापुल क्षेत्र के ग्राम भगवानपुर जैसिंह के विशेष संदर्भ में) 82-87
डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह एंव गंगोत्री कुटियाल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

22. राजस्थान की राजनीति में युवाओं का मतदान व्यवहार (16वीं लोक सभा के सन्दर्भ में जयपुर एवं जालौर का तुलनात्मक अध्ययन) 88-93
विष्णु कुमार खटुमरा, उदयपुर

23. ब्रिटिश कालीन अजमेर प्रांत की आर्थिक स्थिति 94-96
बनवारी लाल यादव, जयपुर

24. दो विभीषिकाओं के मध्य उत्तर भारत में भाग्यवाद, ज्योतिष और उसका प्रभाव (1030 ई.-1192 ई.) 97-99
डॉ. देशराज वर्मा, फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

25. बीकानेर की हवेलियों का अनुपम स्थापत्य 100-102
डॉ. ऋतुराज, जयपुर

26. पर्यावरण चेतना और संरक्षण : सन्दर्भ एवं प्रवृत्तियां (जैन पुराण एवं ग्रन्थों के सन्दर्भ में) 103-105
डिम्पल शेखावत, जयपुर

27. तोरावाटी क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति 106-109
डॉ. रामसिंह गुर्जर, अलवर

28. **Conserving Biodiversity in Rajasthan: A case study of Todgarh Raoli wild Life Sanctuary, Rajasthan** 110-113
Dr. Rajesh Sharma & Dr. Deepali Sharma, Beawar

29. **Motor Vehicle Accident and Liability : Basis and Types** 114-118
Dr. C. P. Gupta, Jaipur

30. **MGNREGA and Its Position, Progress and Performance** 119-126
Yogendra Kumar, Ajmer & Dr. Mahendra Ranawat, Udaipur

31. **Consideration In A Contract: An Analysis** 127-132
Laxmi Agarwal, Jaipur

32. **Human Rights In India And Judicial Trends** 133-139
Dr. Devendra Kumar Sharma, Jaipur

33. **Claim Settlement in Life Insurance** 140-143
Dr. Chitra Rathore, Jaipur

34. **Contribution of Women in Indian National Movement During Extremist Phase** 144-148
Vikram Jha, Bikaner

नवीनतम विषयों का साक्षात्कार करती मधु कांकरिया की कहानियां

डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी
कोलकात्ता

shodhshree@gmail.com

आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में मधु कांकरिया ने अपना अलग और महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। उनकी कहानियां पैबंद लगे भारतीय समाज पर प्रश्न चिन्ह जड़ती है। एक ऐसी बेबाक कहानीकार जिसने ज़मीनी सच्चाई को बिना लाग-लपेट के उधेड़ा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक इतिहास वह भी है जिसे विभिन्न राजनीतिक पार्टियां अपनी तिकड़मबाज़ी और जन-विरोधी नीतियों के चलते लुका-छिपाकर और ढककर रखना चाहती है, जिसे किसी इतिहास के पन्ने में दर्ज करने से प्रकाशकगण कतराते रहे हैं, उस कालिमामय अतीत के गोपनीय तथ्यों का रहस्योद्घाटन करने में आपकी कहानियों ने ज़रा भी झिझक महसूस नहीं की। मधु कांकरिया की कहानियों को कोई संज्ञा देनी हो तो कहना पड़ेगा बेबाक विद्रोह! बिना किसी कुंठा और पूर्वाग्रह के खुले दिल से चीज़ों को देखना, समझना, स्वीकार हो तो स्वीकार, अस्वीकार हो तो अस्वीकार। बोल्ड भी और ब्यूटीफुल भी।[1] अतीत की वह पीढ़ी जो तड़पती हुई पीड़ा के सागर में डूबकर गुमनामी के अंधेरे में खो गई है, उसे राशनी में लाने का कृतसंकल्प है मधु कांकरिया की कहानियां। सत्तर, अस्सी और नब्बे के दशकों में विभिन्न केंद्रीय व राज्य सरकारों की बेरहमियों की दास्तानें खंगालती हैं आपकी कहानियां। धर्मांतरण से लेकर ब्रेन-ड्रेन तक की गूढ़ समस्यायों ने आपके लेखन-जगत में अपना विशिष्ट स्थान अर्जित किया है। दो जून की रोटी के लिए अमानवीय संघर्ष से गुज़रने वाले पात्र आपकी कहानी में वाणी पाते है। आपकी कहानियां आधुनिक महानगरीय जीवन की भाग-दौड़ में खोने वाली मानवता को दोनों मुठ्ठियों से पकड़ने की कोशिश है। अहिंदी भाषी प्रांत बंगाल के बंगाली समाज को हिंदी जगत में पूरी निष्ठा से आपने अपनी कहानियों के मार्फत प्रतिष्ठित किया है। इस विषय में प्रख्यात आलोचक राजेंद्र यादव ने कहा है-मैं मानता हूं कि भावुक लेखक, संवेदनशील लोगों की कहानियां नहीं लिख सकता। हां, संवेदनशील लेखक भावुक पात्रों को लेकर मानव-मन का सुंदर अध्ययन कर सकता है। वे आगे लिखते हैं -निश्चय ही हिंदी की आज की कहानी अधिक सच्ची संवेदनाओं और अधिक प्रामाणिक अनुभवों को अपनी थीम के रुप में चुनकर अधिक विश्वसनीय परिस्थितियों में उन्हें प्रस्तुत करती है।[2] मधु जी की कहानियों में मनोयोग से डूबा पाठक कल्पना-लोक से उतरकर कब वास्तविकता के कठोर धरातल पर पदार्पण कर जाता है, यह चिन्हित करना कठिन है। सत्तर के दशक में जलपाइगुड़ी के निकट नक्सलबाड़ी गांव में पनपे नक्सलवादी आंदोलन ने एक पूरी पीढ़ी के भविष्य को अधर में लटका दिया। बंगाल की शस्य-श्यामला धरती युवा रक्त-रंजित होकर फिज़ा में उड़नेवाली नारेबाज़ी में बहक गई थी। और अंत में ईशू, लेकिन कॉमरेड जैसी कहानियां नक्सली आंदोलन की ज्वलंत शिखा में स्वाहा होने वाली पीढ़ी की दर्दनाक दास्तान है। सरकारी दमन चक्र की कठोरताओं और अमानवीय जेल-यातनाओं को भोगने वाली पीढ़ी को उक्त कहानी लाल सलाम देती है। लेकिन कॉमरेड कहानी बंगाल के नकारे हुए युवा आंदोलन के इतिहास को शब्दबद्ध करती है जो पाठक को उस डिजेक्टेड इतिहास के पन्ने पलटने कर बाध्य करती है। जेल यातनाओं का इतना मार्मिक और हृदयोद्वेलित वर्णन आधुनिक हिंदी

कहानी संसार में विरला प्रयास है। खाने के लिए दिए भात में कॉकरोच के अंडे, कीड़े, कंकड और फूस को छांट-छांटकर सड़ी गंधाती दाल और काली कड़ी के साथ खाना, एक ही थाली - उसी से हगते वक्त धोना और बाद में साफ कर उसी में खाना, पुलिसवालों के भारी बूटों से पटक-पटककर छाती को रौंदना, रुई के बोरे की तरह लाठियों से घंटों धुनना और बूट, बंदूक की नुकीली नोंक के जान-लेवा प्रहार और अंत में शव को विरुपित कर मामले को रफा-दफा कर देना। यह कहानी ऐसे कई लहू-लुहान होनेवाले उच्च शिक्षित नक्सली युवकों के हृदयविदारक परिणाम की दास्तान है। सुप्त,शोषित, कुचले हुए कृषक वर्ग व दमित श्रमिक वर्ग को उनका अधिकार दिलाने के लिए लेनिनवादी कॉमरेडों ने माओ, लेनिन और चेग्वारा के नक्शेकदम पर चलते हुए तूफानी वेग से जिस महारण की घोषणा की थी, उस रक्ताक्त विप्लव का महज चार सालों में सिकुड़-सिमट जाने के कारणों की कहानी में ज़मीनी पड़ताल की गई है। लेकिन कॉमरेड कहानी भविष्य में भारतीय धरातल पर जन्म लेने वाली प्रत्येक क्रांति की चिंगारी को लिपिबद्ध करने वाली कहानियों का प्रणेता साबित हुई है। और अंत में ईशु ऐसे कॉमरेड के अवसान की कथा है जो मोह भंग की स्थिति से हारकर चरस और हेरोइन के अंधकारमय गलियारे में जान बूझकर भटकने लगता है। क्रांति की मशाल लिए अपना सर्वस्व त्यागने के इच्छुक युवक जब आंदोलन की असफलता में झुलसकर, बांझ होती अपनी उम्मीदें व आशाएं लेकर समाज की तरफ लौटे तब नाकामी ने उन्हें ड्रग्स की नशीली व बदनाम दुनिया का सदस्य बना दिया। एडिक्शन, विद्ड्रॉअल;ड्रग्स न मिलने की स्थिति में उमगा पागलपन और डि-टॉक्सीफिकेशन;नशा मुक्ति के लिए शारीरिक स्तर पर दी जाने वाली चिकित्सा की मर्मांतक स्थितियों को लेखिका ने संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है। नशेबाज विश्वजीत वितृष्णापूर्वक कहता है मुझे तो इस दुनिया में सभी एडिक्ट लगते हैं। किसी को सत्ता का एडिक्शन है, किसी को धर्म का तो किसी को श्रेष्ठता का। यह कहानी नक्सली आंदोलन की असफलता, नशे की गुमनामी व पीड़ा तथा धर्मांतरण के मौलिक कारणों की विश्लेषणत्मक पुष्टि करती है।

विश्वजीत कहानी के अंत में धर्मांतरण के पथ पर अग्रसर होकर पवित्र जल में तीन डुबकियां लगाकर ईशू की ईसाईयत में दीक्षित हो जाता है। लेखिका ने अन्वेषण कहानी की तरह उक्त कहानी में भी धर्मांतरण के कारणों व दिशाओं की तत्वपरक पड़ताल करने का साहसिक कदम उठाया है। हिंदू धर्म की उच्चता व महानता का अपने अनुयायियों को बांधने में नाकामी व ईसाई धर्म का भारतीय समाज व संस्कृति में ढलकर पूरे लचीलेपन व स्वतंत्रता के साथ नए-नए सदस्यों को दीक्षित करने की सफलता के मूल में धर्म के नाम पर आस्था के विखंडन और असुरक्षा के भाव का लेखिका ने साक्षात्कार किया है। धर्मांतरण की चिंता व बहस को नया आयाम देने के लिए वे अपने पात्र विश्वजीत के माध्यम से कहलवाती है - इसलिए मैडम कि आप जैसे लोग अपनी संस्कृति और धर्मांतरण को लेकर बहुत चिंतित रहते हैं। मिथकों, कथाओं, स्वप्न-बिंबों और देवी-देवताओं की यह उच्च संस्कृति। काश, आप त्रिशूल बांटने की बजाय लोगों के दुख बांट पाती। काश, आप यह समझ पातीं कि जो संस्कृति गिरे हुए को उठा नहीं सकती, उन्हें क्षमा नहीं कर सकती, पीड़ितों के खून, थूक एवं मवाद से अपना आंचल गंदा नहीं कर सकती वह धीरे-धीरे खोखली हो जाती है और एक समय आता है जब समय की रेत पर उसके पद-चिन्ह मिट जाते हैं।[3]

धर्म का मूल उद्देश्य पीड़ितों का दुख बांटना है या आचरण व आडंबर को द्योनाघ अनुयायी की मौलिक आवश्यकता को नकारकर केवल सांस्कृतिक विरासत के नाम पर उसके ज़ख्मों को सहलाने की धांधली कब तक चल सकती है ऐसे घोर प्रतिबद्ध व निषिद्ध प्रश्नों का दबंग उजागर आपकी कहानियों को अन्य दस रचनाकारों की कृतियों से अलग स्थान दिलाती हैं। कदाचित इसलिए मधुरेश जी लिखते हैं- महिला कथाकारों की दुनिया उस ढर्रेवादी दुनिया से बहुत भिन्न और व्यापक है जिसे अब तक महिला लेखन के नाम से जाना जाता रहा है। इसमें सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि अपने अंतर्वस्तु के विस्तार की चिंता उसमें सब कहीं परिलक्षित की जा सकती है।[4]

लेखिका भरी दोपहरी के अंधेरे कहानी में झारखण्ड के एक छोटे-से गांव मधुबन में स्थित जैनियों के शिखर जी नामक तीर्थस्थान व भव्य मंदिरों को कथा का आश्रय बनाती हुई वहां के आदिवासियों के दुरुह एवं कष्टप्रद जीवन के खालिस चित्र आंकती है। लेखिका ने आर्थिक तंगी, भूख-बीमारी, असहसयता, हाड़-तोड़ परिश्रम के एवज में 350 रुपए पाने वाले डोलीवालों के जीवन-संघर्ष की सच्चाई को उघाड़ा है। उन्होंने स्वयं को मृत्यु-मुख पर पल-पल पैर धरते डोलीवालों की कठिन जिजिविशा, जीवन व शरीर को दांव पर लगाकर यात्रियों की निष्ठुरता तथा सरकार एवं मंदिर कमेटी की अवहेलना, धमकी व शोषण के शिकार इन निस्सहाय गरीब डोली वालों के बहुत करीब अवस्थित किया है। साथ ही जैन धर्म के कठिनतम नियमों का अनुगमन करने वाले साधुओं की सांसारिक और सामाजिक दायित्व से मुंह चुराने की वृत्ति की कड़ी आलोचना की है। मानवीय कष्ट को दरकिनार कर केवल धार्मिक आडंबर को पालने के ढोंग पर मधु जी ने वज्र प्रहार किया है। स्वयं जैन धर्मानुयायी होने के बावजूद अत्यंत श्रद्धेय दिगंबर जैन मुनियों का लेखिका ने सामाजिक बहिष्कार करने का तथा कथित अपराध किया है क्योंकि वे अमानवीयता और निष्ठुरता की कगार पर घसीटते हुए जीवन-यापन करने वाले डोली वालों का साथ देती है।

''रहना नहीं देश बिराना है'' एक अत्यंत मार्मिक कहानी है जिसमें मधु जी चौरासी के दंगा-पीड़ित सिक्खों को अपना सहानुभूतिपूर्ण समर्थन देती हैं। साथ ही भाई-भतीजावाद, सियासी तिकड़मबाजी एवं प्रतिभा का नैतिक शोषण करने वाले इस देश को नकारने वाली प्रति भावान युवा पीढ़ी के पलायन व विदशों में जड़ जमाने के फलस्वरुप पनपे ब्रेन-ड्रेन की समस्या के मौलिक कारणों को खंगाला

है। कहानी का युवा नायक दीपज्योति देश त्यागने व विदेशों में बसने संबंधी प्रश्न का उत्तर यों देता है-यहां पर तो प्रतिभा के साथ-साथ गॉडफादर चाहिए या शार्टकट के हथकंडे और तिकड़मबाज़ी। खालिस प्रतिभा और मेहनत यहां टके सेर बिकता है। यहां अंग्रज़ों से लेकर आज तक सियासत की सारी उर्जा, कार्य-पद्धति, चेष्टा एक फार्मूला से निकलती है और वह है क्रियेट दी माइनोरिटी, मेक इट मिलिटेंट, डिवाइड दि कंट्री एवं रुल द वर्ल्ड[5] राजनीतिज्ञों द्वारा देश की युवा शक्ति का शोषण व ब्यूरोक्रेसी के पेचीदे चैनलों में दम तोड़ती युवा प्रतिभा के मानसिक उत्पीड़न, दर्द और हताशा को पूरी लेखकीय निष्ठा से मधु जी व्यक्त करती हैं।

निस्संकोच रुप से यह माना जा सकता है कि मधु जी ने हिंदी कहानी-संसार को वे ज्वलंत व निषिद्ध मसले प्रदान किए हैं जिन्हें कुछ दिनों की अखबारी बहसबाजी के बाद दफना दिया जाता है। इन राख होते विषयों के भीतर नई समस्याओं व विडंबनाओं की चिंगारी सुलग रही है जिसे आपकी लेखकीय व मानवीय चिंता ने पाठकों के बीच में नए आयाम जोड़ने के लिए उभारा है। धर्मांतरण, नक्सलवाद, आदिवासी शोषण, मेधा-पलायन के अति संवेदनशील मुद्दों को हमारे बहस के केंद्र में लाने के महत उद्देश को पूर्ण करती हुई मधु कांकरिया की कहानियां हिंदी कथा-साहित्य में निश्चित तौर पर अपना विशिष्ट व महत्वपूर्ण स्थान दर्ज करती हैं। वर्तमान जीवन-संदर्भों के अनेक आयामों को उजागर करनेवाली आपकी कहानियां पाठक की सोच को रचनात्मक दिशा प्रदान करने वाली है।[6]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मधु कांकरिया-भरी दोपहरी के अंधेरे;फ्लैप से रेमाधव पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा,2007*
2. *राजेंद्र यादव -कहानी स्वरुप और संवेदनाश वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2007 छठा संस्करण, पृ - 199-204*
3. *मधु कांकरिया -भरी दोपहरी के अंधेरे, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा, 2007, पृ - 140*
4. *मधुरेश - हिंदी कहानी का विकास सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011 पष्ठ संस्करण पृ- 196*
5. *मधु कांकरिया - भरी दोपहरी के अंधेरे, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा, 2007, पृ - पृ -75*
6. *रामचंद्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, ससम संस्करण, पृ-347*

लोकनायक जय प्रकाश नारायण की पंचायतीराज की अवधारणा

डॉ. सुरेन्द्र सिंह
व्याख्याता,जे.एल.एन. (पी.जी.) कॉलेज, एटा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

भारत में जैसी लोकतन्त्रीय व्यवस्था की कल्पना जयप्रकाश नारायण ने की है उसे सामुदायिक पंचायती या निर्दलीय लोकतन्त्र कहा जा सकता है। उन्होंने कहा कि पंचायत व्यवस्था की स्थापना का उद्देश्य लोकतन्त्र को चौड़ा आधार प्रदान करना नहीं, अपितु विकास कार्यों में जनता से सहयोग लेना है। उनका मत है ग्राम पंचायत व्यवस्था तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम जिस रुप में भारत में संचालित किये जा रहे है, उनकी सबसे बड़ी कमी यह है कि उनके अन्तर्गत जनता में सामुदायिकता की सच्ची भावना उत्पन्न करने का प्रयास नहीं है। विकास की योजनायें ऊपर से या बाहर से ग्रामीण जनसमूहों पर लादी जाती हैं। उसका नियोजन तथा कार्यान्वयन उन नौकरशाही के द्वारा कराया जाता है, जो स्वयं समुदाय से पृथक् है। अत: जयप्रकाश जी का सुझाव है कि ग्राम पंचायतों के अधिकारियों के निर्वाचन गाँव की जनता की आम राय द्वारा एक निश्चित छोटी अवधि के लिये किये जायें। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति बच्चों की अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा, रोगों की रोकथाम, कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन सम्पूर्ण गाँव समुदाय की आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करना पंचायत का दायित्व रहना चाहिए। जय प्रकाश जी ने इस बात पर बल दिया है कि पंचायती व्यवस्था के प्रति जनता में उत्साह पैदा किया जाये और उसे यह बताया जाये कि यह केवल निम्न स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार का प्रयास ही नहीं बल्कि एक राजनीतिक क्रान्ति है। जिसका जनता के लिए बड़ा महत्व है। पंचायती राज्य का लक्ष्य स्वराज्य को जनता तक पहुँचाना है।[1]

स्वतन्त्र भारत में गाँव में पंचायत की स्थापना तथा बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल द्वारा सुझाई गई लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था के कार्यान्वयन को जयप्रकाश जी ने पंचायती राज की दिशा में एक स्वागत योग्य कदम कहा है। लेकिन उन्होंने पंचायती राज की सफलता के लिए निम्न सुझाव भी दिये हैं-

1 जन-प्रशिक्षण

जयप्रकाश जी के अनुसार पंचायत के लोगों को अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए। समाज सेवा और ग्राम-विकास के कार्यों में लगे लोगों द्वारा यह कार्य अच्छी तरह किया जा सकता है।[2]

2 राजनीतिक दलों का अलग रहना

जयप्रकाश जी का मत है कि पंचायत के क्षेत्र को राजनीतिक दलों के खिलवाड़ का मैदान नहीं बनाया जाना चाहिए और न पंचायतों के निर्वाचनों में दलीय उम्मीदवार खड़े किये जाने चाहिए।[3]

3 सत्ता का वास्तविक हस्तान्तरण

पंचायती व्यवस्था का जयप्रकाश के अनुसार उस समय तक कोई महत्व नहीं है। जब तक कि वे सत्ता का वास्तव में उपयोग नहीं करते। हमें जनता पर विश्वास करना होगा। सत्ता के अभाव में कोई भी उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सकता।[4]

 ISSN 2277-5587

पंचायती राज में प्रशासन के नीचे स्तरों ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला परिषद् और जिला परिषद् पर उन सब कार्यों का करने का पंचायतों को अधिकार होना चाहिए, जो उनकी क्षमता के अनुकूल हो। पंचायतों पर जिलाधीश का असीमित नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। जयप्रकाश के शब्दों में यदि पंचायतों को सत्ता का हस्तान्तरण वास्तविक है तो जिला मजिस्ट्रेट गायब हो जायेगा।' उसकी स्थिति राज्य के गवर्नर की तरह हो जायेगी।

4 उपयुक्त साधन

पंचायती संस्थाओं को अपने कार्यों को पूरा करने के लिए नियन्त्रण के साधन होने चाहिए। यदि साधनों पर राज्य सरकार का नियन्त्रण रहता है तो सत्ता का हस्तान्तरण नाम मात्र का होगा। जयप्रकश जी ने भूराजस्व एकत्रित एवं निर्धारित करने के अधिकार पंचायती संस्थाओं को प्रदान करने का सुझाव दिया था। अन्य आय के साधन भी पंचायती व्यवस्थाओं को प्राप्त होने का परामर्श दिया।[5]

5 अपने कर्मचारियों पर वास्तविक नियन्त्रण

पंचायतों के प्रति उनके कर्मचारी उत्तरदायी होने चाहिए और पंचायतों को उन पर वास्तविक नियन्त्रण होना चाहिए। कर्मचारियों को न्याय प्राप्त करने नौकरी की सुरक्षा अपने दायित्व के सम्पादन में अनुचित हस्तक्षेप से रक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।[6]

6 ग्राम पंचायत मूलाधार

पंचायती व्यवस्था का ग्राम पंचायतें मूलाधार हैं। उसकी लोकतान्त्रिक स्वरुप की शक्ति और ओजस्विता ग्राम पंचायत के लोकतान्त्रिक स्वरुप पर निर्भर करती है। जयप्रकाश जी ने कहा है कि-'पंचायत के किसी स्तर पर जनता पूर्ण योगदान या सहयोग यदि संभव है तो वह ग्राम स्तर पर ही प्रत्यक्ष लोकतन्त्र संभव है। यदि ग्रामीण जनता को गाँव के कार्यों में केवल ग्राम पंचायतों के चुनावों में मतदान के अलावा कोई अधिकार नहीं है, तो ग्राम्य-लोकतन्त्र असंतोषजनक, अधूरा और कच्चा है। ग्राम पंचायत की सफलता और शक्ति ग्राम समुदाय के सदस्यों की पंचायत के मामले में विवेकपूर्ण सतत सहयोग और उत्साह तथा रुचि पर निर्भर है।[7] प्रत्येक ग्राम में जयप्रकाश के अनुसार एक ग्राम सभा होनी चाहिए। इसमें गाँव के सभी बालिग, स्त्री, पुरुष सदस्य होंगे। ग्राम पंचायत, ग्राम सभा की कार्यकारिणी के रुप में कार्य करेगी। ग्राम सभा की बैठक वर्ष में हर तिमाही में होनी चाहिए और उसे बजट सहित सभी महत्वपूर्ण मामलों पर विचार करने तथा सम्पुष्टि और स्वीकृति के अधिकार होंगे। यह ग्राम सभायें सच्चे लोकतन्त्र का आधार होंगी। वे राज्य सरकार के कर्मचारियों और गाँव की दलबन्दी तथा निहित स्वार्थों वाले वर्गों के इशारे पर कठपुतली की भाँति नाचने वाली संस्थाएँ नहीं होगी। यदि ग्राम पंचायतें सरकार का साधन मात्र हैं, उसके अधिकारी ग्रामीण जनता के साथ मनमाना व्यवहार करते है तो ग्राम स्वराज्य का भवन ऐसी कमजोर नींव पर खड़ा नहीं किया जा सकता।[8] ग्राम पंचायत के निर्वाचन बिना संघर्ष के होने चाहिए। जयप्रकारश जी के अनुसार-'यदि पंचायती राज को सफल होना है तो ग्राम पंचायत के चुनावों में प्रतिद्वन्द्विता नहीं होनी चाहिए। गाँव में वैसे ही जाति, वर्ग और परिवारिक विभेद होते हैं और सामूहिक संकल्प का अभाव होता है। गाँव में निर्वाचन में प्रतियोगिता का अर्थ चलते काम को आड़ लगाना होगा। गुट संघर्ष के माध्यम से किया जाने वाले स्वशासन स्वशासन नहीं बल्कि बर्बादी है। गाँव ही एक ऐसी प्रारम्भिक इकाई है जहाँ सब एक दूसरे से परिचित होते हैं। अनिवार्यत: सभी एक रहते हैं और एक साथ ही सुख एंव दुख में भागीदार होते हैं।

7 राज्य नियन्त्रण से मुक्त

पंचायती राज के दैनिक कार्यों पर राज्य सरकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में शासन द्वारा निर्मित नियमों, उपनियमों को विधि की भावना के विपरीत नहीं होना चाहिए और वे सुस्पष्ट होने चाहिए।

पंचायती राज संस्थाओं पर सत्तारुढ दल का नियन्त्रण भले ही हितकर हो लेकिन पंचायती व्यवस्था की दृष्टि से राज्य का नियन्त्रण हितकर नहीं है। यह देखा गया है कि पक्षपात पूर्ण दलीय व्यवस्था के कारण स्थानीय शासन की संस्थाओं को निलम्बित कर दिया जाता है। उनके निर्वाचन स्थगित या निलंम्बित कराये जाते है। एक बार जो सत्तारुढ़ हो जाता है वह सत्ता छोड़ना ही नहीं चाहता। अत: जयप्रकाश जी का सुझाव है कि एक गैर सरकारी स्वायत्त संस्था को पंचायती व्यवस्था के विकास और क्रियान्वयन, निर्देशन और पथ-प्रदर्शन का कार्य सौंपा जाना चाहिए। इस संस्था का प्रधान कोई सरकारी सदस्य नहीं होना चाहिए।[9]

गाँधी जी के बाद विनोबा जी एंव विनोबा जी के पश्चात् सबसे अधिक आकर्षक व्यक्तित्व जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक एंव सार्वजनिक जीवन में अनेक परिवर्तन आये थे। वे एक लोकतन्त्रीय समाजवादी तथा एक सर्वोदयी नेता के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए। उनके विचार महात्मा गाँधी और बिनोवा जी से प्रभावित थे। परन्तु उनका अपना मौलिक चिन्तन भी था। सर्वोदय सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले महात्मा गाँधी कर चुके थे। परन्तु इन्हें कार्य रुप में परिणति करने का अवसर नहीं मिला। गाँधी जी की मृत्यु के बाद उनके सर्वोदयी समाज के विचारों को कार्य रुप प्रदान करने का दायित्व आचार्य विनोबा भावे ने अपने ऊपर लिया और जयप्रकाश विनोबा भावे के आन्दोलन के साथ धीरे-धीरे जुड़ते चले गये। उन्हें ये विश्वास था कि सर्वोदय आन्दोलन के अन्तर्गत राजनीति के स्थान पर लोकनीति की और नौकरशाही के स्थान पर लोक सेवकों की धारणाऐं लोकप्रिय बनायी जानी चाहिए। दलगत तथा शक्ति की राजनीति का अन्त करके दलविहीन लोकतन्त्र की स्थापना होनी चाहिए, जिसका आधार विकेन्द्रीकरण होगा। जयप्रकाश जी के विचारों में 'सम्भवत: लोकतन्त्र का अभ्युदय मानव की स्वशासन की नैसर्गिक कामना के फलस्वरुप हुआ है।' अत: स्वशासन की प्रवृत्ति

ग्राम स्तर से उच्चतम केन्द्रीय स्तर तक स्वशासी संस्थाओं में प्रदर्शित होनी चाहिए। इसके लिए भारतीय सामुदायिक लोकतन्त्र अथवा पंचायती राज के सिद्धान्त एवं आचरण की कमियों को दूर करना आवश्यक होगा।

लोकनायक जी की राजनीति का स्वरुप प्रचलित राजनीति से सर्वथा भिन्न है। उनकी राजनीति में छल, कपट, दम्भ और विनाश के तत्व विद्यमान नहीं है। तो पूर्णरुपेण सात्विक और शुद्ध मनोवृत्तियों से परिचालित है। उनकी आध्यात्मिक मान्यताऐं ही उनकी राजनीति का पक्ष प्रदर्शित करती रही। महात्मा गाँधी मानव समाज में धर्म और राजनीति का निकटतम सहयोग चाहते थे। उनके विचार में, 'मैं धर्म से भिन्न राजनीति की कल्पना नहीं कर सकता। वास्तव में धर्म तो हमारे हर एक कर्म में व्याप्त होना चाहिए। यहाँ धर्म का अर्थ कट्टर पंथ से नहीं उसका अर्थ है विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था में श्रद्धा।[10] यही कारण है कि जब हम महात्मा गाँधी के विचारों को व्यवहारिक रुप प्रदान करते है तो उनके आध्यात्मवाद को नहीं छोड़ सकते किन्तु आधुनिक राजनीति में आध्यात्मवाद का क्या स्थान ? आज नैतिकता कहाँ चली गई इन प्रश्नों का उत्तर देते समय हम महात्मा के सिद्धातों के साथ क्रियान्वयन का दावा कैसे कर सकते है। महात्मा गाँधी का स्वप्न रामराज्य की स्थापना था। रामराज्य का अर्थ है आत्मा का राज्य अर्थात एक ऐसा राज्य कहाँ सर्वोदय सामाजिक आदर्शो का होगा और शासन का आदर्श रामराज्य के समान होगा। महात्मा गाँधी के अनुसार 'रामराज्य का अर्थ होता है आध्यात्मिक आदर्श को सामने रखकर की हुई सर्वश्रेष्ठ समाज रचना।[11] राजनीतिक दृष्टि से रामराज्य पूर्ण जनतन्त्र है। जिसमें सभी विषमताओं का लोप हो गया है। इसका आधार नैतिक अनुशासन तथा स्वावलम्बी ग्राम होंगे। वे पश्चिमी लोकतन्त्र को वास्तविक और सच्चा नहीं मानते। वे चाहते थे कि प्रत्येक गाँव एक छोटा सा गणतन्त्र हो जिसे प्राय: पूरी शक्तियाँ प्राप्त हो। वे राजा की कानूनी प्रभुसत्ता के विरोधी थे क्योंकि यह राज्य को एक केन्द्रीकृत संगठन के रुप में परिणति कर देता है। जबकि गाँधी जी के अनुसार रामराज्य ऐसी विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था है जिसमें जीवन स्वचालित एवं स्वनिर्मित होगा।

लोकनारायण ने पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की एक ऐसी योजना तैयार की थी जिसके आधार पर यह आशा की गई कि इससे लोकशाही का उदय होगा तथा ग्रामीणों को अपने सर्वांगीण विकास के अवसर प्राप्त होंगे। किन्तु व्यवहार में इस योजना की सफलता राज्य कर्मचारियों की मनोवृत्ति तथा राजनीतिक दलों की क्रिया में विद्यमान है। स्वतन्त्रता के उपरान्त कितनी तेजी से हमारे नैतिक मूल्यों का पतन हुआ जिससे हमारा सामाजिक चरित्र भी धुधँला पड़ गया है। फिर राजनीति में भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, ग्रामीण जनता की अशिक्षा तथा कर्मचारियों की संकुचित स्वार्थी मनोवृत्ति इत्यादि दोषों ने इस योजना के लक्ष्य को पूरी सीमा तक प्राप्त करने में असफलता दिलाई है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. *जय प्रकाश नारायण- लोक स्वराज्य, पृ. 11*
2. *जय प्रकाश नारायण- राजनीतिक और सामाजिक विचार पृ. 119*
3. *जय प्रकाश नारायण : लोक स्वराजय पृ. 19*
4. *वही, पृ. 20*
5. *वही, पृ. 21*
6. *जयप्रकाश नारायण, राजनीतिक और सामाजिक विचार, पृ. 120*
7. *जयप्रकाश नारायण : लोक स्वराज्य, पृ. 32*
8. *वही, पृ. 24*
9. *वही, पृ. 24*
10. *हरिजन सेवक, 10 फरवरी, 1940*
11. *वही : अंक 4, भाग 43, पृ. 29.*

भक्त शिरोमणि मीरांबाई

डॉ. देवाराम
व्याख्याता, राजकीय बाँगड़ महाविद्यालय, पाली

shodhshree@gmail.com

जीवन पर्यन्त कृष्णभक्ति में आपलावित रहने वाली मीरां का नाम स्मरण होते ही यकायक मस्तक श्रद्धाभक्ति से झुक जाता है, मन भाव विह्वल हो जाता है, हृदय में पुलक पुलक कर तन्जिका बज उठती है और सहज ही गीत के स्वर प्रस्फुटित होने लगते हैं –

हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरा प्रेम न जाने कोय।
हे री मैं तो दरद दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय।

देखते ही देखते इसका समाधानात्मक स्वर भी मुँह से निकलने लगता है –

मेरे तो गिरधरगोपाल दूसरों न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।

मीरां के गीतों में कहीं उपदेश नहीं है, बनावटीपन नहीं है बल्कि शुद्ध रुप से स्वानुभूत दर्द की, विरह-व्याकुलता की एवं मिलन की सुखद स्मृतियों की अभिव्यजंना है। अत: वे सरल हैं, सहज हैं, मधुर हैं, गेय है तथा सत्य है, सुन्दर है एवं लोक कल्याणकारी हैं। एक बार जिसने सुना, वही उसका दीवाना हो गया। इसी कारण मीरां के पदों ने राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं गुजरात में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में, राजस्थानी एवं ब्रज में ही नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में भी अपनी पेठ बनायी है। साधु सन्तों एवं भक्त मण्डलियों ने भारतीय जनजीवन में भक्त मीरों के पदों को व्याप्त कर दिया।

कहते हैं मीरां ने अपने जीवन में केवल डेढ़ सौ पद ही लिखे परन्तु उन डेढ़ सौ के आधार पर और भी न जाने हजारों पदों की भक्तों ने रचना कर डाली। बस अन्त में लगा दिया – ''मीरा के प्रभु गिरधार नागर'' अथवा ''दासी मीरां लाल गिरधर'' और बन गया मीरां का भजन। कुछ भी कैसे भी हों परन्तु मीरां के भजनों ने सम्पूर्ण भारत के नर नारियों को खूब उद्वेलित किया है, परन्तु दी है एक मात्र शुद्धभक्ति, निर्हेतुक भक्ति, इष्ट के प्रति सम्पूर्ण समर्पण भाव। जब तक भारत में भक्ति एवं अध्यात्म का एक अंश भी शेष रहेगा, भक्त मीरां को भुलाया नहीं जा सकता। वह हमेशा हमेशा स्मरणीय रहेगी। मीरा अमर हो गई। धन्य है यह मरुधरा जहाँ मीरां जैसे महान विभूति अवतरित हुई। मीरां के जीवन के विषय में, उनके जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं विभिन्न स्त्रोतों से सुनायी देती है। जैसे उनके नाम के विषय में, जन्मस्थान के विषय में, तिथियों के विषय में।

मीरां का जन्म स्थान – मीरां के जन्म स्थान के विषय में अनेक धारणाएं हैं। कलानाथ शास्त्री के अनुसार मीरां का जन्म बाजोली में तथा पालन पोषण कुड़की में हुआ। सागरमल शर्मा के अनुसार मीरां का जन्म मरुभूमि में मेड़ता, से 18 मील दूर एक सुरम्य पहाड़ी पर बसे कुड़की ग्राम में हुआ। कुछ लेखक मीरां की जन्मस्थली मेड़ता को बताते है। परन्तु इस सभी धारणाओं में से ऐसा लगता है कि सत्यता के अधिक निकट यह है कि मीरां का जन्म वर्तमान पाली जिले की जैतारण तहसील के अन्तर्गत ग्राम कुड़की गढ़ में राठौड़

रतनसिंह मेड़तिया के यहाँ हुआ था। उस काल में कुड़की ग्राम मेड़ता राज्य में आता था। वर्तमान में मेड़ता नगर नागौर जिले का उपजिला खण्ड है। राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र दूदाजी ने वि. सं. 1518 में मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी से मेड़ता विजय कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था।

राव दूदाजी के चौथे पुत्र रतनसिंह की बेटी थी मीरां। राव दूदा ने जेष्ठ पुत्र वीरमदेव को मेड़ता का उत्तराधिकारी तथा छोटे पुत्र रतनसिंह को कुड़की, बाजोली आदि 12 गांवो के इलाके की जागीर दी। इस आधार पर जोधपुर के संस्थापक मारवाड़ के शासक राव जोधाजी की प्रपौत्री थी मीरां। मीरां राठौड़ वंश की मेड़तिया उपशाखा से थी जिसके प्रवर्तक राव दूदाजी थे।

मीरां की जन्म तिथि- मीरां का जन्म लगभग 1498-99 ई. में हुआ। डॉ. भार्गव ने मीरां का जन्म संवत 1573 अर्थात् 1516 ई. में होना माना है। वहीं बी.एल.गुप्ता व पेमाराम ने 1498 ई. माना है। कलानाथ शास्त्री ने मीरां की तिथि 1504-1563 ई. दी है। सागरमल शर्मा ने वि.सं. 1560 अर्थात् 1503 ई. शरद पूर्णिमा को जन्म तिथि माना है। प्रिय दास के भक्तमाल और मेड़तियाँ री ख्यात के आधार पर डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने 1498-99 ई. की जो तिथि दी है, उसे ही उचित माना जाएगा। यदि हरिराम, नाभादास, प्रियदास आदि की कृतियों से कुछ एतिहासिक निष्कर्ष निकालें तो हम मीरां के काल को 1500 से 1540 ई. के लगभग स्थिर कर सकते हैं, जो ठीक है।

मीरां का बचपन- मीरां के बीचपन में ही जब वे मात्र 3-4 वर्ष की थी, उनकी माताजी वीर कंवरी जो गोगून्दा के सुल्तानसिंह जी झला की पुत्री थी, का देहान्त होने के कारण मीरां की दादी पालन पोषण के लिए उसे मेड़ता ले आई। मीरां का बचपन राजकीय वैभव में ही बीता। दादा दादी सहित सम्पूर्ण परिवार पर आध्यात्मिकता की बड़ी छाप थी। राव दूदा पक्के कृष्ण भक्त थे तथा दादी, ताऊ ताया चाचा चाची, पिता व सभी परिवार जनों में वैष्णव धर्म के प्रति बड़ी आस्था थी। मेड़ता का राजकाज राव वीरमदेव सम्भालते थे। अत: राव दूदाजी का अधिक समय कृष्णभक्ति में ही लगा रहता था। उन्होंने सं. 1532 (1475 ई.) अपने आराध्य श्री चार भुजानाथ का मंदिर मेड़ता में बनवाया जहाँ नियमित रुप से सांयकाल कथा कीर्तन में स्वंय राव दूदाजी अपनी पत्नि तथा मीरां के साथ भाग लेते थे। उनके विप्रगुरु श्री गजाधर जी उन्हें पुराणों की कथा सुनाया करते थे। अत: स्वाभाविक था कि दादा दादी के संस्कारों का प्रभाव मीरां के मन पर भी पड़ा और वह भी कृष्ण भक्ति में लीन रहने लगी। एक बार एक बरात को निकलते हुए देखकर मीरां ने दादी से पूछा - यह बरात किसकी है ? दादी ने बताया - दूल्हे की। इस पर मीरां ने दादी तुरन्त दूसरा प्रश्न पूछा - मेरा दूल्हा कहाँ है ? दादी ने उत्तर दिया - तुम्हारा दूल्हा गिरधर गोपाल है। और तभी से मीरां गिरधर गोपाल को प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गई। ऐसा लगता है मीरां व गिरधर गोपाल का जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध था। मीरां स्वयं भी कहती थी - ''मीरां दासी जनम जनम की, मेरी उनकी प्रीत पुरानी। पूरब जनम की प्रीत हमारी, पूरब जनम की मैं हूँ, गोपिका''।

मीरां का विवाह- मीरां का विवाह 1516 ई. में 18 वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के महाराणा सांगा के जेष्ठपुत्र भोजराज के साथ हुआ। यद्यपि मीरां का मन कृष्ण भक्ति में लीन था। विवाह करने अथवा न करने में उनकी कोई रुचि नहीं थी। परन्तु दादा दादी पर अत्यन्त श्रृद्धा होने के कारण विवाह जैसी पारिवारिक परम्परा को उन्होंने निभाया। यद्यपि उनका विवाह तो स्वप्न में ही गिरधरगोपाल से मानसिक और आत्मिक रुप से पहले ही हो चुका था।

राव दूदा को मीरां बहुत प्रिय थी। अत: उनका विवाह व बहुत ऊँचे राजघराने में करना चाहते थे। इस दृष्टि से चित्तोड़ के महाप्रतापी हिन्दू सम्राट महाराणा सांगा से बड़ा कौन था ? जिन्होंने दिल्ली सुल्तान इब्राहिम लोदी को पराजित किया, गुजरात और मालवा के सुल्तानों को कई बार हराया ऐसे श्रेष्ठ घराने के प्रमुख महाराणा सांगा के जेष्ठ पुत्र भोजराज के साथ मीरां का सम्बन्ध तय किया। दुर्देव से विवाह के पूर्व ही 1515 ई. में राव दूदाजी का स्वर्गवास हो गया। अत: यह कार्य उनके उत्तराधिकारी राव वीरमदेव ने सम्पन्न किया। महाराणा सांगा स्वंय अपने बेटे की बरात लेकर मेड़ता पधारे थे। अपनी छोटी अवस्था में भी मीरा अपनी समवयस्कों से अधिक गम्भीर थी। उन्हें तो हर क्षण, हर स्थिति में और प्रत्येक वस्तु में कृष्ण की ही मधुर छवि दिखायी देती थी। मेड़ता-मारवाड़ का शुष्क क्षेत्र था। मेवाड़ का क्षेत्र हराभरा एवं पहाड़ों से घिरा क्षेत्र था। यहाँ की सुन्दर सुन्दर हरी भरी पहाड़ों की वादियाँ, उनसे कल कल करते बहते झरने मीरां के मन को आकृष्ट करते थे। इस प्राकृतिक सौन्दर्य ने आमों की बगियों में बजती कोयल की कूक ने एवं नदियों, झीलों व तड़ागों के अठखेलियाँ करते जल ने एवं जलधारा के साथ साथ कलरव करते पक्षियों ने मीरां के भक्त मन को अधिक आनन्द विभार किया।

मीरां का वैवाहिक जीवन लम्बा नहीं चल सका। सम्भवतया 1523 ई. के आसपास ही उनके पति भोजराज का देहावसान हो गया। महाराणा सांगा ने दूसरे ही वर्ष मीरां के लिए कुम्भश्याम के मंदिर के पास एक अलग मंदिर व महल बनवा दिया जो आज भी मीरां मंदिर के नाम से विख्यात है। महाराणा सांगा स्वंय भी मीरां का पूरा ध्यान रखते थे। पति के देहान्त से मीरां को बड़ा दु:ख हुआ। पति के रहते मीरां ससुराल में भी पूर्णत: निश्चिंत थी। एक प्राण दो देह सरीखा दोनों में नाता हो गया था। पति के देहावसान से मीरां पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा कहते है दु:ख कभी अकेला नहीं आता। 1527 ई. के खानवा युद्ध में मीरां के पिता रतनसिंह एवं चाचा रायमल महाराणा सांगा की ओर से युद्ध मे लड़ते हुए शहीद हो गये। उसके तुरन्त पश्चात् 1528 ई. में उनके श्वसुर महाराणा सांगा का भी स्वर्गवास हो गया। जल्दी जल्दी और अचानक आए इन आघातों से मीरां को

बहुत दुःख हुआ। उनके समक्ष जगत की असारता एवं जीवन की क्षणभंगुरता स्पष्ट समझ में आने लगी। यहाँ से मीरां के जीवन ने एक करवट बदली। उसने अपने आप को पूर्ण रुप से अन्तरमुखि कर लिया।

विभिन्न उपसर्ग- पति की मृत्यु के पश्चात् परम्परानुसार मीरां अपने पीहर मेड़ता आ गई। अब चित्तौड़ में उसके लिए कोई आकर्षण नहीं रहा। परन्तु वह थी तो चित्तौड़ की पुत्रवधू। उसे चित्तोड़ तो लौटना ही था। दादा व पिता एवं पति व ससुर के देहान्त के पश्चात् मीरां को ढांढस एवं तसल्ली देने वाला न तो पीहर मे कोई था न ससुराल में कोई रहा। महाराणा सांगा का द्वितीय पुत्र विक्रमजीत 1531 ई. में महाराणा की गद्दी पर बैठे। परन्तु उनमें योग्यता का अभाव था तथा राजकाज में विशेष रुचि नहीं थी। केवल मात्र मनोरंजन ही उनका शौक था। महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् राजस्थान के राजाओं का संगठन समाप्त हो गया। धीरे-धीरे मुगलों की सत्ता देश में बढ़ती जा रही थी। ऐसे समय में जोधपुर का शासक मालदेव शक्तिशाली बन रहा था। महाराणा सांगा के उत्तराधिकारी महाराणा रत्नसिंह भी एक योग्य शासक थे परन्तु वे 1528 से 1531 ई. मात्र तीन वर्ष ही जीवित रहे। उसके बाद विक्रमाजीत के राणा बनने के पश्चात् मेवाड़ की पकड़ राजस्थान के राजाओं पर नहीं रही। मारवाड़ का मालदेव कुशल राजनेता होते हुए भी राजस्थान को जोड़ नहीं सके बल्कि उल्टे अपने विरोधियों की संख्या में बढ़ोतरी का कार्य किया। उन्होंने अपने ही रक्त सम्बन्धी और हितेषी मेड़ता के वीरमदेव पर 1533 ई. के आसपास आक्रमण कर मेड़ता पर अधिकार कर लिया। ऐसी स्थिति में वीरमदेव एवं उसके परिवार को मेड़ता से भागना पड़ा तथा अजमेर पहुँच गया। ऐसी स्थिति में मीरां का भविष्य बड़ा अधर में हो गया। वह बिना घर बार की हो गई। चूँकि वह मेवाड़ राजघराने की बहू थी अत: वह मेड़ता से सीधे चित्तौड़ चली गई। चित्तौड़ पहुँच तो गई परन्तु उसके लिए चित्तौड़ राजघराने में किसी के मन में कोई आदर नहीं था, यद्यपि औपचारिकता ही निभायी।

इस समय तक मीरां दुःख सुख अनुभूति से ऊपर उठ चुकी थी। उसने अपने आपको कृष्ण भक्ति में अधिक तल्लीन कर लिया था। इस बार उसने चित्तौड़ किलें में अपना आवास महलों में नाममात्र के लिए एवं अधिकांश समय कृष्ण मंदिर में बना लिया था। दिनभर वह कृष्ण भक्ति में लीन रहने लगी। संध्या एवं रात्रि के समय भजन कीर्तन में व्यस्त रहने लगी। अब मीरां का लगभग सारा समय साधु संन्तों की संगत में कृष्ण के भजन कीर्तन करने में, कृष्ण लीला सुनने सुनाने में ही व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे मीरां की ख्याति बढ़ने लगी और श्रद्धालुओं की अधिकाधिक संख्या मीरां एवं कृष्ण मन्दिर के आसपास जुटने लगी। मीरां का चेहरा शान्त भाव से निर्निमेश रहने लगा। अध्यात्म का तेज ललाट पर स्पष्ट झलकने लगा तथा अपनी आभा बिखेरने लगा था। एक प्रकार का प्रखर तेज का वलय उनके इर्दगिर्द बनने लगा था। ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने अपने प्रभु कृष्ण से साक्षात्कार कर लिया था। आसपास के वातावरण में जन जन की जुबाँ पर मीरां के भजन बिखरने लगे थे। दूसरी और एक अन्य वातावरण भी बन रहा था। मीरां के महलों में एवं बाहर लोगों में मीरां का व्यवहार चर्चा का विषय बनने लगा था। सासांरिक जीवन में राजपरिवार की एक विधवा बिना किसी रोकटोक के साधु सन्तों के बीच में जाने को भजन गाने एवं करताल हाथों में लेकर नाचने व कीर्तन करने को लेकर तरह तरह की अफवाहों से वातावरण गर्म हो रहा था। परन्तु मीरां को इन सबकी परवाह नहीं थी। मीरां का व्यवहार न तो राजरानी की तरह था, न विधवा रानी की तरह था। वह तो एक सामान्य भक्तिमयी महिला की तरह रहती थी जिसे न अपने वस्त्रों के प्रति आकर्षण था न भोजन के प्रति। उसके पास आने वाले प्रत्येक श्रद्धालु भक्त में न कोई छोटा-बड़ा था, न गरीब अमीर था और न नर-नारी था, सभी कृष्ण स्वरुप थे क्योंकि मीरां मे इतनी अधिक संवेदनशीलता जागृत हो उठी थी कि उसे प्रत्येक वस्तु में ही कृष्ण की छवि का आभास होने लगा था। उसे तो केवल और केवल दिखयी देता था कृष्ण ! कृष्ण !! कृष्ण !!!

राजमाता रानी कर्मवती एवं महाराणा विक्रमजीत को मीरां का ऐसा व्यवहार बिल्कुल पसन्द नहीं था। उन्होंने अनेक प्रकार से मीरां को समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल हुए। राजमाता कर्मवती ने एंव राणा विक्रमजीत ने मीरां को तरह तरह से कृष्ण भक्ति से विमुख करने का प्रयत्न किया। एक दिन किसी ने राणाजी को कहा-"मीरां दिन में तो प्रभु के विरह में रोया-गाया करती है, रात्रि में उसके महल में किसी दूसरे पुरुष की आवाज सुनायी पड़ती है। निश्चय ही वह भ्रष्ट हो गई है"। उसी दिन रात्रि में 12 बजे राणाजी तलवार लेकर मीरां के महल पहुँचे। बन्द दरवाजे पर कान लगाकर मीरां को पर पुरुष से बातें करते सुना। दरवाजा तोड़कर अन्दर घुसे तो देखा मीरां तन्मय स्थिति में गिरधर गोपाल की मूर्ति के समक्ष बैठी है, अन्य कोई नहीं है। राणाजी ने गरजकर पूछा - बताओं अन्य व्यक्ति कौन है ? मीरां ने उत्तर दिया - यहाँ मेरे गिरधरगोपाल के अलावा अन्य कौन हो सकता है ? राणाजी लज्जित होकर लौट आए। राणाजी ने मीरां पर दृष्टि रखने के लिए अपनी बहिन ऊदाबाई और दो दासियों चम्पा और चमेली को नियुक्त किया। मीरां पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिए। यहाँ तक की एक बार गिरधर गोपाल की मूर्ति को भी वहाँ से चोरों से उठवा लिया गया। मूर्ति के बिना मीरां के प्राण छटपटाने लगे। भला गिरधर गोपाल यह कैसे देख सकते थे ? वे स्वंय आकर सिंहासन पर बिराजमान हो गया। इस पर भी राणाजी का विवेक नहीं जागो।

गिरधर गोपाल नहीं तो मीरां को ही समाप्त कर दिया जाये यह सोचकर अनेक षड्यन्त्र रचे। राणाजी ने मीरां को जहर दिया, मीरां अमृत समझकर पी गई। सालिग्राम व माला के नाम पर जहरी काली नागिन को दिया, परन्तु मीरां ने उसे भी माला समझकर गले का हार बना दिया और सालिग्राम की सुन्दर मूर्ति को हृदय से लगा लिया। पानी में

डुबाकर मारने का प्रयत्न किया। ऐसे सभी प्रयत्नों से भी मीरां का कुछ नहीं बिगड़ा। मीरां ने सब कुछ शान्त भाव से ग्रहण किया। मीरां का विश्वास था कि "जाको राखे साईयाँ मारि सके नहीं कोय।"

यह निश्चित दिखायी देता है कि मीरां का रवैया एक राजघराने की स्त्री से भिन्न था। वह एक असाधारण महिला थी। मीरां ने एक दु:ख के बाद दूसरे दु:ख को बड़े धैर्य से सहन किया। उसने अपने को कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पित कर अपने आपको अध्ययन, मनन, साधना एवं सत्संग व धर्मचर्चाओं में पूरी तरह डुबो दिया। राणाजी द्वारा दी गई तरह-तरह की यातनाओं का अब मीरां पर कोई असर नहीं होता था बल्कि इन शारीरिक यातनाओं ने उन्हें और अधिक भक्ति भाव में डुबो दिया। क्रमश: उनका जीवन से मोह घटता गया और उनकी निष्ठा भक्तिभाव व सन्त सेवा में उत्तरोत्तर द्रुतगति से बढ़ती गई। राजपूत परिवार में जिनकी स्त्रियाँ जौहर की प्रथा में गौरव अनुभव करती है और जिन्होंने अपने धर्म पर आरुढ़ रहने का सिद्धान्त बना रखा है,पैदा होकर मीरां ने दुनियाँ को यह बता दिया कि वह अपने विचारों पर डटी रहेगी और विपरीत फल होने की आशंका की कभी परवाह नहीं करेगी। कृष्ण के प्रेम के लिए वह किसी अन्य समझौते के लिए तैयार नहीं हो सकती।

वृन्दावन प्रवास- चित्तौड़ के विपरीत वातावरण को देखकर एक दिन मीरां साधु सन्तों के एक दल के साथ वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर गयी जहाँ कृष्ण भक्ति के लिए पर्याप्त वातावरण व साधन उपलब्ध हैं। परन्तु सागरमल शर्मा ने इससे थोड़ा भिन्न लिखा है। वे लिखते हैं कि विपरीत परिस्थितियों को देखकर मीरां ने अपनी बड़ी मां को मेड़ता समाचार भेजा। मेड़ता से वीरमदेव तुरन्त चित्तौड़ आए और मीरां को मेड़ता ले गये। मीरां के जाते ही चित्तौड़ पर संकट के बादल मंडराने लगे। सालभर बाद 1534 ई. में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर भीषण आक्रमण किया। चित्तौड़ का विध्वंस हुआ। 1300 नारियों सहित राजमाता कर्मवती को जौहर करना पड़ा। मेड़ता पर मालदेव का अधिकार हो जाने पर परिवार के साथ मीरां भी अजमेर चली गई तथा वहाँ से 1538 ई. में अपनी अन्तंरग सखी ललिता के साथ आमेर होते हुए वृन्दावन चली गई।

वृन्दावन की एक घटना की जानकारी प्रियदास भक्तमाल से होती है। उसके अनुसार मीरां वृन्दावन के गोसांई जी से मिलना चाहती थी जो उच्चकोटि के सन्त थे। परन्तु उन्होंने यह कहते हुए मिलने से इन्कार कर दिया कि वे स्त्रियों (प्रकृति) से नहीं मिलते। प्रत्युत्तर में मीरां ने कहला भेजा-क्या वृन्दावन में पुरुष रहते हैं ? यदि कोई पुरुष हैं तो वे कृष्ण हैं। रुप गोसांई इस प्रत्युत्तर से निरुत्तर हो गये, क्योंकि पुष्टिमार्ग में कृष्ण की सेवा सखी भव से की जाती है, जहाँ पुरुष और महिला में कोई भेद नहीं रहता। रुप गोसांई (सागरमल शर्मा ने रुप गोसांई का नाम, श्रीजीव गोसांई लिखा है) ने तुरन्त मीरां से भेट की। गोसांई जी को मीरा में उत्कृष्ट साधुत्व की झलक दिखायी दी।

मीरां प्राय: वृन्दावन के मन्दिरों में जाकर वहाँ उपस्थित संतों, भक्तों एवं नागरिकों के समक्ष कृष्ण की मूर्ति के सामने आनन्द विभोर होकर नाचती और गाती थी। न उन्हें लोकनिन्दा की परवाह थी, न उन्हें अन्य कोई बाधा रोक सकती थी। कृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम न किसी सीमा में बंधा था, न किसी भय से आक्रान्त था। मीरां तो कृष्ण भक्ति में इतनी डूब चुकी थी कि अब उसे सीमा में बांधे रखना सम्भव नहीं था। वृन्दावन में वह जिधर निकल जाती, उसका देवियों जैसा सम्मान होता तथा नर नारियों के मस्तक सहज ही उसके चरणों में झुक जाते थे। अब मीरां का स्थान भक्तों में सिरमोर हो गया था। मीरां का विरुद मीरां मां हो गया था।

द्वारिका प्रवास- मीरां को वृन्दावन में रहते काफी समय हो गया। राव वीरमदे ने उसे मेड़ता लौटने का सन्देश भिजवाया। चित्तौड़ महाराणा उदयसिंह ने उससे चित्तौड़ लौटने का निवेदन किया। दोनों का आग्रह निरन्तर बढ़ता देख मीरां वृन्दावन छोड़ सुदूर द्वारिका चली गई। ऐसा लगता है वृन्दावन से द्वारिका जाने की प्रेरणा मीरां को उसके स्वयं गिरधर गोपाल ने ही दी होगी। मीरा के द्वारिका जाने के बाद भी महाराणा उदयसिंह ने अपना आग्रह बराबर बनाये रखा। सरदारों ने भी महाराणा को समझाया कि जब से मीरां ने चित्तौड़ छोड़ा, तभी से चित्तौड़ पर एक न एक संकट बराबर आते रहे हैं। महाराणा ने दो ब्राहमणों को मीरां को लाने के लिए द्वारिका भेजा। मीरां के इन्कार करने पर उन्होंने अनशन की धमकी देकर अनशन पर बैठ गये। कहीं ब्रहमहत्या के पाप से डरकर मीरां चली न जाये, यह चिन्ता रणछोड़जी को होने लगी। मीरां ने कहा - प्रभू ! अब यह मिलना बिछुडना असहय हो उठा है। ऐसी स्थिति में एक दिन मीरां नृत्य-कीर्तन करते करते रणछोड़जी की मूर्ति में समा गई, कृष्णमय हो गई। उपस्थित जन समूह आश्चर्य चकित होकर देखता रह गया। परन्तु जगत की जानकारी के लिए मीरां की चूनड़ी का एक छोर मुँह में लटका बाहर ही रहने दिया। आज भी लोगों को उसके दर्शन करवाये जाते हैं।

मीरां के लीन होने की घटना लगभग 1540 ई. की है। बी.एल.गुप्ता व पेमाराम ने उल्लेख किया है कि मीरां मेड़ता से मथुरा एवं मथुरा से द्वारिका गई, जहाँ 1547 में उनकी मृत्यु हुई। डा. भार्गव मीरा की मृत्यु तिथि संवत 1603 अर्थात 1546 ई. मानते हैं। इसी प्रकार एक घटना मिलती है। मीरां के गरु भक्त रैदास थे। रैदास चमार जाति के थे तथा चमड़े की जूतियाँ गांठकर अपना और अपने परिवार का गुजारा करते थे। ये बड़े उच्चकोटि के भक्त हुए हैं। एक बार मीरां इनके दर्शन करने इनकी झौपड़ी पर गई थी। ज्योही रैदास को भक्तिमयी मीरां के आगमन का अहसास हुआ, वे अपनी झोपड़ी से बाहर निकल आए। जैसे ही दोनों का साक्षात्कार हुआ, दोनों ने ही जहाँ खडे थे वहीं से एक दूसरे को दण्डवत प्रणाम (साष्टांग) किया। दोनों ने एक दूसरे को अपना गुरु बताया। भक्त रैदास गंगा के किनारे बनारस में झोपड़ी बनाकर रहते थे। मीरां बनारस गई हो ऐसी जानकारी कहीं भी उपलब्ध नहीं होती। अत: इसमें कितनी सत्यता है

कहना कठिन है। फिर भी इस पर विश्वास किया जा सकता है क्योंकि दोनों ही भक्त थे।, निअंहकारी थे और भक्त को भगवान समझकर उसकी पूजा करने में विश्वास करते थे। डॉ. ताराचन्द ने उल्लेख किया है कि भक्त रैदास चित्तौड़ गये जहां मीरां बाई से उनकी भेट हुई। रैदास की स्मृति में एक छत्री कुम्भश्याम के मन्दिर, चित्तौड़ किला के एक कोने में बनी हुई बतायी जाती है।

मीरां मध्यकालीन भारत की एक महान सन्त थी। नारी सन्तों में मीरां का स्थान सर्वोच्च है। मीरां ने कृष्ण की भक्ति में सराबोर होकर जो कुछ भी गाया, वही गीत बन गया, भजन बन गया। डॉ. भार्गव लिखते हैं कि मीरां के गीतों में दर्द, विरह, कसक और कचोट है जिन्हें गाते गाते व्यक्ति झूम उठता है, तल्लीन हो जाता है। उन्होंने वियोग - श्रृंगार को लेकर ही अधिक पद रचे हैं जिनमें हृदय की मर्मस्पर्शी वेदना, वियोगिनी की अनुभूति और हृदय की व्याकुलता छिपी है और वह इतनी स्वाभाविक रुप में है कि देखते ही बनता है। मीरां ने अपने पदों (गीतों) की रचना कब से प्रारम्भ की, यह कहना कठिन है। परन्तु उनके गीतों को देखकर स्पष्ट लगता है कि कुछ गीत उस काल के हैं जब मीरां की भक्ति पकने लगी तथा प्रभु से साक्षात्कार के लिए एकाग्रता की तड़प बढ़ने लगी जैसे "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोयी।" जैसे जैसे एकाग्रता बढ़ने लगी तो विरह व्यथा बढ़ने लगीं वह गाने लगी

हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दरद न जाने कोय।
हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय।
नभ मण्डल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होय।
घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय।
जौहरी की गति जौहरी जाने जो कोई जौहरी होय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ वैद मिल्या नहीं कोय।
मीरां की प्रभु पीर मिटे जब बैद साँवरिया होय।

जब मीरां की साधना पक जाती है और कृष्ण का साक्षात्कार हो जाता है तब मीरां के गीतों में सन्तोष झलकने लगता है। वह आल्हादित होकर गाने लगती है - 'माई री मैं तो रामरतन धन पायो" "माई री मैं तो लियो रे गोविन्दों मोल" आदि। इन तीनों सोपानों का कालक्रम तो बताना कठिन है परन्तु ऐसा उनके गीतों का विश्लेषण करने पर अवश्य ध्यान में अता है कि चित्तौड़ में ही मीरां को कृष्ण साक्षात्कार हो गया था, तभी विष, सर्प आदि उपसर्ग भी मीरां ने सहज स्वीकार कर लिये। इससे ऐसा लगता है कि मेड़ता से ही गीतों की रचना प्रारम्भ हो गई थी।

मीरां सगुणोपासक थी। मीरां कृष्ण को ही एक मात्र परमात्मा एवं अविनाशी मानती थी। वे कहती थी यदि कोई सत्य है तो वह एक मात्र मेरा गिरधन गोपाल ही है। उनकी भक्ति ही उनका धर्म था। पुष्टिमार्गीयों एवं सूफी सिद्धान्तों की तरह मीरां कृष्ण को ही एक मात्र पुरुष मानती थी और सांख्यभाव से भक्ति करती थी। मीरां ने भक्ति में दास्यभव को भी अपनाया है। बार-बार गीतों के अन्त में "दासी मीरां लाल गिरधर" कहकर इस भाव को भी प्रकट किया है। मीरां का धर्म प्रभु भक्ति था जिसमें उपकरण, रुढियों, ढोंग एवं दिखावे के लिए कोई स्थान नहीं था। मीरां परम्परागत मिथ्या मान्यताओं से परे था। मीरां के गीतों की एक विशेषता है कि उन्होंने अध्यात्म के उच्च सिद्धान्तों को अत्यन्त सरल एवं सहज बोलचाल की भाषा में जगत के समक्ष रखा। आज गरीब, अमीर, किसान व प्रतिष्ठित व्यक्ति सभी को समान रुप से मीरां के गीत प्रिय है। आज उनके नाम पर मीरादासी सम्प्रदाय अनेंकों भक्तों द्वारा अपनाया गया है। प्रसिद्ध कवियित्री महादेवी वर्मा ने मीरां के पदों के बारे में लिखा है कि मीरां के पद विश्व के भक्ति साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। महाकवि निराला ने तो मीरां को गीत शैली के काव्य की देवी ही माना है।

डॉ. मेनारिया के शब्दों में - "मीरां प्रेम और भक्ति की दीवानी थी, आध्यात्मिक आकुलता और भक्त ह्रदय का अटल विश्वास इनकी कविता में अपूर्व रुप से झंकृत है। साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इनकी कविता कोई बहुत ऊँची नहीं है, परन्तु स्वाभाविक तथा भक्ति भावपूर्ण होने से एक भक्त ह्रदय को मुग्ध करने में वह फिर भी अप्रतिम हैं सूर सचमुच हिन्दी साहित्याकाश के 'सूर' हैं, परन्तु इतना सब होते हुए भी मीरां के पदों में जो रस है, मीठा सा दर्द है, वह उनमें भी नहीं आ पाया है।" सागरमल शर्मा ने लिखा है, "मीरां बाई ने नारद के भक्ति सूत्रों को सार्थक कर यह सिद्धकर दिया कि किस प्रकार भक्ति 'परम स्वतन्त्रता,' परम निरपेक्ष, 'सर्वविघ्ननाशिनी, 'सर्वभय क्लेशनाशिनी, 'अशुभहारिणी और 'आनन्द रुपा है। किस प्रकार भक्त भक्ति के बल पर हजार विघ्न बाधाओं के होते हुए भी, आनन्दपूर्वक आँख बंद कर, नाचते गाते, बिना लड़खड़ाए बिना गिरे पडे द्रुत गति से चलते हुए अपने अभिष्ट स्थान प्रभु के पादपदों तक जा पहुँचता है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा - राजस्थान का इतिहास पृ. 512*
2. *कलानाथ शास्त्री - राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा पृ. 23*
3. *सागरमल शर्मा - राजस्थान के सन्त पृ. 63*
4. *डॉ. वी. एस. भार्गव-राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण पृ. 314*
5. *डॉ. वी. एस. भार्गव - उक्त*
6. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा - उक्त पृ. 512*
7. *डॉ. भार्गव - उक्त पृ. 314*
8. *बी. एल. गुप्ता व पेमाराम - मध्यकालीन भारत का इतिहास पृ. 247*
9. *कलानाथ शास्त्री - उक्त पृ. 23*
10. *सागरमल शर्मा - उक्त पृ. 63*

11. प्रियदास भक्तमाल –
12. मेड़ता री ख्यात
13. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – उक्त पृ. 512–13
14. डॉ. ताराचन्द – इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर पृ. 146–147
15. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 64
16. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 64–65
17. (1) डा.गौ.ही.ओझा – उदयपुर राज्य का इतिहास भा. 1 पृ. 359
    (2) प्रियदास भक्त माल – पत्र 41
    (3) मेड़ता की ख्यात– पत्र 939
18. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 65
19. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 65
20. बी. एल. गुप्ता व पेमाराम – उक्त पृ. 247
21. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 65–66
22. बी. एल. गुप्ता व पेमाराम – उक्त पृ. 247
23. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 70
24. सागरमल शर्मा – उक्त पृ. 70
25. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – उक्त पृ. 277

ISSN 2277-5587

स्वामी दयानन्द का 'त्रैतवाद'

संजीव कुमार लवानियाँ
असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय,बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

shodhshree@gmail.com

स्वामी दयानन्द ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में अद्वैत-वेदान्त की विशेष रुप से आलोचना की है। स्वामी जी की आलोचना के मुख्य तर्क इस प्रकार हैं- 'जीव ब्रह्म का दर्पणवत् प्रतिबिम्ब है,'अद्वैत-वेदान्त की इस मान्यता का निरसन करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि ''यह बालकपन की बात है, क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है। इसके अतिरिक्त जो पदार्थ भिन्न नहीं है, उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार एवं सर्वव्यापक है, अत: उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता है।[1] यदि यह कहा जाय कि आकाश निराकार होते हुए भी स्वच्छ जल में प्रतिबिम्बित होता है तो इस विषय में यह कहा जा सकता है कि ''जो वस्तु दृश्य नहीं है उसको आँख से नहीं देखा जा सकता। आकाश का यह नीलवर्ण प्रतीत होता है वह आकाश का नहीं है। वह तो पृथ्वी, जल एवं अग्नि के त्रसरेणु हैं।''[2] यदि यह कहा जाय कि 'अन्त:करण के योग से जीव उसी प्रकार ब्रह्मरुप है जिस प्रकार समुद्र में मछली आदि और आकाश में पक्षी घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्त:करण घूमते हैं। अन्त:करण स्वयं तो जड़ है, परन्तु वे परमात्मा की सत्ता से वैसे ही चेतन हो रहे हैं जैसे अग्नि से लोहा उष्ण हो जाता है'' तो इस विषय में कहा जा सकता है कि यह दृष्टान्त भी सत्य नहीं है क्योंकि जब अन्त:करण जिस देश को छोड़ता जायेगा, उस देश का ब्रह्म ज्ञानी और मुक्त हो जायेगा एवं जिस देश का प्राप्त होगा उस देश का ब्रह्म अज्ञानी और भ्रान्त हो जायेगा। इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणिक होंगे[3] और यदि यह कहा जाय कि सर्वव्यापी ब्रह्म अन्त:करणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है, तो प्रश्न उठता है कि ''सर्वज्ञत्वादि गुण जीव में होते हैं या नहीं ?'' इसके उत्तर में यदि यह कहा जाय कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती तो यह बतलाओं कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित ? यदि ब्रह्म को अखण्डित माना जाय तो उसे कोई भी खण्डित और आवृत नहीं कर सकता। जब ब्रह्म आवृत नहीं होता तो जीव में सर्वत्रता क्यों नहीं होती ? यदि यह कहा जाये कि ब्रह्म अपने स्वरुप को भूल कर अन्त:करण के साथ चलता-सा है तो इससे भी ब्रह्म अशुद्ध और अज्ञानी हो जायेगा।''[4] ''अत: जीव ब्रह्म का ऐक्य कभी नहीं होता। वे दोनों सर्वदा पृथक्-पृथक् हैं।[5] अद्वैत वेदान्त में जीव, ईश्वर, ब्रह्म, जीव-ईश्वर का भेद, अविद्या और अविद्या चेतन का योग, ये छ: पदार्थ माने गये हैं। स्वामी जी इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहते हैं कि ''अद्वैत-मत में, अविद्या के योग के बिना जीव और माया के योग के बिना ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। इससे छठे पदार्थ की गणना असत्य हुई।''[6] ''ब्रह्म तथा माया के योग के बिना ईश्वर नहीं बनता। और फिर ईश्वर को अविद्या एवं ब्रह्म से पृथक् गिनना व्यर्थ है। इसलिए ब्रह्म और अविद्या-ये पदार्थ ही सिद्ध होते हैं।[7] ''तथा जीव और ईश्वर की सिद्धि तब हो सकती है तब कि अनन्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म में अज्ञान की सिद्धि हो सके।''[8] यदि ब्रह्म के एक देश में अज्ञान को मानोगे जो जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र दु:ख फैल जाता है वैसे ही ब्रह्म के एक देश में अज्ञान मानने से सब ब्रह्म दु:खादि मानने से सब ब्रह्म दु:खादि अनुभव युक्त और अज्ञानी हो जायगा।[9] अद्वैत-वेदान्त की इस मान्यता का-कि जगत् स्वप्नवत्, रज्जु में

सर्प, साँप में चाँदी और मृगतृष्णा में जल के समान असत् है-भी स्वामी जो खण्डन करते है। ''यदि असत् की यह परिभाषा की जाय कि जो वस्तु है ही नहीं उसकी अध्यारोप से प्रतीति हो रही है, तो यह परिभाषा ठीक नहीं है। जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीति होना सम्भव नहीं।''[10] ''यदि कहा जाय कि जिस प्रकार वस्तु रुप रज्जु में अवस्तु-रुप सर्प की भ्रान्ति होती है, इसी प्रकार अवस्तूरुप जगत् वस्तुरूप ब्रह्म में अवभासित हो रहा है तो प्रश्न उठता है कि क्या सर्प वस्तु नहीं है ? यदि यह कहो कि सर्प रज्जु में वस्तुरुप नहीं, देशान्तर में है और उसका संस्कारमात्र ह्रदय में है तो भी सर्प अवस्तु में आरोपण के समान नहीं।[11] इसी प्रकार स्वामी जी अन्य भी अनेक तर्कों से अद्वैत वेदान्त खण्डन का प्रयास कर[12] त्रैतवाद की स्थापना करते हैं। स्वामी दयानन्द जी द्वारा प्रस्थापित त्रैतवाद भारतीय दर्शन के क्षेत्र में कोई नवीन मत नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में त्रैतवाद के विकसित रुप को देखा जा सकता है। न्याय-दर्शन में यद्यपि अनेक पदार्थों को नित्य माना गया है तथापि उनमें से तीन पदार्थ-ईश्वर, जीव और प्रकृति प्रमुख होने से वह दार्शनिक दृष्टि से त्रैतवादी हैं। स्वामी जी ने अपने सिद्धान्तों की स्थापना में न्याय के सूत्रों और सिद्धान्तों का अनुसरण किया है। त्रैतवाद भेदवादी और अनेकवादी दर्शन है। यहाँ ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन पदार्थों को अनादि और परस्पर भिन्न माना गया है। परन्तु वेदान्त का उद्देश्य बहुत्व में एकत्व का अन्वेषण करना है। दर्शन सामान्य से विशेष की ओर बढ़ता है। सामान्य से विशेष की ओर बढ़ने वाले के कदम वहाँ पहुँच कर रुक जाते हैं, जहाँ उसे एक ऐसे सार्वभौमिक तत्व की प्राप्ति हो जाती है, जो समस्त सामान्यों की व्याख्या कर देता है। वेदान्त भी एक सार्वभौमिक तत्व के अन्वेषण का प्रयत्न करता है। अस्तु , थोड़ी देर के लिए यदि यह मान भी लिया जाय, जैसा कि दयानन्द-मत एक अधिकारी विद्वान् का मत है,[13] कि वेदान्त में अनेक तार्किक असंगतियों के होते हुए भी, अद्वैतवाद से चिपके रहने की प्रवृति एक दार्शनिक सनकीपन है, तो प्रश्न उठता है कि क्या त्रैतवाद दर्शन की मुख्य समस्याओं का पूर्ण युक्तिसंगत समाधान प्रस्तुत करता है ? शांकर-वेदान्त को युक्ति की दृष्टि से इतना असंगत मानने वाला यह त्रैतवाद क्या अद्वैत-वेदान्त के समक्ष विद्यमान उन मूल समस्याओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है, जिनके कारण आचार्य शंकर को जगदस्तित्ववाद के स्थान पर जगन्मिथ्यात्व के सिद्धान्त को स्वीकृत करना पड़ा। इन प्रश्नों का उत्तर यही है कि त्रैतवाद में दर्शन की मूल समस्याएँ असमाहित ही रह जाती हैं।

दर्शन की एक मूल समस्या यह भी है कि एक, अपरिवर्तनशील, शुद्ध और चेतनस्वरुप परमतत्व किस प्रकार अनेकरुपा, परिवर्त्तनशीला और जड़रुपा प्रकृति में व्याप्त होकर सृष्टिसंचालनादि कार्यों को करता है। एकरुप परमात्मा अविभक्त रहते हुए दोषों से किस प्रकार स्पष्ट नहीं होता ? समस्त जगत् क्षण-क्षण परिवर्तित होता रहता है। इस परिवर्त्तनशील जगत् में परतत्व किस प्रकार अपरिवर्तित और स्थिर रह पाता है ? जगत् जड़रुप है। जड़-रुप जगत् में व्याप्त चेतन-स्वरुप और प्रज्ञानघन ब्रह्म जड़त्व को प्राप्त क्यों नहीं होता ? दर्शन की इसी समस्या को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक ही परतत्व विश्वव्यापक और विश्वरुप ही है, विश्वातीत नहीं-तो यह कथन परतत्व के एक तर्कहीन स्वरुप को प्रस्तुत करता है। और यदि यह कहा जाय कि एक ईश्वर विश्वरुप और विश्वतीत है तो इस विषय में यह कहा जा सकता है कि-एक ही वस्तु इस प्रकार के विरुद्ध स्वभावों से युक्त नहीं हो सकती।' त्रैतवाद में दर्शन की इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न नहीं है। वेदान्त इस प्रकार की समस्या से अपने प्रारम्भिक रुप में भी परिचित है। उपनिषद् 'नेति नेति' के द्वारा ब्रह्म के विश्वातीत रुप का ही निरुपण करती है। भगवद्गीता में भी 'भूतभृन्न च भूतस्थ:जैसे अनेक वाक्य पुरुषोत्तम के सर्वातीत स्वरुप का प्रतिपादन करते हैं। गीता में केवल यही नहीं है कि पुरुषोत्तम को विश्वातीत मान कर ही सन्तोष कर लिया गया हो, परन्तु वहाँ इस समस्या के लिए समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। वह परतत्व अपनी शक्ति से (धारयाम्यहमोजसा) अथवा परा प्रकृति से जगदादि का धारण करता है। इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर शक्तिरुप से सृष्टिसंचालनादि का कार्य करता है। अत: वह शक्ति की दृष्टि से विश्वरुप' और स्वरुपत: विश्वातीत है। आचार्य शंकर ने इस विषय में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि एक ही ब्रह्म विश्वरुप और विश्वातीत रुप के विरुद्ध और अनेक धर्मों के आश्रित नहीं हो सकता।[14]अत: उन्होंने न हि ब्रह्म को समस्त भेद-विशेषों और गुणों से परे बतलाया। श्री रामानुज ने इस समस्या के लिए यह समाधान प्रस्तुत किया कि ईश्वर अपने शक्तिरुपी शरीर से सृष्टिसंचालनादि के कार्य करता है। शक्ति और स्वरुप में वही सम्बन्ध हो जो शरीर और शरीरी का है। श्री मध्व-जो कि स्वामी जी के समान ही भेदवादी हैं-इस विषय में 'विशेष' नामक एक तत्व से ईश्वर को युक्त मानते हैं। 'विशेष' से युक्त होने पर ईश्वर विरोधी धर्मों का आश्रय भी हो सकता है। श्री वल्लभ ने गीता के समान पुरुषोत्तम की धारणा को स्वीकार किया। उनके अनुसार परब्रह्म विश्वातीत है, अपर ब्रह्म ही विश्वरुप है। इस प्रकार वेदान्त में दर्शन की उक्त समस्या के विभिन्न समाधान हैं, परन्तु त्रैतवाद में इसका उल्लेख नहीं है।

दर्शन की दूसरी मुख्य समस्या है परतत्व और उससे भिन्न पदार्थों के सम्बन्ध की। स्वामी दयानन्द जी ने परमात्मा और जीव-जगत् में व्याप्य-व्यापक-सम्बन्ध को स्वीकार किया है। स्वामी जी की इस मान्यता के विरुद्ध निम्नलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा है कि सम्बन्ध सदैव दो मित वस्तुओं में ही सम्भव है।[15] इससे स्वभावत: यह निष्कर्ष निकलता है कि मित और अमित वस्तुओं में अथवा दो अमितों के सम्बन्ध की कल्पना करना असंगत है।

मित से अमित का सम्बन्ध मान लेने का तात्पर्य अनन्त तत्व (ईश्वर) को भी मित बना देना होगा। ब्रह्म को सभी दर्शनों ने माना है, फिर चाहे जगत् को मित माना हो जा अमित। जगत् को सीमित

ISSN 2277-5587

मान लिया जाता तो भी मित जगत् और अमित ब्रह्म का सम्बन्ध सम्भव नहीं हो सकता और यदि जगत् को भी असीमित माना लिया जाय तो दो अमित वस्तुओं की कल्पना नितान्त अतार्किक है। इस दृष्टि से स्वामी जी ने ब्रह्म और जगत् में जो सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है, वह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होगा। इसी समस्या को दूसरे रुप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि सम्बन्ध सदैव दो साकार वस्तुओं में ही सम्भव है। निराकार और साकार अथवा दो निराकार वस्तुओं में सम्बन्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। जगत् साकार है। साकार जगत् का निराकार (देश और कालरहित) ईश्वर से किस प्रकार सम्बन्ध सम्भव हो सकता है ? इस शंका का स्वामी जी कोई समाधान नहीं करते। यदि जगत् को भी निराकार मानकर उसका परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाय तो प्रथम तो इस प्रकार का सम्बन्ध ही सम्भव नहीं है, क्योंकि दो निराकारों की कल्पना उसी प्रकार असंगत है जिस प्रकार कि दो अनन्त तत्वों की कल्पना। और फिर यदि जगत् को निराकार मान लिया जाय तो प्रश्न उठता है कि निराकार जगत् से साकार और स्थूल पदार्थों की उत्पति कैसे सम्भव है ? इस समस्या को परतत्व को साकार मानकर भी नहीं सुलझाया जा सकता। क्योंकि तब परतत्व को भी प्रदेशयुक्त मानना पडेगा । प्रदेशयुक्त पदार्थ जगत् के नश्वरता आदि दोषों से युक्त हो जायेगा और वह स्वयं भी नश्वर हो जाने से सृष्टि संचालनादि क्रियाएँ नहीं कर सकेगा ।

इसके अतिरिक्त दो भिन्न वस्तुओं में संयोग और समावाय इन दो सम्बन्धों को ही माना जा सकता हैं । ईश्वर और जगत् में संयोग - सम्बन्ध संभव नहीं, क्योंकि संयोग- सम्बध दो जागतिक और प्रदेशयुक्त पदार्थो में ही संभव है।[16] स्वामी जी द्वारा स्वीकृत ईश्वर और जगत् के व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध को संयोग - सम्बन्ध ही कहा जा सकता है। परन्तु वह सम्बन्ध दोनों मे संभव नहीं हो सकता क्योंकि परतत्व निराकार और प्रदेशरहित है। दो भिन्न पदार्थो में समवाय-सम्बन्ध की भी कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि जिस प्रकार दो भिन्न पदार्थ समावायसम्बन्ध से युक्त होने पर सम्बन्धित होते हैं। उसी प्रकार समवाय सम्बन्ध होते हैं। उसी प्रकार समावाय को भी समवायियों से अत्यन्त भिन्न होने अन्य समवाय सम्बन्ध से समवाय सम्बन्ध से सम्बन्धयुक्त मानना पडेगा । फिर उस समवाय का भी अन्य समवायों से सम्बन्ध मानना पडेगा और इस प्रकार अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी । इस प्रकार स्वामी जी का त्रैतवाद दर्शन के सम्बन्ध की समस्या का समुचित विवेचन नहीं करता । इस समस्या का त्रैतवाद के अधिकारी विद्वान् भी अपने ग्रन्थों में कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते ।

आचार्य शंकर समस्त जगदस्तित्ववादियों के समक्ष एक यह समस्या उपस्थित करते हैं कि जिस प्रकार घटत्व बुद्धि से निवृत्त हो जाती है और दोनों वस्तुएँ एक दूसरे को सान्त और सीमित सिद्ध करती हैं। उसी प्रकार जगत् का अस्तित्व मान लेने से ब्रह्म भी अनन्त न रह जायेगा।[17] आचार्य शंकर की इस समस्या से स्वामी जी यद्यपि परिचित हैं और इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'यह नियम समान आकार वाले पदार्थों में ही घट सकता है, असमानावृत्ति में नहीं। जैसे सूक्ष्म अग्नि स्थूल लोहे में व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते है। उसी प्रकार परमेश्वर जीव, जगत् से सूक्ष्म होने के कारण उनमें व्याप्त है।''[18] तथापि स्वामी जी का यह समाधान युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। स्वामी जी द्वारा दिया गया अयोगोलक का उदाहरण द्रव्य और गुण के विषय में दिया जा सकता है, दो द्रव्यों के विषय में नहीं। लोहे में अग्नि उसी प्रकार गुणरुप से एक ही अवकाश में स्थित है, जिस प्रकार लोहा और उसका रुप एक ही आकाश में स्थित है। यही नहीं, लोहे के परिमाण, लम्बाई, चौड़ाई, रुप आदि गुण भी लोहे के एक ही आकाश में स्थित हैं, भिन्न-भिन्न में नहीं। अत: यह दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, द्रव्य और गुण नहीं। इसके अतिरिक्त स्वामी जी द्वारा दिया गया यह उदाहरण परतत्व को पराश्रित बना देता है। इस उदाहरण से यह व्यंजित होता है कि जिस प्रकार अग्नि लोहे के आश्रित होकर उसमें व्याप्त है, इसी प्रकार परमात्मा भी जगत् और ईश्वर को एक ही आकाश मे स्थित नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसा मान लेने पर उनकी भिन्न प्रतीति सम्भव नहीं और यदि एक ही आकाश में उन्हें स्थित मान भी लिया जाय तो किस दृष्टि से उनमें भेद माना जायगा। यदि गुणों की दृष्टि से ईश्वर और जीव-जगत् में भेद माना जाता है, तो सारुप्यता है ही। ईश्वर सच्चिदानन्द रुप, जीव सत्-जगत् में गुणों की तो सारुप्यता है ही। ईश्वर सच्चिदानन्द रुप, जीव सत्-चित् रुप और जगत् सत्-रुप है। इस दृष्टि से भी उनमें भेदाभेद सम्बन्ध को मानना चाहिए परन्तु भेदाभेद की धारणा स्वव्याघाती धारणा है।

निष्कर्षत:, स्वामी दयानन्द ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषणों के द्वारा वेदों को जहाँ अध्यात्मज्ञान का मूल ग्रन्थ बतलाया वहीं उनको भौतिक विज्ञान का आधार-ग्रन्थ भी निर्दिष्ट किया। श्री अरविन्द ने स्वामी जी की वेद-विषयक मान्यताओं के विषय में लिखा है कि- ''स्वामी दयानन्द ने वेदों के उन द्वारों को अपनी दिव्य दृष्टि से खोल दिया जिन्हें काल ने सदियों से बन्द कर रखा था। रुके पड़े हुए निर्झरों के मुख पर से उन्होंने बन्द करने वाली चट्टान को तोड़ फेंका।'' वेदान्त में संहिताओं को मुख्यत: कर्मकाण्डप्रधान माना जाता है। स्वामी जी की वेद विषयक मान्यता न केवल वेदान्त के लिए, अपितु समस्त भारतीय चिन्तन के लिये अपनी दर्शनिक मान्यताओं की स्थापना की। स्वामी जी ने वेदान्त की भी उसके मूल प्रतिपाद्य से पृथक् होकर नवीन व्याख्या की। स्वामी जी के अनुसार वास्तविक और प्राचीन वेदान्त वह है जो वेदों द्वारा प्रतिपादित किया गया हो। वेदान्त को त्रैतवाद-परक मानने का स्वामी जी का सिद्धान्त यद्यपि नवीन है परन्तु वेदान्त की मूल अद्वैत भावना के विरुद्ध है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, पृ. 292
2. वही, पृ. 293
3. वही, पृ. 293
4. वही, पृ. 294
5. वही, पृ. 294
6. वही, पृ. 292
7. वही, पृ. 242
8. वही, पृ. 242
9. वही, पृ. 242-3
10. वही, पृ. 373
11. वही, पृ. 366-7
12. वही, पृ. 367-73
13. Ganga Prasad Upadhyaya, Philosophy of Dayananda, p, 95.
14. न हि कूटस्थस्य ब्रह्मण: स्थितिगतिवदनेक धर्मावयत्व सम्भवति ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, 2।1।14।
15. मितानां मितेनैव सम्बन्ध-ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, 3।2।31।
16. प्रदेशवती द्रव्यस्य प्रदेशवता द्रव्यान्तरेण. संयोगदर्शनात्-ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, 2।2।16।
17. तैत्ति. उप. शांकर भाष्य, 2।1
18. दयानन्द सरस्वती: सत्यार्थ प्रकाश, पृ. 238

ISSN 2277-5587

आम्बेर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अशोक कुमार यादव
शोधार्थी,राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

राजस्थान उत्तर भारत का सांस्कृतिक रुप से सबसे धनी प्रदेश हैं। राजस्थान प्रदेश में स्वतंत्रता से पहले 19 रियासतें थी और यहाँ पर देशी राजाओं ओर रजवाड़ों का राज था। स्वतन्त्रता से पूर्व इसे राजपूताना कहा जाता था। राजस्थान का इतिहास अपने शौर्य और बलिदान के लिए प्रसिद्ध रहा है। यों तो भारत और राजस्थान में बहुत से नगर हैं और प्राचीन भी हैं तथा हर जगह हर नगर में वास्तुशिल्प की दृष्टि से कोई न कोई विशेषता मिल जावेगी लेकिन जयपुर रियासत का अपने आप में एक बड़ा अद्वितीय स्थान है। किपलिंग ने जयपुर को ''अचम्भों का नगर' कहा था।[1] एक फ्रांसिसी विद्वान ने जो 1832 ई. में भारत में ठहरा था जयपुर के बारे में कहा है कि मुख्य मार्ग ही मुख्य बाजार है। दोनों और महलों, मंदिरों और मकानों की महराबों के नीचे कारीगरों की दुकानें हैं। सामान्य लोगों के घर आस-पास की पहाड़ियों के पत्थरों से बने हैं। रईसों के मान भी पहाड़ियों के पत्थरों से बने हुए हैं लेकिन उन पर एक सफेद चमकदार चूने वाली सीमेन्ट से पलस्तर किया जाता है। सीमेन्ट पर कभी-कभी स्फटकों की तरह पालिश की जाती है। अधिकतर मंदिरों और महलों के सिंह द्वार सफेद संगमरमर के हैं।[2]

अत: जयपुर रियासत पर शासन करने वाले शासकों में प्रमुख रुप से कछवाहा वंश का कार्यकाल महत्वपूर्ण माना गया है। इस रियासत काल के क्षेत्रों में अचरोल, सामोद, चौमूं, बगरु, दूदू, नरायणा, साखूण, मनोहरपुर, जोबनेर, भैंसलाना, हिरणौदा, बोराज, भादवा, डिग्गी, ईसरदा, बरनाला, पचेवर, सिवाड़ मांवडा-मढ़ोली, झिलाय, दूनी, पाटण, बांसखो, गीजगढ़, कनौता, नायला, धूला, जमवारामगढ़, तूंगा, दौसा, भाण्डारेज, निवाई उनियारा प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त खाचरियावास, खण्डेला, सीकर, खेतडी, नवलगढ़, मण्डावा और बिसाऊ क्षेत्रों का भी इस रियासत में सम्मिलि होने का उल्लेख मिलता है। जयपुर के इतिहास में गौरवशाली राजाओं और महाराजाओं के शौर्य एवं पराक्रम का उल्लेख किया जाता है। इसके अलावा नारियों के त्याग, वीरता तथा संघर्ष का उदात्त स्वरुप भी देखने को मिलता है।

जयपुर से लगभग 08 कि.मी. उत्तर में एक पर्वतीय ढलान पर अवस्थित आम्बेर मीणों का उत्कर्ष एवं पराभव क्षेत्र तथा कछवाहा शासकों की पूरानी राजधानी होने के अलावा ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्व का प्राचीन नगर है। प्राचीन समय में ढूंढाड़ की राजधानी की राजधानी के रुप में प्रसिद्ध आम्बेर को साहित्यिक ग्रन्थों और शिलालेखों में आम्बेर, अम्बिकापुर, अम्बर, अम्बरीश, अम्बावती, आम्रदाद्रि इत्यादि विविध नामों से अभिहित किया गया है। आम्बेर के नामकरण को लेकर अनेक किंवदंतियां प्रचलित रही है। ख्यातों में बताया गया है कि अम्बा भक्त कांकिल ने इस क्षेत्र को आमेर के नाम से सम्बोधित किया। जनश्रुति के अनुसार अयोध्या के राजा मान्धाता के पुत्र अम्बरीश ने यहां पर तप किया था, उन्हीं के नाम पर नामकरण हुआ। आम्बेर स्थित संघी झूथाराम मंदिर से उपलब्ध मिर्जा राजा जयसिंह के शासन काल के वि.सं. 1714 (1657 ई.) के शिलालेख में आम्बेर नगर का नाम अम्बावती मिलता है और इसे ढूँढाड़ की राजधानी बताया गया है। यह शिलालेख आज भी पुरातत्त्व एवं संग्रहालय विभाग, राजस्थान में सुरक्षित है।[3] अम्बावती दुर्गा का ही एक स्वरुप है और यह नामकरण उसी के नाम पर हुआ है। मीणा और राजपूत दोनों शक्ति के उपासक हैं। इसकी पुष्टि दसवीं शताब्दी के एक मूर्ति फलक से होती है। टॉड [4] तथा कनिंघम [5] ने अम्बिकेश्वर से ही आमेर नामकरण माना है जिसका प्रतीक शिव मंदिर पुरानी नगरी के मध्य एक कुण्ड के

समीप स्थित है। कछवाहा वंशावली से जानकारी मिलती है कि पुरातन खण्डहरों से अम्बिकेश्वर (शिव) की मूर्ति प्राप्त होने के कारण यह नगर अम्बिकेश्वर कहलाया। राजपूताना के इतिहास के अनुसार किसी समय अत्यधिक आम्र वृक्ष होने के कारण यह क्षेत्र आम्रदाद्रि के नाम से विख्यात हुआ। जगदीश सिंह गहलोत कछवाहों के इतिहास में बताते हैं कि महाराणा कुम्भा के समय के अभिलेख में आमेर को आम्रदाद्रि नाम दिया गया है। भारत भ्रमण से ज्ञात होता है कि आमेर 400 फीट ऊँचे पर्वत पर स्थित है। अत: ऊँचे पर्वत के कारण इसका नाम आम्बेर पड़ा। आम्बेर के प्रारम्भिक इतिहास की कोई ठोस प्रामाणिक जानकारी न होने के कारण उपर्युक्त प्रचलित एवं उल्लेखित धारणाओं को बल मिलता है।

कछवाहा शासकों से पूर्व आम्बेर के प्रारम्भिक इतिहास की कोई ठोस जानकारी न होने के कारण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अनेक धारणा मिलती है। मुक्तक संग्रह से पता चलता है कि संवत 660-70 में यहां जैनियों की अच्छी आबादी थी।[6] इसी प्रकार भारत भ्रमण से ज्ञात होता है कि संवत 1024 (967 ई.) से आमेर राज्य उन्नत व्यवस्था में था। ढूंढाड की प्राचीन राजधानी थी और चार-पांच हजार की बस्ती थी साथ ही विख्यात भी था। सुसावत मीणों से पूर्व यहां पर निश्चित रुप से गुर्जर प्रतिहारों का शासन या प्रभाव लक्षित होता है इसकी पुष्टि स्थापत्य कला के अवशेष जैसे मंदिर (कल्याण जी का) जो कि प्रतिहार कालीन कला का यह साक्ष्य आम्बेर की प्राचीनता को दर्शाता है। लोक मान्यता के अनुसार कछवाहों के आधिपत्य में आने से पूर्व भी आम्बेर राज्य का अस्तित्व था। आम्बेर राज्य में जगतशिरोमणि मंदिर के पीछे पहाड़ी पर स्थित वि.सं. 1011 (954 ई.) का सूर्य मंदिर से एक शिलालेख मिलता है। इस मंदिर का उल्लेख श्री सी. बण्डेल नामक अंग्रेज ने अपनी पुस्तक में किया है। इस साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि कछवाहा शासन से पूर्व आम्बेर उन्नत अवस्था में था।

ज्ञात इतिहास के आधार पर आम्बेर में सर्वप्रथम सुसावत मीणों का आधिपत्य था। यही आम्बेर, ढूंढाड़ प्रदेश[7] की राजधानी था। आम्बेर के आसपास मीणों के छोटे-छोटे गणराज्य थे। मीणा जागाओं की बहियों के अनुसार सुन्दर लाल के पुत्र राव भरत ने संवत 221 में आम्बेर पर अधिकार कर मीणा राज्य की नींव रखी और मीणा वंश की पीढ़ियों ने 872 वर्षो तक राज्य किया।[8]

आम्बेर का सुसावत मीणा राजवंश - प्राचीन मत्स्य प्रदेश के ढूंढाड़ क्षेत्र में आम्बेर के आस-पास दो-चार कोस के फासले पर छोटी-छोटी 52 बस्तियां थी, जिनमें मीणों का राज्य था। प्रत्येक मीणा राजा के पास अपनी गढियां थी। इनकी प्रधान राजधानी (केन्द्रीय शक्ति) आम्बेर थी।[9]

जिस समय कछवाहा शासक गंग, दौसा व मांची को जीतकर ढूंढाड में मीणा जनजाति का विध्वंस कर अपने कछवाहा वंश की स्थापना कर रहे थे, उस समय आम्बेर में सुसावत मीणा का राज्य था। कर्नल टॉड के अनुसार कांकिल के पुत्र मैदल ने सुसावत राव भक्तों से आम्बेर छीना।[10]

कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है।[11] कांकिल के पुत्र मेकुल राव के समय महाराजा शूर सिंह (1135-1145 ई.) सुसावत मीणा गोत्र के प्रसिद्ध राजा हुये। ये धर्मपरायण व ईश्वर भक्त थे। अत: इन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य अपने पुत्र भानो को दे दिया।[12] भानो राव के समय आम्बेर की ख्याति मांच, के कछवाहा शासक, मेकुल राव के पास पहुंची तो उसने पहले तो राव भानो से मित्रता का हाथ बढ़ाया, परन्तु कुछ ही दिनों में उसने भानोराव का काम तमाम करके आम्बेर पर अधिकार करने का मन बना लिया। इसके लिए अम्बिकेश्वर महादेव जी के दर्शन करने का बहाना बनाकर डोलियों से मीणा सरदारों को लेकर उपस्थित हुए। मैकुलराव ने अपने हाथों में तलवार का वार करके भानोराव का सिर धड़ से अलग कर दिया। पालकियों में छिपे राजपूत सरदार भी नि:शस्त्र मीणा सरदारों पर टूट पड़े। इस प्रकार धोखे से मैकुलराव ने आम्बेर पर अधिकार कर लिया, कर्नल टॉड ने इस युद्ध का वर्णन किया है।[13] इसके विपरीत रावल नरेन्द्र सिंह ने लिखा है कि कांकिल देव दूलराय के पुत्र ने आम्बेर पर विजय प्राप्त की।

जयपुर राज्य वंशावली में कांकिला का शासन काल केवल दो वर्ष दो माह अठारह दिन लिखा है।[14] अत: इतने अल्पशासनकाल में उससे कोई बड़े योगदान की आशा नहीं की जा सकती। जनश्रुति के अनुसार कांकिला के मरने के बाद आम्बेर कछवाहों के हाथ से निकल गया।[15] कर्नल जेम्स टॉड का कथन ठीक लगता है कि कांकिल के पुत्र मैकुलराव ने आम्बेर पर विजय प्राप्त की। राज्य संरक्षित इतिहासकारों का यह कहना भी सत्य से परे है कि कांकिला ने आम्बेर बसाई, पुरानी आम्बेर तथा उसकी सुरक्षा के लिए बनाये गये महत्वपूर्ण नाके तथा गढ़ी को देखने से स्पष्ट होता है कि आम्बेर सुसावत वंश के मीणाओं की राजधानी थी और मीणा राज्य संघ का प्रमुख केन्द्र था।[16] आर.सी. मजूमदार ने लिखा है कि लगभग 1173 ई. तक ढूंढाड़ से खदेड़े गये मीणा लोगों ने परमारों की क्षीण होती हुई शक्ति का लाभ उठाकर मालवा के पठार तक पहुंच गए।[17]

कछवाहों का ढूंढाड़ में आगमन और आम्बेर पर आधिपत्य

मीणा शासकों के बाद ढूंढाड़ में कछवाहों का शासन स्थापित हुआ। अनेक वंशवृक्ष, भाटों एवं चारणों के वृतान्त तथा कुछ शिलालेखों द्वारा सामग्री प्राप्त होने पर भी कछवाहा राजवंश की उत्पत्ति सम्बन्ध में निश्चित रुप से कुछ कहना कठिन है।

कछवाहा स्वयं को कौशल नरेश रामचन्द्र जी के द्वितीय पुत्र कुश वंशज का मानते हैं। इन्हें सूर्यवंशी भी कहा जाता है। कर्नल टॉड ने कहा है कि कुश के वंशज होने के कारण इनका वंश कुशवाहा था जो लोक भाषा में विकृत होकर कछवाहा हो गया।[18] ग्वालियर एवं नरवर के प्राप्त कुछ संस्कृत शिलालेखों में इन्हें 'कच्छपघात' या 'कच्छपरिवंश' का लिखा है। कच्छपघात शब्द ही प्राकृत भाषा में कच्छपरि या फिर जन सामान्य की भाषा में कछवाहा हो गया है।[19] मानसिंह का वि.सं. 1658 का सांगानेर से प्राप्त शिलालेख, राजा रायसाल दरबारी का शेखावाटी के आदिनाथ मंदिर का वि.सं. 1661

का शिलालेख में स्वयं को कूर्मवंशी लिखा है। पृथ्वीराज रासो में भी आम्बेर के राजा पज्जुन देव को कूर्म लिखा है। इस प्रकार कूर्म एवं कछवाहा एक ही जाति के हैं।

सन् 1095 ई. से 1147 ई. तक आम्बेर पर शासन मलयसिंह ने शासन किया। मलय सिंह मीणा राज्य नाहांन पर भी विजय प्राप्त किया। मलयसिंह के बाद बीजल देव ने 1147 से 1180 ई. तक आम्बेर पर राज किया। इनके पश्चात् राजदेव 1180 से 1216 का शासन रहा। इन्होंने आम्बेर में कछवाहों के राजमहलों का निर्माण आरम्भ किया। राजदेव के बाद कील्हणदेव आम्बेर के सिंहासन पर बैठे। इनका शासन काल 1216-1276 ई. तक रहा। इनके द्वारा कील्हणगढ़ का निर्माण करवाया गया। कील्हणदेव के पश्चात् उनका ज्येष्ठ पुत्र कुन्तल देव 1276-1318 ई. तक शासन किया। कुन्तलदेव के बाद क्रमश: जूणसी 1318-1363 ई. तक, इनके बाद उदयकरण ने 1367 ई. से 1389 ई. तक आम्बेर पर शासन किया। तत्पश्चात् नृसिंह देव 1389-1429 ई. तक आम्बेर के सिंहासन पर बैठे और इन्होंने भगवान नृसिंह देव का मंदिर भी बनवाया। इनकी मृत्यु के पश्चात बनवीर 16 अगस्त 1429 के आम्बेर के गद्दी पर आसीन हुए। इनका कार्यकाल 1467 से 1503 ई. तक रहा। बनवीर के पश्चात उद्धरण एवं चन्द्रसेन आम्बेर के राजा बने। राजा चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद इनके पुत्र पृथ्वीसिंह आम्बेर की गद्दी पर 17 जनवरी 1503 ई. को बैठे और 1527 ई. तक शासन किया। इनके समय में आम्बेर राजवंश का महत्व बढ़ गया था। पृथ्वीराज के पूर्वज आम्बेर के पूर्व शासन नाथमत के अनुयायी थे। पृथ्वीराज के ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार के वंशानुगत अधिकार का उल्लंघन कर पूरणमल 20 नवम्बर 1527 को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। पूरणमल के पश्चात् 1534-1537 ई. तक क्रमश: भीम व रत्न सिंह गद्दी पर बैठे।

आन्तरिक विद्रोहों के उपरान्त 27 जून, 1548 ई. में आम्बेर की गद्दी पर पृथ्वीराज तृतीय के ही पुत्र भारमल बैठे। भारमल विपत्तियों से घिरा हुआ था। एक तरफ इस्लाम की तोपों से युक्त ताकत, दूसरा अजमेर की दरगाह जाने का रास्ता भी आगरा से सांगानेर होते था। अत: इसी रास्ते आततायियों का आना-जाना परेशानी उत्पन्न कर रहे थे और ये लूट-खसोट व धार्मिक स्थानों को खण्डित कर रहे थे तथा तीसरा स्वयं के राज्य में भी पूरणमल के बेटे-पोते भारमल को तंग कर सत्ताच्युत करने का षडयंत्र कर रहे थे। भारमल ने एक-एक करके सारी समस्याओं को बुद्धिमानी से दूर किया। भारमल ने मुगल बादशाह अकबर के साथ अपनी पुत्री का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया और आम्बेर के कछवाहा शासकों की मुगलों से मित्रता स्थापित हुयी। इससे मुगल आक्रमण से छुटकारा मिला। दूसरी तरफ मुगलों से सम्बन्ध स्थापित करके, भारमल ने आम्बेर के पूर्व मीणा शासकों को भी विश्वास में लेना आरम्भ किया।[20]

भारमल की मृत्यु के बाद उनका पुत्र भगवन्तदास 1574-1589 ई. ने आम्बेर की गद्दी संभाली। भगवन्तदास की मृत्यु के बाद उनका पुत्र मानसिंह 1589 ई. में आम्बेर के शासक बने। इनके कार्यकाल में आम्बेर एक महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण राज्य में रुप में विख्यात हुआ। मानसिंह ने लगभग 24 वर्ष तक राज्य किया और लगभग 55 वर्ष तक मुगल दरबार में अपनी सेवाऐं देकर मुगलों का सहयोग किया। अकबर द्वारा इन्हें 7000 मनसब व फर्जन्दे का खिताब दिया गया और अकबर के नवरत्नों में इनकी गणना की जाती थी।

1614 ई. में दक्षिण में ऐचिलपुर में महाराजा मानसिंह की मृत्यु होने पर आम्बेर में उत्तराधिकारी को लेकर एक अशान्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। मानसिंह के वरीयताक्रम में दो पुत्रों जगतसिंह एवं दुर्जनसाल की मृत्यु उनके जीवनकाल में हो चुकी थी। उनका तीसरा पुत्र भावसिंह, जहांगीर की सेवा में था। इस समय जगतसिंह के प्रपौत्र जयसिंह का गद्दी पर हक था किन्तु जहांगीर ने राजपूतों के नियम के विरुद्ध मानसिंह के तीसरे पुत्र भावसिंह को 1614 ई. में आम्बेर का शासक बना दिया। जहांगीर ने भावसिंह को शाहजादा खुर्रम के साथ दक्षिण मे मलिक अम्बर के विरुद्ध अभियान में भेजा। लम्बे समय तक सफलता न मिलने पर हताश और कुंठाग्रस्त भावसिंह की 1621 ई. में मृत्यु हो गई।

भावसिंह की मृत्यु के बाद राजा जयसिंह को 11 वर्ष की अल्प आयु में आम्बेर की गद्दी पर बैठाया। राजा जयसिंह को तीन मुगल सम्राटों क्रमश: जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब के दरबार में कार्य करने का अवसर मिला। जहांगीर के काल में 1623 ई. में जयसिंह द्वारा अहमदनगर के शासक मलिक अम्बर को परास्त करना और बाद में 1625 ई. में दलेलखां पठान को दबाने आदि में उसने अपने रणकौशल का परिचय दिया।[21]

मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु के बाद 1667 ई. में महाराजा रामसिंह आम्बेर की गद्दी पर विराजमान हुए। महाराजा रामसिंह के काल में औरंगजेब के आदेश से अबूतरा आम्बेर के मंदिरों को नष्ट करने के लिए आया और 1680 ई. में आम्बेर राज्य में 66 मंदिरों को नष्ट कर दिया।[22] 1690 ई. में इनकी मृत्यु होने पर बिशन सिंह रामसिंह का पौत्र व किशनसिंह का पुत्र आम्बेर के सिंहासन पर बैठे। इनके समय आम्बेर में कोई विशेष प्रगति न हो सकी। काबुल के अभियान में पठानों के विद्रोह को दबाते समय 1700 ई. में इनकी मृत्यु हो गयी। बिशनसिंह के दो पुत्र विजयसिंह और जयसिंह इनमें से औरंगजेब ने विजय सिंह में जयसिंह प्रथम के गुण और प्रतिभा देखकर उसे जयसिंह का नाम दिया, जिसे डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने स्वीकार करते हुए लिखा है कि सम्भवत: सम्राट ने विजयसिंह में प्रथम जयसिंह की तुलना में वीरता और वाकपटुता को देखकर उनका नाम सवाई जयसिंह रख दिया क्योंकि वह जयसिंह से बढ़कर थे। इसके विपरीत छोटे भाई का नाम विजय सिंह रख दिया। इसी समय से जयपुर के समस्त राजा अपने नाम के पहले 'सवाई' पद का प्रयोग करने लगे।[23]

1700 ई. में सवाई जयसिंह द्वितीय आम्बेर के सिंहासन पर बैठे। आम्बेर और जयपुर के इतिहास में सवाई जयसिंह द्वितीय का काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल माना गया है। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद इनके दो पुत्रों में उत्तराधिकारी संघर्ष में जयसिंह के भाई

विजयसिंह ने पहले से ही मुहज्जम का पक्ष लिया। इसलिए मुहज्जम जो बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा उसने जयसिंह द्वितीय से असन्तुष्ट होकर उसे आम्बेर राज्य से पदच्युत कर उसके भाई विजयसिंह को आम्बेर का शासक बनाने की घोषणा की। जयसिंह ने अपने राज्य को बचाने के लिए जोधपुर की गद्दी हेतु अजीतसिंह से मिलकर मेवाड़ में महाराणा अमरसिंह द्वितीय के साथ 25 मई, 1708 ई. को एक संधि हुई। इस संधि के अनुसार अमरसिंह की पुत्री चन्द्रकुमारी का विवाह जयसिंह के साथ इस शर्त पर हुआ कि इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह आम्बेर का शासक होगा। इससे पूर्व जयसिंह को ईश्वरसिंह नामक पुत्र हो चुका था। अत: इस शर्त ने आगे चलकर जयपुर राजघराने में युद्ध व संघर्ष के भावी बीज बो दिए। इस संधि के द्वारा मेवाड़ और मारवाड़ सेना की सहायता से सवाई जयसिंह द्वितीय 1708 ई. में पुन: आम्बेर की राजगद्दी को प्राप्त करने में सफल हो गये।

जयसिंह द्वितीय ने उत्तरोत्तर मुगल काल में बहादुर शाह, जहांदारशाह, फर्रुखसियर, रफी उद्जात मुहम्मद शाह आदि के समय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर आम्बेर की प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित किया। 1708 ई. से 1727 ई. के मध्य उनके द्वारा मालवा की तीन बार सूबेदार काल में वहां मराठों के प्रभाव को कम करने, आगरा के आस-पास जाट नेता चूड़ामन व मुहकम के विद्रोह को दबाने का प्रयास किया अन्तत: सफलता प्राप्त की। 1727 ई. में सवाई जयसिंह ने जयपुर नगर को बसाकर नई राजधानी स्थापित की।

इस प्रकार भारमल के गद्दी पर बैठने से लेकर सवाई जयसिंह के नवीन राजधानी जयपुर स्थापित करने तक कछवाहा वंश का आम्बेर में अनेक उतार-चढ़ाव के बावजदू इनकी कीर्ति ऊँचाईयों तक पहुंच कर आम्बेर राज्य की विश्वव्यापी महत्व प्रदान कराया। आम्बेर शासकों ने भारतीय इतिहास के निर्माण में जो भूमिका निभाई वह अतुलनीय है। कछवाहा शासकों के संरक्षण में आम्बेर राज्य का सांस्कृतिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में सर्वांगीण विकास हुआ। आम्बेर राज्य स्थापत्य, साहित्य, संगीत, मूर्तिकला आदि सभी क्षत्रों में अग्रणी रहा। भारत भ्रमण[24] के अनुसार आम्बेर उन्नत अवस्था में था। प्राकृतिक जल, ऊपजाऊ भूमि, खनिज सम्पदा से परिपूर्ण होने के कारण तथा सुदृढ़ राजनीतिक व्यवस्था के कारण जनसंख्या में बढ़ोतरी होती गयी और धीरे-धीरे आम्बेर एक नगर का स्वरूप लेता गया।

वर्तमान में आम्बेर जयपुर के सुभाष चौक सर्किल से सीधे जोरावर सिंह गेट पार करते हुए जलमहल की पाल के किनारे दांयी ओर कनक वृन्दावन नामक सुन्दर बाग है। बांयी ओर फूलों की घाटी है जो घाटी गेट पर समाप्त होती है। यह आम्बेर का प्राचीन रास्ता है। घाटी में आगे जयगढ़, नाहरगढ़ का किला तथा मंशा माता का मंदिर आता है। घाटी गेट पार करने के बाद हरियाली युक्त घुमावदार सड़क है। आम्बेर किले की तलहटी में परियों का बाग है। आगे की ओर मावठा सरोवर, परकोटा, दलाराम का बाग में आम्बेर महल, शिलामाता के मंदिर आते हैं। दलाराम बाग के सामने दादू द्वारा है कुछ आगे जाने पर लक्ष्मीनारायण मंदिर है। आम्बेर दर्शनीय स्थल में दलाराम बाग, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, जयगढ़, मानसिंह महल, जस मंदिर, सुखमं सुहाग मंदिर, शिला माता मंदिर, महाराजा मानसिंह व मिर्जाराजा जयसिंह के निर्माण कार्य, पन्नामीणां का कुण्ड, कछवाहा शासकों की छतरियां आदि प्रमुख दर्शनीय स्थल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे, राम, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, शोधक, जयपुर, 2000, पृ. 58
2. राय, असिम कुमार, हिस्ट्री ऑफ जयपुर सिटी, दिल्ली, 1978, पृ.41
3. साहनी, दयाराम, आर्केलोजिकल रिमेन्स एण्ड ऐक्सकेशन ऐट बैराठ, पृ. 9
4. टॉड, कर्नल, एनाल्स एण्ड एण्टीकीटिज ऑफ राजस्थान, पृ. 346
5. कनिंघम, आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, जिल्द-2, पृ. 55
6. टॉड, कर्नल, ऐनल्स एण्ड एण्टीकीटिज ऑफ राजस्थान, पृ. 346
7. धमा, ए गाईड जयपुर एण्ड आमेर एण्ड जयपुर, पृ. 1
8. शर्मा, डॉ. गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, पृ. 2
9. टॉड, कर्नल, ऐनल्स एण्ड एण्टीकीटिज ऑफ राजस्थान भाग-2, पृ. 281-282
10. वही, पृ. 282
11. कनिंघम, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द 2, पृ. 534
12. मुनि, मगनसागर, मीन पुराण की भूमिका, पृ. 68
13. मीणा, डॉ. शकुन्तला, मीणा जनजाति एक परिचय, पृ. 54-55
14. जयपुर एण्ड मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सन् 1941, पृ. 118
15. गहलोत, जगदीश सिंह, जयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 42 16. सारस्वत, रावत, मीणा इतिहास, पृ. 80
17. मजूमदार, आर.सी., दी स्ट्रगल फॉर एम्पायर, पृ. 69
18. सरकार, यदुनाथ, ए हिस्ट्री ऑफ जयपुर, पृ. 20
19. कनिंघम, आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द 2, पृ. 315
20. मीणा, यशोदा, मीणा जनजाति का इतिहास, पृ. 50-56
21. जहांगीरनामा हिन्दी अनुवाद, पृ. 55, 469
22. सहाय, गंगा, वंशप्रकाश, पृ. 140-141
23. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, पृ. 384
24. मीणा, यशोदा, मीणा जनजाति का इतिहास, पृ. 50-56

शरद जोशी के व्यंग्य साहित्य में मूल्यविघटन की चिन्ता

डॉ. ऋता दीक्षित
प्रवक्ता, एल.एम.एस. डिग्री कॉलेज, इशारा नगर, सकीट एटा(उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

सामाजिक जीवन में मूल्यों का अत्यधिक महत्व है। मूल्य सामाजिक सम्बन्धों को संतुलित करके सामाजिक व्यवहारों में एकरुकता स्थापित करते हैं। मूल्य समाज के सदस्यों की आन्तरिक भावना पर आधारित होते हैं। मूल्य सामाजिक जीवन को वह मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं, जो समाज-व्यवस्था के संगठन के लिए आवश्यक होता है।व्यक्तिगत स्तर पर भी मूल्य व्यक्तित्व का श्रृंगार होते हैं। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व या आचरण में समाज के मान्य मूल्यों को घुला-मिला देने का प्रयत्न करता है, जिससे कि उसका व्यवहार उसी तरह का हो जाये, जिस तरह का व्यवहार अन्य लोगों का है।

मूल्य विषयक अवधारणा के स्पष्टीकरण हेतु कतिपय विद्वानों के मतों का पर्यालोचन समीचीन है। थामस और जैनिनकी के अनुसार- ''मूल्य वह लक्ष्य है, जिससे अन्तर्वस्तु तथा अर्थ तक एक सामाजिक समूह के सदस्य पहुँच सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक मूल्य कोई गूढ़ तत्व नहीं है, जिसे कि एक समाज के सदस्य समझते बूझते न हों। सामाजिक मूल्य समाज के सदस्यों के ही मस्तिष्क की उपज हैं, इसलिए ये सदस्य इन मूल्यों के सम्बन्ध में पूर्णतया अचेत नहीं होते हैं।''[1] मीड और फॉरिस के अनुसार- ''मूल्यों का एक वैयक्तिक रुप भी होता है, जो कि व्यक्ति तथा समाज दोनों को ही प्रभावित करता है। वास्तव में इन्ही मूल्यों के आधार पर व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियाँ बनाता है और ये मनोवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यवहारों को प्रभावित करती हैं। इसलिए यदि हम व्यक्ति के व्यवहारों को उचित रुप में समझना चाहते हैं तो मूल्यों का अध्ययन करना आवश्यक है।''[2]

जॉन्सन के अनुसार- ''मूल्य को एक धारणा या मान के रुप में परिभाषित किया जा सकता है, जो कि सांस्कृतिक हो सकता है या केवल व्यक्तिगत और जिसके द्वारा चीजों की एक-दूसरे के साथ तुलना की जा सकती है, एक-दूसरे की तुलना में उचित या अनुचित, अच्छा या बुरा, ठीक अथवा गलत माना जाता है।''[3] डॉ. राधाकमल मुखर्जी ने मूल्यों को परिभाषित करते हुए लिखा है- ''मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं जिनका अन्तरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है, जो कि अतीतिक अधिमान्यताएँ बन जाती हैं।''[4] डॉ. मुखर्जी ने यह भी स्वीकार किया है कि सामाजिक व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों के साथ-साथ गैर मूल्य भी विद्यमान होते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति मूल्यों का उल्लंघन करता है, उन्हें स्वीकार करता है या उनके विरुद्धाचरण भी कर सकता है, जिसके फलस्वरुप सामाजिक स्तर पर समाज के प्रति अपराध, शोषणनीति, सामूहिक हित के विपरीत समूह, संगठन या निर्माण आदि गैर मूल्य के उदाहरण हैं। इनकी अभिव्यक्ति उन संस्थाओं द्वारा या उन आचरणों द्वारा होती है, जो कानून और सामाजिक संहिताओं की अवमानना का उल्लंघन करते हैं।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुर्खीम ने कहा कि सामाजिक मूल्य सामाजिक तथ्य ही हैं, जिनके अनुसार सामाजिक मूल्यों की विवेचना व विश्लेषण सामाजिक तथ्यों के रुप में ही होना चाहिए- 'सामाजिक तथ्य व्यवहार,

विचार, अनुभव का वह पक्ष है, जिसका निरीक्षण वैयक्तिक रुप में सम्भव है, जो कि एक विशेष रुप से व्यवहार करने को बाध्य होता है।''[5]

साहित्य में मूल्यों के समावेश की स्थिति को डॉ. जगदीश गुप्त ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- ''किसी मूल्य बोध का संश्लेषण तब तक सृजन-प्रक्रिया में सम्भव नहीं है, जब तक वह अनुभूति की स्पन्दित भावभूमि पर अवतरित नहीं होता। जिन मानवीय अनुभवों के आधार पर वह 'मूल्य' सामान्य जीवन में सिद्ध माना गया, उन या उनके समानान्तर परिकल्पित वैसी ही अनुभूतियों का सजीव दृष्टि का सूत्रपात हुए बिना रचना-प्रक्रिया में मूल्य-बोध का समावेश असंभव है। साहित्य में वही मानव मूल्य प्रतिबिम्बित एवं समाविष्ट हो पाते हैं, जिनको साहित्यकार ने अपने अन्त:करण में धारण कर लिया है और जो उसके संवेदनशील व्यक्तित्व के अविभाज्य अंग बन चुके हैं। ऐसे मानव मूल्य साहित्य और कला में संश्लिष्ट होकर व्यक्त होते हैं तथा आरोपित प्रतीत नहीं होते। इन्हें साहित्य के माध्यम से उपलब्ध मानव मूल्य कहा जा सकता है।''[6]

आज परिस्थितियाँ बड़ी द्रुतगति से बदल रही हैं। व्यक्ति के नैतिक मानों में परिवर्तन हो रहे हैं, जहाँ यह अनिवार्य और आवश्यक था, वहीं इसका दु:खद पक्ष यह भी सामने आया है कि आज मूल्यों में परिवर्तन उस दिशा में भी होने लगा है, जो मनुष्य को पतन और विकृतियों की ओर ले जाती है। इन बदलते मूल्यों का चित्रण हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में हुआ है।

शरद जोशी ने आधुनिक भारतीय समाज की व्यक्तिवादी और स्वार्थी प्रवृत्ति, बढ़ती अनुशासनहीनता, व्यक्ति की कुंठा, निराशा, अनास्था, बदलते हुए जीवन-मूल्यों का संघर्ष, उनके बिखराव की स्थिति, युवा वर्ग पर पडे.हुए अति पाश्चात्य प्रभाव, युवा वर्ग की, विशेषकर स्त्री समाज की फैशन पर, स्त्री आदि से सम्बन्धित अनेकानेक विसंगतियों पर चोट की है। कारण यह है कि उन्हें यह सब रुचिकर नहीं, वह तो एक स्वस्थ समाज के निर्माण की कल्पना किये बैठे हैं। इसलिए व्यंग्य की तीक्ष्ण पैनी धार से समाज की विसंगतियों को दूर करना चाहते हैं। 'रहा किनारे बैठ' संग्रह में संकलित 'एक ठिठुरते हुए दिन की डायरी', 'ट, ठ, ड अथवा ढ पर भाषण', 'विज्ञापित में संदर्भ', 'गरीबी हटाओं', 'यदि महाभारत फिर से लिखा जाये', 'जिन्दगी का कुरेदती हुई कला', 'मैं ओलम्पिक नहीं गया', 'दूसरी सतह, संग्रह के 'मौके', 'विदाई श्री निक्सन', 'इस विद्वान् से उस विद्वान् तक', 'पद्मभूषण', 'पद्मश्री', 'पी-एच.डी., 'उनके उद्देश्यों का मारा', 'आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा', 'तिलस्म' संग्रह के 'यमदूत और नस', 'पुलिया पर बैठा आदमी', 'सारी हबस से गुजरकर' आदि व्यंग्य निबन्ध समाज की विभिन्न विसंगतियों का कोरा चिट्ठा प्रस्तुत करते है।

आज का व्यक्ति स्वार्थों के पीछे अन्धा बना हुआ है। यह भावना केवल कुछ वर्ग-विशेष या क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसका रुप सर्वव्यापी है। व्यक्ति को अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए तरह-तरह के रुप धारण करने पड़ते हैं। व्यंग्यकार शरदजोशी के अनुसार मनुष्य एक घरेलू किस्म का सामाजिक प्राणी है। यह प्राय: इसलिए समाज में सेवा करने जाता है कि वह घर को सुखी देखना चाहता है और अन्तत: लौटकर ही जाता है। 'ट, ठ, ड अथवा ढ पर भाषण' शीर्षक लेख में उन व्यक्तियों की मनोवृत्तियों को उघाड़ा गया है जो अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु किसी महान् व्यक्ति का जन्मदिन मनाते हैं, और उसकी अध्यक्षता हेतु उस नेता, मंत्री अथवा उच्च पदस्थ व्यक्ति को आमंत्रित करते हैं, जिससे उनका स्वार्थ पूरा होता है। यद्यपि आमंत्रित नेता या व्यक्ति समारोह में आयोजन के सम्बन्ध में बिल्कुल अज्ञान ही होता है। जोशी जी ने इस प्रकार के समारोह के आयोजनकर्ताओं और मुख्य अतिथियों, दोनों पर अपने उक्त व्यंग्य लेख में प्रहार किये हैं।

स्वार्थ के लिए आज के व्यक्ति ने अपने ईमान को त्याग दिया है। दो-दो पैसों तक के लिए व्यक्ति अपने ईमान की बलि चढ़ा सकता है, हर तरफ झूठ, बेईमानी और मिथ्याचार का साम्राज्य व्याप्त है। कीमतों में उत्तरोत्तर वृद्धि होते हुए भी बाजार में कोई चीज शुद्ध नहीं मिलती। आटे में चोकर का घोल किया जाता है, तो अच्छी व विदेशी शराब में देशी व सस्ती शराब मिलायी जाती है। जोशी जी ने मिलावट की सर्वव्यापकता के कारण उसे एक राष्ट्रीयगुण की संज्ञा देकर माकर व्यंग्य किया है। ''जमाना बदल गया है। अगर आज कर्ण का कोई कवच, कुण्डल माँगने जाता तो वह तुरन्त कहता- वाह प्यारे। हम ही रहे हैं मूर्ख बनाने को। तुम्हें कवच, कुण्डल दे दें तो हम क्या करें, रोएँ तुम्हारे नाम को। चलो खिसको यहाँ से। आज कौरव, पाण्डव जुआ या तीन पत्ते खेलते तो भूल कर भी कोई राज्य दाँव पर न लगाता और अगर लगाकर हार भी जाता तो दूसरे दिन राज्य देने से साफ इंकार कर देता। कहता कि भाई मैं होश में नहीं था, माफ करना। पाण्डवों को अगर वन में जाना पड़ता तो वो जाते ही एक को-आपरेटिव सोसाइटी बना लेते और लकड़ियों, तेंदु पत्ते आदि पोस्ट-प्रोडक्ट बेचने का धन्धा शुरु कर देते। आज कृष्ण अर्जुन के सारथी बनते ही नहीं, साफ बोल देते कि मुझ जैसी पोजीशन का आदमी ऐसी छोटी पोस्ट पर काम कैसे कर सकता है और अगर बन ही जाते तो अर्जुन को गीता का उपदेश सुनने का मौका ही नहीं आता। अर्जुन कृष्ण से साफ कह देता- मेरे मामले में बोलने वाले तुम कौन हो ? तुम्हारा काम है रथ चलाना, रथ चलाओं, बेकार बहस करने की जरुरत नहीं। जिस दिन कौरव चक्रव्यूह रचते उस दिन अभिमन्यु उसमें घुसता ही नहीं, मुसीबत उठाने से क्या फायदा। एक दिन लड़ाई न सही, चलेगा। अगर अभिमन्यु चक्रव्यूह में फँस ही जाता तो कौरवों के सिपाहियों को रिश्वत दे बाहर आ जाता।''[7]

''जमाना बदल गया है। तौर-तरीके बदल गये हैं। मान्यताओं और दृष्टिकोण में अन्तर आ गया है। नया लेखक अगर महाभारत लिखना शुरु कर दें तो बात आगे न बढ़े जुएँ में राज्य हारने वाले को द्रौपदी

तलाक दे देती और छुट्टी करती, अगर द्रौपदी के बँटवारे को लेकर भाइयों में झगड़ा होता भी तो कचहरी में होता, मामला वर्षों जिला कोर्ट से आगे नहीं बढ़ता। इसी बीच अगर महाबली भीम किसी दिन दुर्योधन के साथ मारपीट कर लेते तो तुरन्त फौजदारी का मुकद्दमा और लग जाता। धर्मराज युधिष्ठिर, गाण्डीवधारी अर्जुन, महाबली भीम, नकुल और सहदेव के साथ वर्षों तक रोज कचहरी के बरामदे में सिर लटकायें बैठे रहते। कौरव तारीखें बढ़ाते रहते और मुकद्दमा चलता रहता। युधिष्ठिर के समय में चला मुकद्दमा अगर जनमेजय के समय में निपट जाता तो उसे जल्दी ही निपटा माना जाता। उस महाभारत में 'नरो वा कुंजरो वा' किस्म का सिर्फ एक बयान कलंक बन कर रह गया, पर नये महाभारत का हर पात्र रोज कचहरी में झूठे बयान देता कि दूसरे पक्ष के लिए सबूत देना कठिन हो जाता।''[8]

जीवन के विकास में संघटन और विघटन का क्रम निरन्तर चलता रहता है। वर्तमान परिस्थितियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक कारणों से विघटन के तत्व अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हो रहे हैं। कलाकार क्योंकि संवेदनशील होता है, अत: इस विघटन की उसे तीव्र अनुभूति है और उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त करना होता है।

जोशी जी भौतिक वस्तु के माध्यम से बड़े सहज रुप में मरती हुई मनुष्यता की ओर संकेत करते हैं। 'टेलीफोन रहस्य' लेख में टेलीफोन से जुड़ी समस्यायों पर व्यंग्य करते-करते मानव मूल्य विघटन की बात करने लगते हैं- ''जिस तरह मनुष्य के किये कुछ नहीं होता, जो होता है प्रभु की मर्जी से होता है, उसी तरह टेलीफोन भी ईश्वर की कृपा से ही लगते हैं। ग्रह-नक्षत्रों का असर होता है, जिनका शुक्र गड़बड़ होता है उनकी बातचीत के बीच लाइन कट जाती है। जिनका मंगल बुरा होता है, उनके बिल ज्यादा आते हैं। जिनका सूर्य खराब होता है उन्हें बातचीत के बीच खर्र-खर्र सुनाई देती है।

कठिन मामला है। जिस तरह मनुष्य उन्नति कर रहा है और मनुष्यता मर रही है, उसी तरह नए एक्सचेंज बन रहे हैं, मगर उन्हें परस्पर जोड़ने वाली केवल लाइनें सड़ रहीं हैं। मनुष्य अकेला है। टेलीफोन भी अकेला है। वह किसी से जुड़ नहीं पाता। सम्बन्धों के तार हैंगं पर संवादहीनता की स्थिति है। कमला से प्रणय निवेदन करने जाओं, विमला से हो जाता है और प्राय: उसके भी पति से। जीवन अनिश्चित है। टेलीफोन उससे अधिक अनिश्चित है।''[9]

भारत देश की राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक व्यवस्थाएँ चरमरा गयी हैं। भ्रष्टाचार की व्यापकता का विश्लेषण जोशी जी बॉटनी, अलजेब्रा, ज्योग्राफी, इतिहास, भविष्य जैसे विषयों के आधार पर करते हैं। भ्रष्टाचार के प्रसार के बारे में वे कहते हैं- ''आजकल पालने में दूध पीता बच्चा सोचता है, आगे चलकर विधायक बनूँ या सिविल इंजीनियर, माल कहाँ ज्यादा कटेगा।''[10]

देश में लगातार बढ़ रहे भ्रष्टाचार पर कितनी गहराई से सोचा है जोशीजी ने । उन्हें इस बात पर रोष है कि इस भ्रष्टाचार को फैलाने वाले होते हैं अफसर, उद्योगपति आदि लक्ष्मी के पुजारी। ये लोग कोई भी कुकर्म करने से कतराते नहीं, बस वे तो हर तरह से लक्ष्मी की आवभगत में जुट गये हैं। काले व्यवसाय की ये घटायें हर तरफ बरस रही हैं। भ्रष्टाचार के इस विशाल रुप को देखकर ही तो जोशी जी कहते हैं- ''सारे सागर की मसी करें और सारी जमीन का कागज, फिर भी भ्रष्टाचार का भारतीय महाकाव्य अलिखित ही रहेगा। कैसी प्रसन्न बैठी है काली लक्ष्मी। प्रशासन के फाइलों वाले कमलपत्र पर। उद्योगों के हाथी डुला रहे हैं चँवर। चरणों में झुके हैं दुकानदार, ठेकेदार, सरकार को माल सप्लाई करने वाले नम्र, मधुर, सज्जन लोग।''[11] भ्रष्टाचार के व्यापक रुपों की इन व्याख्याओं से पाठकों को एक दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है, जिससे वे समाज के प्रतिष्ठित सदस्यों, राष्ट्र के कर्ता-धर्ताओं के स्थान पर धनलोलुपों के दर्शन कर सकते हैं। जोशीजी ने इस तरह अपने कई निबन्धों द्वारा उन सभी कलाओं तथा व्यवसायों पर चोट की है जो केवल धन कमाने का हेतु रखते हैं तथा आत्मा के विकास तथा सत् चित् शान्ति जैसे विचारों से पूरी तरह मुँह मोड़ लेते हैं।

जोशी जी के लेखन में हास्य-विनोद की सहज-वक्रता और गहरे व्यंग्य की तीव्रता के विविध रुप मिलते हैं। एक चित्र दृष्टव्य है- ''समय बदला। अब हमारे ही देश में अनाज का उत्पादन बढ़कर इतना हो गया कि स्टॉक करने की जगह नहीं है। सारे सरकारी गोदाम भरे हैं। हमने सोचा, चलो, इस अनाज को विदेश में निर्यात करें। सहसा हम वैश्य हो गए। हमने सोचा, हो जाए कमाई। भारतीय गेहूँ पहली बार भूखी दुनिया के बाजारों में मयस्सर होगा। लोग हर भाव पर उसी चाव से खरीदेंगे, जिस तरह भारतीय हैंडीक्राफ्ट खरीदते हैं। वैश्य भारत ने गेहूँ का ऊँचा दाम बताया और सारे देशों ने हमारा गेहूँ खरीदने में मजबूरी जाहिर की। भारत का गेहूँ कोई अरब देशों का पेट्रोल तो नहीं, जिसके बिना दुनिया का काम न चले।

इथियोपिया और ऐसे कई अफ्रीका के देशों में लोग अनाज के इंतजार में भूखे बैठे हैं। चलो, हम क्षत्रिय ही हो जाएँ। राजा लोग अकाल के समय प्रजा के लिए मुफ्त अनाज बँटवाते थे। हम उन भूखे देशों को यह अतिरिक्त अनाज मुफ्त में या कम दामों में दे दें ? पर हमारे अंतर में बैठा वैश्य इसे स्वीकार नहीं करता। हम सोचते हैं, हमारे देश में ही ऐसे क्षेत्रों की कमी नहीं, जहाँ अनाज की जरुरत है। पर हम वहाँ भी नहीं बाँटते। हम बहुत शूद्र हैं। परिश्रम और सेवा के अर्थों में नहीं, अन्य अर्थों में। यदि इस देश में डबल रोटी, आलू और प्याज सस्ते हो जाएँ जो कितने गरीब परिवार कम खर्च में दोनों टाइम पेट भर सकते हैं। पर हम गेहूँ सस्ता भी नहीं कर सकते। हमें लगता है, भाव ठीक न मिलने के डर से किसा गेहूँ बोना छोड देगा। अंगूर बोने लगेगा। अर्थात् न हम ब्राहमण हैं, न क्षत्रिय, न वैश्य,न शूद्र, और चारों हैं भी। सब कुछ होने के चक्कर में कुछ भी नहीं।''[12]

बढ़ती हुई फैशन परस्ती न केवल नगरों तक सीमित है, बल्कि गाँवों में

भी उसने पैर जमा लिये हैं। इस परिवर्तन से जोशी जी अशांत हो उठते हैं- ''जनाव यह मिनी साड़ी है। लेटेस्ट फैशन। अब वैसी लम्बी साड़ियाँ और पूरी बाहों के ब्लाउज का रिवाज नहीं रहा। वह बोली और खेत में काम में लग गयी।''[13]

व्यवसायिक नगर इस मामलें में बड़े निर्मम होते हैं। वहाँ आत्मीयता के सारे प्रदर्शन अस्थायी होते हैं। आज अपनी गरज का मारा जो लंच देता है, वह कल पानी के गिलास के लिए भी नहीं पूछता। यहाँ आप दो ही हैसियत में जी सकते हैं- एक मालिक की, दूसरी मजदूर की। इसके अतिरिक्त किसी तरह के मानवीय सम्बन्ध की कल्पना करना एक मूर्ख धारणा में जीना है। वे सचमुच धन्य हैं जो पारिवारिक सम्बन्धों को जीवित रखते हैं। यहाँ समय आदमी और आदमियत दोनों को खा जाता है। स्वार्थ बाकी रहता है, रिश्ते मर जाते हैं।[14]

मूल्य संक्रमण का परिदृश्य पीढ़ी संघर्ष में देखने को मिलता है। नयी और पुरानी पीढ़ियों का संघर्ष प्राय: हर युग की समस्या रही है। जोशी जी नए नेताओं से पुराने नेताओं को खतरा न बताकर पुराने नेताओं को नए से खतरा बताते है-

''नए नेताओं से पुराने नेताओं को इतना खतरा नहीं होता, जितना नए दादा से पुराने दादाओं को। बल्कि नया दादा तो उभरता ही है, पुराने दादा को पीटकर। नई दादागीरी पुरानी दादागीरी को पराजित कर बनती है। अब चूँकि नेतागीरि और दादागीरि इतनी गड्डमड्ड हो गई है, यदि कोई नेता पिटे या टूटे तो हमें समझना चाहिए कि दादा का पतन हुआ और नया नेता आए तो समझिए, नया दादा आया। पर नए दादा को यह नहीं भूलना चाहिए कि गॉड फादार किसी भी क्षेत्र का हो, यह मात खाकर भी पूरी तरह पराजित नहीं होता। वह मौके की प्रतीक्षा करता है। हार - जीत जो भी हो, नए नेता या नए दादा को पुराने दादाओं से अभी बहुत सीखना है।''[15]

आज का व्यक्ति अत्यन्त स्वार्थी, लोलुप और आत्म-केन्द्रीय हो गया है। सम्बन्धों की परस्परता का आधार विश्वास आज खंडित होता जा रहा है। 'आज अविश्वास इतना बढ़ गया है कि भय के कारण लोगों को नींद तक नहीं आती। सत्य-निष्ठा, निस्वार्थ-प्रेम और वचनबद्धता आदि समाज के आदर्श रहे हैं। व्यग्यकार कल्पना करता है कि 'नया-नया लेखक अगर महाभारत लिखना शुरु कर दे तो स्थिति कैसी होगी?[16] 'यदि महाभारत फिर से लिखा जाए' नामक रचना में श्री शरद जोशी के व्यंग्य की तीक्ष्णता मन को गुदगुदाती भी है।''[17] व्यग्यकार इसी रचना में आज के टूटे जीवन मूल्यों का मर्म्मस्पर्शी व्याख्यान भी प्रस्तुत करता है।[18]

आज का व्यक्ति सुविधा-आकांक्षी, ऐश्वर्यकामी तो है, किन्तु कर्मनिष्ठा का उसमें अभाव है। आदमी के इस अकर्तृत्व को भी व्यंग्यकारों ने लक्ष्य किया है। शरद जोशी की एक रचना है- 'होना कुछ नहीं का', 'इसमें लेखक खादी भण्डार के कार्यकर्ताओं की कार्यकुशलता पर अपने प्रहार करता है- ''टेलीफोन की घण्टी बजती है। काली जाकेट वाला टेलीफोन की ओर देखता है- 'सुनिए, टेलीफोन है वह दूसरे से कहता है, जो सुस्त बैठा सड़क की ओर देख रहा है, अब आप ही उठाइए।' वह सिर टिकाकर जबाव देता है, उठाइए, उठाइए, हम हिसाब कर रहे हैं।' काली जाकेट वाला जोड़ लगाने लगता है। हिसाब बाद में कर लीजिएगा, कौन जल्दी है, अभी फोन तो सुन लीजिए। उत्तर मिलता है आप तो कुछ कर नहीं रहे, फिर आप ही क्यों नहीं सुन लेते- काली जॉकेट वाला कहता है- 'आप यहाँ बैठे हैं उसके पास ही हैं, हाथ बढ़ायेंगे तो सुन लेंगे। हम यहाँ दूर बैठे हैं। 'सुस्त व्यक्ति सड़क से बिना नजर हटाए बोलता रहता है। 'सवाल दूर पास का नहीं है, हम हिसाब कर रहे हैं, यहाँ से ध्यान नहीं तोड़ सकते। आप कुछ नहीं कर रहे। आप टेलीफोन पर जबाव दे सकते हैं। काली जॉकट वाले ने उसे इस बार स्पष्ट समझाया। 'प्रश्न यह नहीं है, हम उठ भी सकते हैं। पर सोचते हैं, कोई जरुरी फोन हो, तो आप ही उचित उत्तर दें सकेंगे, दूसरे ने जबाव दिया।''[19] यह दशा खादी भण्डार की ही नहीं, पूरे देश की है। प्रशासन-तंत्र में ऐसी कार्यालयीन-अकर्मण्यता की चर्चा जोशी ने अनेकाश: की है।

अस्तु, इस प्रकार जोशी जी अपनी रचनाओं में भारतीय मूल्यों और आदर्शों के ह्रास एवं टूटन के प्रति सर्वत्र चिन्तित हैं। वे उन शाश्वत सिद्धान्तों की विघटन प्रक्रिया से सतत विकल हैं। वस्तुत: यह सांस्कृतिक विरासत ही हमारी सच्ची निधि है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मुखर्जी, बीरेन्द्र नाथ: उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त: पृ. 515*
2. *वही, पृ. 516*
3. *Jonson, Herry. M. : Siciology, A sysmalic instruction, P. 49*
4. *Mukherjee and singh, B : The setires of Social Science, P. 23*
5. *Durkheim, Emile : The rules of Sociological Method, P. 142*
6. *गुप्त, जगदीश : नयी कविता : स्वरुप और समस्याएँ, पृ. 214*
7. *जोशी, शरद : रहा किनारे बैठ, पृ. 77*
8. *जोशी, शरद : टेलीफोन रहस्य- (प्रतिदिन-1), पृ. 60*
9. *जोशी, शरद : हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, पृ. 12*
10. *वही, पृ. 3*
11. *जोशी, शरद : सब कुछ और कुछ नहीं, (प्रतिदिन-1), पृ. 66*
12. *जोशी, शरद : हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, पृ. 194*
13. *जोशी, शरद : चलो अब जाओ यहाँ से, (प्रतिदिन-1) पृ. 95*
14. *जोशी, शरद नए दादा, पुराने दादा, (प्रतिदिन-1), पृ. 47*
15. *जोशी, शरद : रहा किनारे बैठ, पृ. 74*
16. *वही, पृ. 77*
17. *वही, पृ. 77*
18. *जोशी, शरद : यथासंभव, पृ. 114*
19. *वही, पृ. 107*

उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति में परिवर्तन : कारण व परिणाम

डॉ. अमित कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय ग्रामीण समाज की संस्कृति अर्थात लोक संस्कृति के सम्बन्ध में है। अध्ययन हेतु भौगोलिक क्षेत्र के रुप में हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड के जनपद अल्मोड़ा के विकासखण्ड हवालबाग का पर्वतीय गांव धामस चुना गया है। यह देखने का प्रयास किया गया है कि आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण व ग्रामीण नगरीय प्रवास रुपी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के फलस्वरुप भारतीय गांवों विशेषकर, उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय गांवों की लोक संस्कृति कहीं प्रभावित-परिवर्तित तो नहीं हो रही है और यदि हाँ, तो परिवर्तनों का स्वरुप क्या है? यह शोध पत्र प्राथमिक व द्वितीयक समंकों के विश्लेषण पर आधारित है।

प्रस्तावना : लोक समाज अर्थात स्थानीय समाज की संस्कृति को लोक संस्कृति कहा जाता है। इस अवधारणा को प्रतिपादित करने का श्रेय समाजशास्त्री रॉबर्ट रेडफील्ड को जाता है जिन्होंने अपनी कृति 'Folk Culture' में कृषक संस्कृति (Peasent Culture) के नाम से इसे सम्बोधित किया। कुछ समय बाद जॉर्ज फॉस्टर ने अपनी पुस्तक 'What is Folk Culture' में ग्रामीण विशेषताओं से युक्त संस्कृति को लोक संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया, जिसे बाद में रेडफील्ड ने भी स्वीकार कर लिया। रेडफील्ड, जिमरमैन, सोरोकिन तथा गालपिन आदि समाजशास्त्रियों ने लोक संस्कृति की अवधारणा की कुछ विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया जैसे कि सरलता, मौखिक सांस्कृतिक परम्परा, व्यावसायीकरण का अभाव, कृषक जीवन पर आधारित, स्थानीय स्वरुप, बौद्धिक, धार्मिक एवं नैतिक जीवन की दृष्टि से पूर्णता का अभाव, कलात्मक क्रियाओं में सामान्य सहभाग तथा सृजनात्मकता आदि। यही विशेषतायें लोक संस्कृति को राष्ट्रीय संस्कृति अर्थात वृहद समाज की संस्कृति से भिन्न करती हैं।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, पाश्चात्य शिक्षा तथा वैज्ञानिक प्रगति के प्रभाव से लोक संस्कृति में परिवर्तन हुए हैं। वास्तविकता यह है कि आज अभिजात वर्ग की तर्कशील और परिवर्तनशील संस्कृति ने लोक संस्कृति को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। फॉस्टर ने लिखा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सैकड़ों वर्ष से लोक संस्कृति तथा अभिजात संस्कृति के बीच अन्त:क्रिया चलती रही है और इन दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया है। इस अन्त:क्रिया के फलस्वरुप लोक संस्कृति अभिजात संस्कृति के अनेक सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करती रही है और कभी-कभी इनको अपने में आत्मसात् भी कर लिया है।

लोक संस्कृति में होने वाले परिवर्तन इस दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण हैं कि वर्तमान युग में इसके अन्तर्गत जन-सामान्य का सहभाग निरन्तर कम होता जा रहा है। आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण के प्रभाव से स्थानीय जीवन नगरीय संस्कृति को अपना आदर्श मानने लगा है। ग्रामों में बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा प्रबल होने लगी है कि लोक संस्कृति इस सीमा तक परिवर्तित हो गई है कि अब इसे उनके जीवन के लिए अधिक उपयोगी नहीं कहा जा सकता। यह सम्भव है कि वर्तमान परिवर्तन बदलती हुई रुचियों और

मनोवृत्तियों के अनुरुप हों, लेकिन यह भी सच है कि इन परिवर्तनों के फलस्वरुप लोक जीवन में सांस्कृतिक विघटन की एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है। इसके पश्चात् भी यह ध्यान रखना होगा कि लोक संस्कृति में उत्पन्न परिवर्तन अभी इतने सीमित हैं कि उनके आधार पर ग्रामीण समुदाय के लोक जीवन को पूर्णतया विघटित नहीं कहा जा सकता, यद्यपि इन परिवर्तनों में तीव्रता आने पर लोक जीवन में विघटन के तत्व अधिक प्रभावपूर्ण बन सकते हैं।

जहाँ तक उत्तराखण्ड राज्य का प्रश्न है, यह हिमालयी राज्य अपनी अनूठी संस्कृति के कारण ही सम्पूर्ण विश्व में अपनी अलग पहचान रखता है। देवभूमि के नाम से विख्यात यह राज्य अपनी समृद्ध लोक सांस्कृतिक विरासत के दम पर ही विश्व भर के पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। यह राज्य पतित पावनी गंगा नदी का उद्गम स्थल है, चार धाम, अनेक ग्लेशियर, पाताल भुवनेश्वर गुफा, कैलाश मानसरोवर यात्रा मार्ग, कुम्भ एवं अर्द्धकुम्भ का आयोजन स्थल हरिद्वार, फूलों की घाटी, अनेक पर्व, त्यौहार व मेले और नन्दा राजजात यात्रा आदि आयोजन व स्थल उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाने के लिए पर्याप्त हैं।

किन्तु, सम्पूर्ण भारतवर्ष की भांति, उत्तराखण्ड राज्य की लोक संस्कृति भी संक्रमण काल से गुजर रही है ऐसा प्रतीत होता है। रोजी-रोटी के संकट के कारण यहाँ के युवा वर्ग का अन्य राज्यों को पलायन, बाहरी संस्कृति का निरन्तर बढ़ता प्रभाव व दबाव, औद्योगीकरण व मीडिया/टेलीविजन का हस्तक्षेप आदि वे कारण हैं जिन्होंने यहां की सांस्कृतिक परम्परा के ताने बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है। सांस्कृतिक परम्परायें सांस्कृतिक प्रदर्शन बन कर रह गयी हैं। ऐसे में हम इस राज्य की सांस्कृतिक विरासत को कैसे बचा कर रख पायेंगे, इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

शोध के उद्देश्य : उपरोक्त आधार पर प्रस्तुत शोध में, निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की गई है-

1. उत्तराखण्ड के पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों की लोक संस्कृति में आ रहे परिवर्तनों का पता लगाना।
2. इन परिवर्तनों के कारणों को सामने लाना व
3. इन परिवर्तनों के प्रभावों का पता लगाना।

साहित्य सर्वेक्षण : जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है, लोक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन रॉबर्ट रेडफील्ड ने किया जिसका ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन में विशेष महत्व है। इसी अवधारणा के सन्दर्भ में रेडफील्ड ने अनेक अन्य अवधारणाओं को भी प्रस्तुत किया है। अपने एक नगर, एक कस्बे, एक गांव तथा एक जनजातीय ग्राम का तुलनात्मक रुप से अध्ययन किया। इसी प्रकार ऑस्कर लेविस ने मैक्सिको तथा भारत के दो गांवों का, रुथ बेनेडिक्ट ने तीन जनजातीय समाजों का एवं ओपलर तथा सिंह ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो गांवों का स्थानीय संस्कृति के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। रेडफील्ड का अध्ययन इन सभी विद्वानों की तुलना में विशेष रुप से महत्वपूर्ण था। रेडफील्ड की लोक संस्कृति की अवधारणा के विचार स्रोत के रुप में तीन विचारकों के अध्ययन विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं-

प्रथम, एच. एस. मेन ने समाज के रुप को स्पष्ट करते हुए दो प्रकार की समाज व्यवस्थाओं का वर्णन किया है। एक समाज व्यवस्था तो वह है जिसके आधार के रुप में प्रस्थिति तथा नातेदारी सम्बन्ध का महत्व पाया जाता है, जबकि दूसरे प्रकार की समाज व्यवस्था के आधार के रूप में क्षेत्र तथा सामाजिक समझौते का।

द्वितीय, एफ. टॉनीज ने समाज को दो रुपों में वर्गीकृत किया है- (अ) समाज और (ब) समुदाय। आपने इस वर्गीकरण के आधार पर बताया है कि प्राचीन समय में समाज के संगठनों का स्वरुप बहुत साधारण था, जबकि आधुनिक समय में यह स्वरुप काफी जटिल होता जा रहा है।

तृतीय, दुर्खीम ने अपनी रचना 'समाज में श्रम विभाजन' में दो प्रकार के सामाजिक संगठनों का उल्लेख किया है, एक यान्त्रिक एकता और दूसरे सावयवी एकता वाले समाजों का। यान्त्रिक एकता (सम्पूर्ण एकता) प्राचीनकाल के आदिम समाजों में और सावयवी एकता (भिन्नताओं एवं सामाजिक परिवर्तनों का पाया जाना) आधुनिक समाजों में पाई जाती है।

उपर्युक्त विद्वानों के अध्ययनों से प्रभावित होकर रेडफील्ड ने लोक संस्कृति की अवधारणा प्रतिपादित की। प्रारम्भ में आपने इसके लिए 'कृषक संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया।

रेडफील्ड के अतिरिक्त लोक संस्कृति को स्पष्ट करने की दृष्टि से मैकिम मैरियट ने उत्तर प्रदेश के किशनगढ़ी ग्राम के अध्ययन से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। आपने बताया कि इस गांव में 'बासुर पूजा' या 'देवी-देवता की पूजा', 'कुएं के देवता का मेला', 'बरहो बाबू की पूजा' ऐसे मेले या त्यौहार हैं जिनका अभिजात संस्कृति या दीर्घ परम्परा के साथ कोई प्रकट सम्बन्ध नहीं है। यहां तक कि दीर्घ परम्परा से सम्बन्धित दीपावली के त्यौहार में, जिस रुप में वह किशनगढ़ी में मनाया जाता है, कुछ ऐसे तत्व पाए जाते हैं जिनका रावण पर विजय प्राप्त कर राम के वापस अयोध्या लौटने या लक्ष्मी का विवाहोत्सव मनाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस दिन यहां के लोग अभिजात संस्कृति से सम्बन्धित इन दोनों घटनाओं को मनाने के लिए दीपक जलाते हैं, लक्ष्मी की पूजा भी करते हैं, परन्तु इसी दिन ये कुछ अन्य अनुष्ठान भी करते हैं। उदाहरण के रुप में, यहां के लोग अपने मकानों में साधारणत: दीवाली पर 'सौरती' नामक देवी की चावल के आटे की एक प्रतिमा बनाते हैं और विभिन्न तरीकों से उसकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् वे देवी से समृद्धि एवं परिवार और पशुओं की सुरक्षा हेतु प्रार्थना करते हैं। ग्राम के कुछ लोग 'सौरती'

और 'लक्ष्मी' को एक ही मानते हैं। परन्तु अधिकांश इन्हें अलग-अलग मानते हैं। सौरती को लक्ष्मी से भिन्न मानने वाले ग्रामीणों का कहना है कि 'लक्ष्मी' केवल धनी लोगों की देवी है।

किशनगढ़ी ग्राम में ही रक्षाबन्धन के दिन इस त्यौहार के अतिरिक्त एक अन्य त्यौहार मनाया जाता है जिसे यहां सैलूनों नाम से पुकारते हैं। इस अवसर पर पिछले पन्द्रह दिन से युवा पत्नियां अपने माता-पिता और भाई-बहिनों के यहां रहने आती हैं। सैलूनों के दिन उनके पति भी उन्हें वापस लेने हेतु अपनी ससुराल आते हैं। इस दिन अपने पतियों के साथ वापस लौटने के पूर्व पत्नियां और उनकी अविवाहित बहनें अपने भाइयों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु उनके कान और सिर पर जौं (अनाज) की बालियां रखती हैं। चूँकि भाई अपनी बहनों से मुफ्त भेंट के रुप में कुछ भी स्वीकार नहीं करते, अत: बदले में उन्हें कुछ सिक्के (रुपये, पैसे) आदि देते हैं। फिर भाई अपने जीजा के साथ खेल-कूद में भाग लेते हैं, इसी दिन यहां रक्षाबन्धन का त्यौहार, जो कि अभिजात संस्कृति से सम्बन्धित है, भी मनाया जाता है। मैकिम मैरियट की मान्यता है कि यह सम्भव है कि सौरती की पूजा एवं सैलूनों जैसे लघु परम्परा या लोक संस्कृति से सम्बन्धित त्यौहारों से ही दीपावली एवं रक्षाबन्धन जैसे अभिजात संस्कृति से सम्बन्धित त्यौहारों की उत्पत्ति हुई हो। सौरती और सैलूनों तथा किशनगढ़ी और देश के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में मनाये जाने वाले अन्य मेले, त्यौहार एवं अनुष्ठान इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि लोक संस्कृति की अपनी स्वयं की विशिष्ट विशेषताएं हैं। लोक संस्कृति में स्वयं की सृजनात्मक क्षमता भी पाई जाती है और इसके विस्तार का क्षेत्र काफी व्यापक है।

शोध पद्धति : अध्ययन हेतु निम्नलिखित शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है-

अध्ययन की उपकल्पनाएँ : प्रस्तुत अध्ययन में दो उपकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है-

1. नगरीय संस्कृति के प्रभाव ने ग्रामीण क्षेत्रों में लोक संस्कृति को परिवर्तित किया है।
2. लोक संस्कृति को संरक्षित करने में राज्य सरकार की भूमिका उदासीन है।

शोध प्ररचना : शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिये पहले से ही बनाई गई योजना की रुपरेखा को शोध प्ररचना (Research Desigen) कहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में विवरणात्मक शोध या वर्णनात्मक शोध प्ररचना तथा निदानात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है।

तथ्य संकलन : प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक तथ्यों के एकत्रीकरण और विश्लेषण पर आधारित है। प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने के लिये साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची व अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्य जिन स्रोतों से एकत्रित किये गये हैं वे हैं-जनगणना प्रतिवेदन 2011, सम्बन्धित सरकारी और गैर सरकारी कार्यालयों के प्रतिवेदन, प्रकाशित और अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, शोध पत्र एवं पत्रिकाएं, समाचार पत्र, स्तरीय पुस्तकें, विभिन्न पुस्तकालय एवं इंटरनेट।

निदर्शन : प्रस्तुत अध्ययन का भौगोलिक क्षेत्र उत्तराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा जनपद के विकासखण्ड हवालबाग का गांव धामस है। इस गांव की कुल जनसंख्या 800 है। साक्षरता दर 68 प्रतिशत है। चूँकि प्रस्तुत अध्ययन का भौगोलिक क्षेत्र बहुत व्यापक था और सभी इकाईयों को अध्ययन में सम्मिलित कर पाना सम्भव नहीं था, इसलिए निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। इस क्रम में दैव निदर्शन की लॉटरी प्रणाली का प्रयोग करते हुए इस गांव से 50 महिला-पुरुषों का चयन उत्तरदाताओं के रुप में किया गया है और उनसे प्राथमिक आँकड़े एकत्रित किये गये हैं। एकत्र किये गये तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन और विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले गये हैं व यथासंभव सांख्यिकीय पद्धति का भी प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय : इस गांव के मुख्य निवासी कृषक, पशुपालक व सेवा निवृत्त सैनिक हैं। इस गांव में ब्राहमण, क्षत्रिय व अनुसूचित जातियां निवास करती हैं। गांव की आजीविका के मुख्य स्रोत कृषि, पशुपालन, बागवानी व व्यापार हैं। इस गांव का निकटवर्ती खूंट ग्राम महान कवि सुमित्रानन्दन पंत की जन्मस्थली है। इसी कारण धामस गांव सांस्कृतिक रुप से अत्यन्त समृद्ध है। यह गांव पर्वतीय सांस्कृतिक परम्परा को विश्वास पूर्वक आगे बढ़ा रहा है। इस कार्य में गांव की महिलाएँ विशेष योगदान दे रही हैं। इस गांव में नियत समय पर हरेला, घी संक्रान्ति, फूल देई और खतड़वा जैसे त्यौहार और चैत के मेले पूर्ण उल्लास से लगते व मनाये जाते हैं और इन अवसरों पर झोड़ा, चाचरी व जागरी जैसे नृत्य भी किये जाते हैं।

सारांश : प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने के क्रम में उत्तरदाताओं से 45 प्रश्न पूछे गये थे व 34 सारणियों किया गया था। इन सारणियों के विश्लेषण व व्याख्या के आधार पर अध्ययन का सारांश प्रस्तुत है-

1. सर्वाधिक 30 प्रतिशत उत्तरदाता 41-50 आयु वर्ग के मध्य के हैं।
2. सभी उत्तरदाता अध्ययन क्षेत्र के मूल निवासी हैं।
3. सर्वाधिक 64 प्रतिशत उत्तरदाताओं की अधिकतम शैक्षणिक योग्यता माध्यमिक स्तर की है।
4. सर्वाधिक 40 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं।
5. सर्वाधिक 70 प्रतिशत उत्तरदाता सामान्य जाति के सदस्य हैं।
6. लगभग सभी उत्तरदाता (96 प्रतिशत) सनातन धर्म के अनुयायी हैं।

7. 70 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवार व्यवस्था में रहते हैं।
8. 18 प्रतिशत उत्तरदाता सेवा क्षेत्र, 24 प्रतिशत उत्तरदाता व्यापार व कृषि कार्य और सर्वाधिक 58 प्रतिशत गृहणियाँ हैं।
9. सभी उत्तरदाता लोक संस्कृति की अवधारणा से परिचित हैं।
10. सभी उत्तरदाताओं को लोक कला का ज्ञान है।
11. सभी उत्तरदाताओं को लोक नाट्य का ज्ञान है।
12. सभी उत्तरदाताओं को लोक नृत्य का ज्ञान है।
13. सभी उत्तरदाताओं को लोक परम्पराओं का ज्ञान है।
14. सभी उत्तरदाताओं को लोक गाथाओं का ज्ञान है।
15. 60 प्रतिशत उत्तरदाता मैती परम्परा से अवगत हैं।
16. 70 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि त्यौहारों व मेलों के पौराणिक स्वरुप में अन्तर आ रहा है।
17. लगभग सभी उत्तरदाताओं के परिवार में अधिकतम सदस्यों की संख्या 07 है।
18. 80 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि शिक्षा का स्तर बढ़ने के कारण लोक संस्कृति के स्वरुप में परिवर्तन आ रहा है।
19. 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार, वर्तमान समय में पूरा परिवार एक साथ बैठकर त्यौहार नहीं मना पाता है।
20. 70 प्रतिशत उत्तरदाता सपरिवार मेला देखने जाने में असमर्थ है।
21. 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मतानुसार टेलीविजन संस्कृति ने लोक संस्कृति के प्रभाव को कम किया है।
22. 94 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लोक संस्कृति के प्रभाव में काफी कमी आई है।
23. 87.23 प्रतिशत उत्तरदाता इस परिवर्तन को चिन्ताजनक मानते हैं तथा शेश उत्तरदाता इस परिवर्तन को सकारात्मक रूप में स्वीकार कर रहे हैं।
24. 78 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि युवा पीढ़ी लोक संस्कृति के प्रति उदासीन है।
25. 80 प्रतिशत उत्तरदाता त्यौहार मनाने के लिए समय नहीं निकाल पाते।
26. 70 प्रतिशत उत्तरदाता मेलों में जाने के लिए समय नहीं निकाल पाते।
27. 80 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि युवा पीढ़ी ऐसे कार्यों के लिए समय नहीं निकालती।
28. 76 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि उन्हें लोक संस्कृति का सम्पूर्ण पारम्परिक ज्ञान नहीं है।
29. अधिकाँश उत्तरदाता (88 प्रतिशत) महंगाई को तीज-त्यौहार मनाने में बाधा मानते हैं।
30. मात्र 10 प्रतिशत उत्तरदाता ही तीज-त्यौहार मनाने में संकोच का अनुभव करते हैं।
31. 92 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लोक संस्कृति का बाजारीकरण हो रहा है।
32. 78 प्रतिशत उत्तरदाता लोक संस्कृति के संरक्षण में सामाजिक संगठनों की भूमिका को उदासीन मानते हैं।
33. 70 प्रतिशत उत्तरदाता इस दिशा में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को भी उदासीन मानते हैं।
34. 84 प्रतिशत उत्तरदाता लोक संस्कृति के संरक्षण में सरकार की भूमिका से सन्तुष्ट नहीं हैं।

लोक संस्कृति में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारण : उत्तरदाताओं के अनुसार ये कारण इस प्रकार है।

1. युवा पीढ़ी में आधुनिक शिक्षा का बढ़ता हुआ प्रभाव।
2. रोजी-रोटी की चिन्ता।
3. लोक संस्कृति पर हावी होता हुआ बाजारवाद।
4. समय की कमी।
5. सामाजिक उदासीनता।
6. सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता।

उत्तरदाताओं द्वारा दिये गये सुझाव : उत्तराखण्ड में लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु उत्तरदाताओं द्वारा अनेक सुझाव भी प्रस्तुत किये गये-

1. लोक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनों के लिये सरकार अनुदान की व्यवस्था करे।
2. लोक संस्कृति के प्रचार-प्रसार का दायित्व गैर सरकारी संगठन भी उठायें।
3. उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन रोकने के लिये प्रभावी कदम उठाये जायें, ताकि यहां की युवा पीढ़ी यहीं रहकर लोक संस्कृति में अपेक्षित व सकारात्मक परिवर्तन लाकर उसे अधिक जनोपयोगी बना सके।
4. ग्रामीण समाज की रोजी-रोटी की चिन्ता दूर करने की व्यवस्था की जाये, ताकि ग्रामीणजन अपनी संस्कृति के संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित कर सकें।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि-

1. उत्तराखण्ड के सभी ग्रामीणजन लोक संस्कृति की सम्पूर्ण अवधारणा से पूर्णत: परिचित हैं।
2. समय परिवर्तन के साथ ग्रामीण पर्वतीय क्षेत्रों में, त्यौहारों व मेलों के पौराणिक स्वरुप में अन्तर आ रहा है।
3. शिक्षा लोक संस्कृति के स्वरुप में परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण कारक है। आधुनिक शिक्षा लोक संस्कृति के परम्परागत स्वरुप को परिवर्तित कर रही है।
4. ग्रामीणजन लोक संस्कृति के स्वरुप में आ रहे परिवर्तनों को लेकर चिन्तित हैं। वे युवा पीढ़ी से लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु आगे आने की अपेक्षा करते हैं।

5. ग्रामीणजन लोक संस्कृति के संरक्षण में समाजसेवी संगठनों, गैर सरकारी संगठनों व सरकार की भूमिका से निराश हैं।
6. महंगाई की समस्या ने लोक संस्कृति के प्रभाव को कम किया है।
7. बाजारवाद ने लोक संस्कृति के परम्परागत स्वरुप को नष्ट किया है।
8. टेलीविजन संस्कृति भी लोक संस्कृति के परम्परागत स्वरुप को परिवर्तित करने के लिये उत्तरदायी है।
9. कुछ लोग लोक संस्कृति के परम्परागत स्वरुप में आ रहे परिवर्तनों को सकारात्मक भी मानते हैं।
10. ग्रामीणजनों के अनुसार लोक संस्कृति में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी कारक हैं-समय की कमी, रोजी रोटी की चिन्ता व सामाजिक उदासीनता आदि।

सुझाव : प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति के पारम्परिक स्वरुप में परिर्वतन आ रहे हैं। ये परिवर्तन समय की कमी, आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा, टेलीविजन के बढ़ते प्रभाव, शिक्षा के बदलते हुए स्वरुप और बाहरी संस्कृति से संपर्क के कारण आ रहे हैं। इससे लोक संस्कृति का प्रभाव कम हो रहा है, जिससे उत्तराखण्ड की पारम्परिक पहचान में कमी आ रही है। आवश्यकता इस बात की है कि उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति को बचाया जाए, ताकि यह राज्य संपूर्ण विश्व में अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रख सके। इस हेतु यहां की लोक संस्कृति को रोजगार से जोड़ना होगा, महिलाओं को अपनी भूमिका और सशक्त करनी होगी और राज्य सरकार को भी लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु अपने स्तर से गम्भीर प्रयास करने होंगे, तभी देवभूमि उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक पहचान बनी रह सकेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अग्रवाल, अमित, भारत में ग्रामीण समाज, विवेक प्रकाशन, 2009, दिल्ली।*
2. *अग्रवाल, अमित, रुरल सोसायटी इन इण्डिया, विवेक प्रकाशन, 2007, दिल्ली।*
3. *अग्रवाल, अमित, 'भारतीय सामाजिक समस्यायें', विवेक प्रकाशन, 2010, दिल्ली।*
4. *अग्रवाल, जी. के. व पाण्डे, एस. एस., ग्रामीण समाजशास्त्र, आगरा बुक स्टोर, 1995, पंचकुईया।*
5. *बिष्ट, शेर सिंह कुमाँऊ हिमालय : समाज एवं संस्कृति, चीनाखान, 1999, अल्मोड़ा।*
6. *गुप्ता, एम. एल. व शर्मा, डी. डी., ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2007, आगरा।*
7. *लवानिया, एम. एम., ग्रामीण समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, 2003, जयपुर।*
8. *मुकर्जी, आर. एन., भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, प्रकाश बुकडिपो, 2003, बरेली।*
9. *नवानी, लोकेश व मैती, कल्याण सिंह रावत, 'उत्तराखण्ड ईयर बुक 2014', विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, 2014, देहरादून।*
10. *पाण्डे, बद्रीदत्त, कुमाँऊ का इतिहास, देशभक्त प्रेस, 1937, अल्मोड़ा।*
11. *पाण्डे, जी. सी., उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था, कन्सल पब्लिकेशन, 1977, नैनीताल।*
12. *पोखरिया, देव सिंह, कुमाँऊनी संस्कृति, अल्मोड़ा बुक डिपो, 1993, अल्मोड़ा।*
13. *रुवाली, के. डी., कुमाऊँनी भाषा और संस्कृति, अल्मोड़ा बुकडिपो, 1994, अल्मोड़ा।*
14. *सिंह, बी- एन., ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, 2008, दिल्ली।*
15. *टायलर, ई. बी., प्रिमिटिव कल्चर, जॉन मुरे, 1913, लन्दन।*

भारत में खाद्यान्न प्रबंधन

डॉ. प्रवीण ओझा
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

आज का युग प्रबन्धन का युग है। व्यवसाय के संगठन एवं समन्वयन की गतिविधि में प्रबन्धन की विशेष भूमिका रहती है। प्रबन्ध की प्रमुख शर्तों में विपणन एवं नवीनीकरण का विशेष स्थान है। 16वीं शताब्दी से आधुनिक प्रबन्धन का प्रारंभ माना जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न प्रबन्धन एवक प्रमुख विषय है जिस पर गहन चिंतन की आवश्यकता है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को उच्च प्राथमिकता दी गयी तथा 'अधिक अन्न उपजाओ' के नारे के साथ 'हरित क्रान्ति' का आगाज किया गया। जिससे भारत ने खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य तो प्राप्त कर लिया तथापि निर्धनता एवं उचित प्रबंधन के अभाव में खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाया। यह एक बहुत ही जटिल समस्या है, जिसका समाधान खाद्यान्न के उचित प्रबंधन एवं आपूर्ति में निहित है। गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों को स्वच्छ पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। यद्यपि खाद्यान्न संकट एक विश्वव्यापी समस्या है तथापि भारत में इसके निवारण की ओर ध्यान देना परम आवश्यक है। उत्तम खाद्यान्न प्रबंधन द्वारा देश के लाखों परिवारों को एक सम्पूर्ण भोजन प्राप्त होना संभव हो सका है। सरकार ने भोजन को मूलभूत आवश्यकता मानते हुये इसे पूरा करने हेतु सतत गंभीर प्रयासों पर बल दिया है जिसे खाद्य सुरक्षा का नाम दिया गया है। पहले के संदर्भ में खाद्य सुरक्षा का अर्थ भरपेट भोजन था किन्तु आज के विकास आधारित युग में इसका क्षेत्र व्यापक हो गया है तथा इसमें सन्तुलित आहार, स्वच्छ पेयजल, स्वस्थ वातावरण एवं उचित प्रबन्धन द्वारा सरकार खाद्यान्न एवं इससे संबंधित क्षेत्रों के विकास के लिये प्रयासरत है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहां बहुसंख्यक फसलों की पैदावार होता है जिनमें खाद्यान्न फसलों की बहुलता है कृषि एवं उससे सम्बद्ध क्षेत्र से जुड़े व्यवसायों से ही भारत की लगभग आधी जनसंख्या रोजगार प्राप्त करती है। यही कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का महती योगदान रहता है। वर्तमान समय में रोजगार में कृषि क्षेत्र की भागीदारी कुल कार्यरत का 48.9 प्रतिशत है। जबकि जीडीपी में कृषि की भागीदारी स्थिर कीमतों में 2014-15 में 17.4 प्रतिशत थी। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-13 से 2016-17) में कृषि एवं उससे जुड़े क्षेत्रों के लिये 04 प्रतिशत वृद्धि लक्ष्य की परिकल्पना की गयी है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये 8 प्रतिशत से अधिक होना आवश्यक है। कृषि में वृद्धि दर 2012-13 में 1.5 प्रतिशत , 2013-14 में 4.29 , 2014-15 में (-) 0.2 प्रतिशत रही है। 08 फरवरी 2016 को जारी 'सीएमओ' के अनुमानों के अनुसार 2015-16 में इसमें 1.1 प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान है। आज भी भारम में 60 प्रतिशत कृषि मानसून पर आधारित है तथा खराब मानसून के बाद परेशान किसानों के खेती छोड़कर जाने का क्रम भी जारी है। वर्ष 2001 में 12.73 करोड़ किसान थे जो सन् 2011 में घटकर 11.87 करोड रह गये है अर्थात 86 लाख किसानों ने खेती छोड़ दी। ताजा ऑकड़ों के अनुसार पिछले 20 वर्षो से प्रतिदिन लगभग 2052 कृषक कृषि कार्य छोड़कर मजदूरी के लिये शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

ISSN 2277-5587

जिससे खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट आती है एवं जिसके परिणाम स्वरुप मूल्यवृद्धि के कारण निर्धन वर्ग में भुखमरी की समस्या में वृद्धि होती है। उसी वर्ग के उचित व्यवस्था कर खाद्यान्न उपलब्ध करवाना ही सफल खाद्यान्न प्रबन्धन है।

उत्तम खाद्यान्न प्रबन्धन में तीन तत्वों का समावेष होता है - **प्रथम,** मानव को जीवित बनाये रखने एवं उसके शारीरिक एवं बौद्धिक विकास हेतु आवश्यक खाद्यान्न उपलब्ध करवाना। **द्वितीय** - लोगों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति की उपलब्धता करवाना जिससे वे आवश्यक खाद्यान्न क्रय कर सकें एवं **तृतीय**- खाद्यान्नों की उचित मूल्य पर आपूर्ति, राज्यों की सापेक्षिक स्थिति का मूल्यांकन एवं कुपोषण की स्थिति के निवारण के उपयों के प्रति गंभीरता। वृहत एवं सूक्ष्म पौष्टिक तत्वों से युक्त भोजन न मिल पाने से कुपोषित बच्चों का बौद्धिक एवं भौतिक विकास नहीं हो पाता है, जिससे राष्ट्रीय उत्पादकता में कमी आती है। खाद्यान्न प्रबन्धन के माध्यम से देश में सतत चहुंमुखी प्रयास किये जा रहे हैं जिनमें से प्रमुख निम्नानुसार है -

1. **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक :** भारत सरकार द्वारा 5 जुलाई 2013 को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अध्यादेश 2013 जारी किया गया। इसी क्रम में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक 2013 लोकसभा में 28 अगस्त 2013 एवं राज्य सभा मे 03 सितम्बर 2013 को पारित कर दिया गया। भारत के राष्ट्रपति द्वारा 12 सितम्बर 2013 को इस पर हस्ताक्षर करने के साथ ही यह कानून बन गया। इसका लक्ष्य 'सबके लिये खाद्य' रखा गया था। यह विधेयक भुखमरी उन्मूलन की दिशा में गहन चिन्तन पर आधारित रणनीति का परिणाम था।

2. **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम :** उक्त विधेयक के आधार पर 20 अगस्त 2013 से प्रारंभ में दिल्ली, हरियाणा, उत्तराखण्ड में तथा बाद में पूरे देश में लागू कर दिया गया। इसके क्रियान्वयन का दायित्व राज्य सरकारों को सौंपा गया है। उक्त अधिनियम के प्रावधानों के तहत संचालित इस कार्यक्रम में देश की 75 प्रतिशत ग्रामीण एवं 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को प्रतिमाह, प्रतिव्यक्ति 05 किलोग्राम खाद्यान्न रियायती दर पर तथा अन्त्योदय योजना के अन्तर्गत आच्छादित परिवारों को 35 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति परिवार दिये जाने का प्रावधान किया गया था। इसमें गेहूं का निर्गम मूल्य 3 रु. प्रति किलो, चावल का 5 रु. तथा मोटे अनाज का 1 रु. प्रति किलो निर्धारित किया गया तथा प्रति तीन वर्ष उपरान्त मूल्यों के पुनरीक्षण का प्रावधान भी दिया गया था। गर्भवती एवं प्रसूताओं के प्रसव के 6 माह तक स्थानीय आंगनवाड़ी से पकाया हुआ नि:शुल्क भोजन एवं 6000 रु. का मातृत्व लाभ देने तथा 6 माह से 6 वर्ष तक के बच्चों के लिये भी इसी प्रकार भोजन के साथ-साथ 6 से 14 वर्ष की आयु वाले बच्चों को विद्यालयों में मध्यान्ह भोजन, कुपोषित बच्चों को नि:शुल्क भोजन देने की व्यवस्था की गयी। सरकार द्वारा भोजन उपलब्ध न करवाने की स्थिति में खाद्य सुरक्षा भत्ता देने का भी प्रावधान है। इस हेतु जारी राशन कार्ड में मुखिया के स्थान पर परिवार की सबसे बड़ी महिला का नाम दर्ज किया जाता है। राज्यों द्वारा संचालित इस कार्यक्रम हेतु खाद्यान्न की व्यवस्था का दायित्व केन्द्र सरकार का होता है। इसमें स्थानीय स्तर पर शिकायत निवारण की भी व्यवस्था की गयी है।

3. **खाद्य सुरक्षा हेतु समानान्तर गतिविधियां:** इस दिशा में खाद्य सुरक्षा विधेयक के अतिरिक्त अन्य बहुत से कार्य, संस्थाएं गतिविधियां भी महत्वपूर्ण है जो खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम को सफल बनाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। इस दिशा में हकदारी भरण कार्यक्रम जैसे एकीकृत बाल विकास स्कीम, एमडीएमएस, मध्यान्ह भोजन स्कीम, खाद्य सब्सिडी कार्यक्रम जैसे लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अन्नपूर्णा योजना, निराश्रित, गरीब के लिये 10 किलो अनाज, जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना, न्यूनतम मजदूरी पर 100 दिन का रोजगार तथा अन्य सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम इत्यादि इसी के पूरक प्रयास है।

4. **सार्वजनिक वितरण प्रणाली :** खाद्य की अपर्याप्तता की समस्या के निवारणार्थ एवं इस कार्यक्रम को सफल बनाने में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की विशिष्ट भूमिका रही है। खाद्यान्न की अपर्याप्तता को दूर करने हेतु यह प्रणाली प्रारंभ की गयी थी। निर्धन वर्ग को खाद्य सुरक्षा निश्चित करने हेतु यह राज्य के हस्तक्षेप का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। यह गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली उस जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास करती है जो भोजन के लिये बाजार मूल्य पर अनाज क्रय नहीं कर सकते हैं। साथ ही शासन इसमें खाद्यान्न की समय पर आपूर्ति एवं उसकी उचित वितरण व्यवस्था को भी स्वयं की देखरेख में संचालित करता है। इसमें सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद करना, खाद्य स्टॉक निर्मित करना, इसे बनाये रखना, इनका भण्डारण एवं समय पर वितरण एवं दुर्बल वर्गो तक इसकी पहुंच सुनिश्चित करना इत्यादि सम्मिलित है। शासन का उद्देश्य खाद्यान्न तक आर्थिक पहुंच सुनिश्चित करना चाहे वह रोजगार सृजन के माध्यम से हो या आय हस्तान्तरण के जरिये हो, दूसरी ओर राशन की दुकानों,

उचित मूल्य की दुकानों अथवा नियन्त्रित कीमतों की दुकानों द्वारा सस्ती कीमतों पर अनिवार्य वस्तुएं उपलब्ध करवाना है। जब सन् 2009 में देश में 40,00,000 से भी अधिक उचित मूल्य की दुकानों के नेटवर्क के साथ यह विश्व का सबसे बड़ा वितरण नेटवर्ग था जो प्रतिवर्ष 15,000 करोड़ रु. से अधिक मूल्य की वस्तुओं का लगभग 16 करोड़ परिवारों के बीच वितरण उपलब्ध करवाता था तो आज के परिप्रेक्ष्य में तो इसकी महत्ता को आसानी से समझा जा सकता है।

5. **कृषि उत्पादन में वृद्धि के प्रयास :** देश में कुपोषण की समस्या के निवारण हेतु संचालित यह योजना आवश्यकतानुरुप खाद्यान्न की पूर्ति पर आधारित है, यह तभी संभव है जबकि पर्याप्त मात्रा में कृषि उत्पादन हो रहा हो। इस हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे हैं तथापि अन्य अधिक प्रयास अभी अपेक्षित है। कृषि की उत्पादकता बढ़ाने की दृष्टि से बीज बुनियादी तत्व है। आज हरित क्रान्ति के दूसरे चरण को लागू करने हेतु निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में बीज प्रौद्योगिकी का विकास करना होगा। संकर बीजों का प्रयोग बढ़ाना होगा। इस दिशा में और अधिक शोध, बहस, परीक्षण की आवश्यकता है। बाजार में बीजों की प्रतिस्पर्धा को विकसित किया जाये जिससे कम कीमत पर गुणवत्तायुक्त बीज उपलब्ध हो सकें।

कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सिंचाई व्यवस्था की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्ष 2012-13 में देश में कुल फसल उत्पादन क्षेत्र में निवल सिंचित क्षेत्र का वितरण 33.9 प्रतिशत था। भारत की कुल अधिकतम सिंचाई क्षमता 140 मिलि. हैक्टेयर है जिसे बढ़ाकर कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, में मूंगफली तथा कपास की खेती में स्प्रिंकल सिंचाई प्रक्रिया अपनाने से 35 से 40 प्रतिशत जल की बचत हुई। इसी प्रकार गन्ना एवं बागवानी फसलों में ड्रिप सिंचाई प्रक्रिया ने 40 से 65 प्रतिशत जल एवं सब्जियों में 30 से 47 प्रतिशत जल बचाया। भारत में सिंचाई परियोजनाओं की दक्षता 38 प्रतिशत भूमि जन की दक्षता 65 -70 प्रतिशत है जिसे बढ़ाकर क्रमश: 60 प्रतिशत एवं 75 प्रतिशत किया जाना चाहिये। गेहूँ में फर्ब पद्धति से 25-30 प्रतिशत एवं डेपोग पद्धति से जल, उर्वरकएवं नर्सरी लागत में 50 प्रतिशत तक बचत के प्रयास किये जा रहे हैं। कृषि क्षेत्र में मशीनीकरण में वृद्धि से भी उत्पादन बढ़ाकर खाद्यान्न सुरक्षा कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है। भारत में 20 एकड़ या उससे अधिक भूमि वाले बड़े किसान 38 प्रतिशत तक, 5-20 एकड़ वाले मझले किसान 18 प्रतिशत तक तथा सीमान्त किसान लगभग 01 प्रतिशत तक ट्रेक्टर का प्रयोग करते है जिनका प्रतिशत बढ़ना अपेक्षित है। इसी प्रकार कीटनाशकों का उचित प्रयोग भी इस दिशा में उपयोगी है। इन उपयों से उत्पादन बढाकर इसे सफल बनाया जा सकता है।

कृषि विपणन में सुधार : 2014-15 की बजट घोषणा से कृषि - प्रौद्योगिकी अवसंरचना निधि के माध्यम से राष्ट्रीय कृषि बाजार की स्थापना ने उचित विपणन व्यवस्था द्वारा खाद्य सुरक्षा को सफल बनाने का प्रयास किया है जिसके लिये 2015-16 एवं 2016-17 में 200 करोड़ रु. का बजट प्रस्तावित है तथा ई. बाजार मंच की स्थापना भी अच्छी पहल है जिन्हें लघु कृषक कृषि व्यापार संघ संचालित करेगा एवं 2015-16 में 250, 2016-17 में 200 और 2017-18 में 135 मण्डियों को कवर करेगा। कृषि सहकारिता एवं कृषक कल्याण विभाग इन 585 विनियमित कृषि मण्डियों के लिये अधिकतम 30 लाख रु. प्रति मण्डी भी अनुदान प्रदान करेगा। ये प्रयास खाद्यान्न की उपलब्धता को सुनिश्चित करने में सहायक होंगे।

विशेष आर्थिक क्षेत्र या 'सेज' की भूमिका: देश के आर्थिक विकास का इंजन बनाने के लिये विशेष आर्थिक क्षेत्र या स्पेशल इकोनोमिक जोन या सेज स्थापित किये जिनके लिये बडे पैमाने पर कृषकों से कृषि भूमि का अधिग्रहण कर औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया गया, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ कि ये खाद्यान्न उत्पादन एवं कृषक हितों के विपरीत है एवं खाद्यान्न सुरक्षा के लिये संकट है। किन्तु इसका सकारात्मक पक्ष भी था। सेज से प्राप्त आय पर प्रथम पांच वर्षो में शत-प्रतिशत एवं अगले 2 वर्षो में 50 प्रतिशत की छूट दी गय। यहां पर मुख्य तत्व उचित प्रबन्धन का ही था जो कि कृषक हित, उत्पादन वृद्धि एवं खाद्यान्न सुरक्षा जैसे विषयों में सांमजस्य स्थापित कर सकता है।

इस प्रकार भारत में कुपोषण की समस्या से निपटने में खाद्यान्न प्रबन्ध नही एक मात्र उपाय है जिसने चहुंमुखी प्रयासों द्वारा इस समस्या के निवारण हेतु प्रयत्न किये हैं। अत्यधिक उत्पादन के बाद भी उचित प्रबन्धन व भण्डारण सुविधाओं की कमी के कारण जो खाद्यान्न नष्ट हो जाता था उसे उचित प्रबन्धन के माध्यम से कमजोर वर्ग को उपलब्ध कराने का प्रबन्ध करना सराहनीय है। खाद्यान्न प्रबन्धन की सफलता ने ही कुपोषण की समस्या को काफी हद तक कम कर दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. *रोजन दी नोर्टोन - एग्रीकल्चर डवलपमेन्ट पॉलिसी*
2. *मजूमदार एन.ए. - इण्डियन एग्रीकल्चर इन न्यू मिलेनियम*
3. *रिपोर्टस ऑफ दि कमीशन फॉर एग्रीकल्चर*
4. *आहूजा,आस्था - एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डवलपमेंट*
5. *रुद्धत एवं सुन्दरम - भारतीय अर्थ व्यवस्था*
6. *सिद्ध रमेश - इण्डियन इकोनोमी*
7. *कपिला उमा - इण्डियन इकोनॉमी*

भारत में विपक्ष के रुप में काँग्रेस की भूमिका (1977 से 2004 तक)

अनिता गुप्ता
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और विवेचना प्रजातन्त्र के दो आधार स्तम्भ हैं। विवेचना की स्वतन्त्रता के अभाव में सत्य का सम्पूर्ण पक्ष प्रकाश में नहीं आ सकता। दलीय व्यस्था प्रजातन्त्र का आधार है। विपक्ष की भूमिका राजनीतिक व्यवस्था में उत्तरदायित्वपूर्ण है। उसे सदैव आलोचना प्रत्यालोचना ही नहीं बल्कि प्रस्तावों और विधायकों पर उचित बहस, मंत्रियों से प्रश्न पूछने, निर्णय प्रक्रिया में भाग लेना चाहिए। ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब विपक्ष को सरकार से सदन की कार्यवाही के विषयों, समय निर्धारण या राष्ट्र के समक्ष किसी महत्वपूर्ण विषय पर मधुरता के साथ सहयोग भी करना पड़े। वही शासक पक्ष को भी विपक्ष द्वारा की गई समयवृद्धि की मांग, वाद-विवाद में स्थगन, सरकार से वक्तव्य की माँग या उनके विशेषाधिकारों के हनन के प्रश्न को सहज रुप से स्वीकार करना चाहिए। प्रजातन्त्र की सफलता विरोधी दलों के अस्तित्व से ही है। प्रजातंत्र में विपक्ष की भूमिका स्पष्ट करने के लिए पूर्व प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी के शब्द बड़े सार्थक हैं-"लोकतंत्र का आधार है विरोध को न केवल सहन करने का धैर्य अपितु उसका समाधान करने की उदारता-जहाँ असहिष्णुता है वहां मान्यता नहीं है। वहाँ विरोध को गद्दारी मानने का माप है वहां तो लोकतंत्र ही समाप्त हो जाता है।

भारत में विपक्ष की भूमिका

यह भारतीय लोकतंत्र का दुर्भाग्य ही माना जायेगा कि देश में पन्द्रह संसदीय निर्वाचन के सम्पन्न होने के पश्चात् आज भी सशक्त विपक्ष विकास के क्रम में है। 1967 के आम चुनावों के बाद विभिन्न राज्यों में सत्ता में आई संविद सरकारें, केन्द्र में मार्च 1977 से जनवरी 1980, नवम्बर 1989 से जून 1991 एवं 1996-1998 तथा 1999 से 2004 के काल को छोड़कर देश काँग्रेस व उसके सहयोगियों की सरकार है। ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव के बाद काँग्रेस (ई) का शासन समाप्त हुआ। समय-समय पर देश में काँग्रेस और बाद में काँग्रेस (ई) को चुनौती देने के लिए विपक्षी दलों के मोर्चे संगठित होते रहे हैं। ऐसे मोर्चों को साम्यवादी तथा गैर साम्यवादी दोनों ही रुपों में रखा जा सकता है। साम्यवादी दलों के मोर्चे में मार्क्सवादी दल के नेतृत्व में गठित वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चा प्रमुख है जो पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा और केरल में सफलतापूर्वक कार्य करता रहा है।

गैर-साम्यवादी दलों के मोर्चे

गैर-साम्यवादी दलों ने भी काँग्रेस को चुनौती देने के लिए अनेक मोर्चे बनाये। राष्ट्रीय स्तर पर 1971 में स्थापित संगठन काँग्रेस, भारतीय जनसंघ, स्वतन्त्र पार्टी और सोशलिस्ट और भारतीय जनता पार्टी का लोकतान्त्रिक गठबन्धन तथा राष्ट्रीय मोर्चे को गिनाया जा सकता है। समय-समय पर राज्य स्तर पर अनेक मोर्चे गठित किये गये। इनमें पंजाब में अकाली दल और भारतीय जनसंघ का संयुक्त मोर्चो, उड़ीसा में स्वतन्त्र पार्टी का संयुक्त मोर्चा, तमिलनाडु में द्रमुक एवं मनीला काँग्रेस, महाराष्ट्र में शिवसेना एव भारतीय

जनता पार्टी, असम में असम गण परिषद् तथा वामपंथी दलों का गठबन्धन, हरियाणा में हरियाणा विकास पार्टी तथा भारतीय जनता पार्टी के गठबन्धन को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत में आज तक स्वस्थ और शक्तिशाली विपक्ष का विकास नहीं हो सका है, जिसके लिए निम्नलिखित कारणों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है-

1. अंग्रेजों से कॉंग्रेस को सत्ता : अंग्रेजों से सत्ता भारतीय कॉंग्रेस को प्राप्त हुई थी और वह राजनीतिक दल के रुप में बनी रही। यद्यपि गाँधी जी ने कॉंग्रेस के राजनीतिक स्वरुप को समाप्त करना चाहा था, परन्तु स्वार्थ की राजनीति तथा सत्ता की लोलुपता में लीन राजनीतिक नेताओं ने गाँधी जी का मत नहीं माना। भारत की जनता कॉंग्रेस, जो स्वतन्त्रता से पहले राष्ट्रीय आन्दोलन था और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जो राजनीतिक दल बना, उसके अन्तर को नहीं समझ सकी। चुनावों में कॉंग्रेस को इसका लाभ मिलता रहा है।

2. कॉंग्रेस का शक्तिशाली संगठन : कॉंग्रेस ने शक्तिशाली राजनीतिक संगठन के रुप में, सत्ता के चमत्कार से, विरोधी पक्ष को चकाचौंध कर दिया और सत्ता के आकर्षण में विरोधी पक्ष बहुत से सदस्य कॉंग्रेस में आ गए। इस प्रकार स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद कॉंग्रेस की छत्रछाया में प्रत्येक विचारधारा के लोग एकत्रित हुए। कॉंग्रेस के भीतर समाजवादी, साम्यवादी, राष्ट्रवादी थे और कॉंग्रेस की नीतियाँ सबके मन्थन से तय होती थीं। अत: जो कार्य विपक्ष को करना था, वह कॉंग्रेस के भीतर विद्यमान विरोध पूरा करता रहा है।

3. कॉंग्रेस के बाहर के दल विभाजित : कॉंग्रेस के बाहर जो राजनीतिक दल थे, वे छोटे-छोटे ग्रुपों में विभाजित रहे हैं, जो स्वयं ही एक-दूसरे का विरोध करते हैं और एक छत्रछाया में आने को कभी तैयार नहीं होते हैं। विपक्ष की स्थिति का लाभ सत्तारुढ दल को मिलता रहा है।

4. विपक्ष का धीमा विकास : भारत में विपक्ष का विकास धीमा एवं प्रभावहीन रहने का एक कारण विभिन्न दलों की समान प्रवृत्ति है। अधिकांशत: विभिन्न दलों का नेतृत्व वही लोग कर रहे हैं जो कभी कॉंग्रेस में थे और शीर्षस्थ नेताओं में मतभेद के कारण वे विपक्ष में चले गए हैं। ऐसा विपक्ष लोकतन्त्र की जिम्मेदारी को निभाने की बजाय अपना समय सीटों की हेराफेरी में व्यतीत कर देता है या जाति और उपजाति की 'अपील' की तलाश में समस्त विपक्ष को ब्लैकमेल करता रहता है।

5. पैसे और प्रभाव की राजनीति : पैसे और प्रभाव की राजनीति सत्तारुढ दल को प्रभावशाली और विपक्ष को कमजोर बना रही है। चुनावों के समय जब मन्त्रियों के दौरे साथ वरिष्ठ शासन अधिकारी घूमते हैं तो इसका प्रभाव मतदाताओं पर पड़ता है, विशेषकर तब जबकि राज्य में वही दल सत्तारुढ है जो केन्द्र में है। सत्तारुढ दल के सदस्य नियमों के बाहर अपना एवं अपने समर्थकों का कार्य करने में सफल हो जाते हैं जबकि विपक्ष के सही कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है।

6. धन का अभाव : स्वस्थ विपक्ष के मार्ग में एक रुकावट 'धन की शक्ति' है जो सत्तारुढ दल के पास अपेक्षाकृत अधिक होती है, से विपक्ष की तुलना में खुले हाथ से चन्दा प्रदान कर बदले में अनियमित परमिट, लाइसेंस और ठेके आदि लिए जाते रहे हैं।

7. चुनाव प्रणाली : विपक्ष को प्रभावहीन बनाने में देश की वर्तमान चुनाव प्रणाली सहायक रही है, जिसके द्वारा कॉंग्रेस अल्पमतों पर सत्तारुढ होती रही।

8. विचारधारा और कार्यक्रम का अभाव : विपक्ष अपनी दुर्बल प्रभावहीन स्थिति के लिए स्वयं उत्तरदायी है। विपक्ष के पास रचनात्मक विचाधारा एवं कार्यक्रम का सर्वथा अभाव रहा है। विपक्षी दल मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए सस्ती लोकप्रियता के साधनों को अपनाते हैं साथ ही संसद के भीतर एवं बाहर तमाशा एवं शोरगुल करने में अधिक दिलचस्पी लेते हैं।

विपक्ष में कॉंग्रेस मार्च 1977 से जनवरी 1980 : आपातकाल के बाद छठी लोकसभा का चुनाव हुआ। पांचवी लोकसभा यद्यपि पाँच वर्ष के लिए ही चुनी गयी थी इसलिए इसकी अवधि मार्च 1976 में ही समाप्त होने को थी लेकिन आपातकाल में संविधान में संशोधन कर (लोकसभा की अवधि 6 वर्ष) लोकसभा की अवधि बढ़ा दी गई। इसलिए छठी लोकसभा का चुनाव आपातकाल के समाप्ति के बाद 16 और 19 मार्च 1977 को हुआ तथा मतगणना 20 मार्च को हुई। लोकसभा और विधानसभाओं का परिसीमन भी किया गया। जिसके कारण लोकसभा के राजस्थान से सदस्यों की संख्या 23 से बढ़कर 25 हो गई लेकिन एस. सी. और एस. टी. की सीटें क्रमश: 4 और 3 यथावत रहीं किन्तु मतदाताओं की संख्या बढ़ गई। कुल मतदाता 1 करोड़ 52 लाख 40 हजार 432 थे। जिसमें 86 लाख 73 हजार 720 ने अर्थात् 56.91 प्रतिशत मतदान हुआ। इनमें 2 लाख 59 हजार 294 अर्थात् 3.10 प्रतिशत मत अवैध करार दिए गये। छठे लोकसभा चुनाव में आपातकाल की समाप्ति के बाद जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर जनता पार्टी ने सत्तारुढ कॉंग्रेस दल को जबरदस्त चुनौती दी और आपातकाल में श्रीमती इंदिरा गाँधी की कॉंग्रेस द्वारा जनता पर कहर बरसाए गए तथा मौलिक अधिकारों को स्थगित किया गया। इसके विरोध में जनता ने कॉंग्रेस का धराशायी किया जिसके कारण राजस्थान में कॉंग्रेस मात्र 1 सीट नागौर की नाथूराम मिर्धा ही जीत पाए। जनता पार्टी के 24 सांसद हलधर चुनाव चिन्ह पर चुने गए।

नवम्बर 1989 से जून 1991 : 1989 के लोकसभा चुनावों पर सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक कारणों ने विशेष प्रभाव डाला गया। इस चुनाव में राजीव गाँधी की प्रशासनिक क्षमता कसौटी पर थी। इस चुनाव में जहाँ एक ओर भारतीय जनता पार्टी हिन्दुत्व के

मुद्दे पर आक्रामक राजनीति कर रही थी वहीं कॉंग्रेस ने भी इस मुद्दे की तीव्रता कम करने के लिए रामजन्म भूमि पर स्थित राम मंदिर का ताला खोल दिया। वास्तव में चुनाव से पूर्व ही गैर कॉंग्रेसवाद की अवधारणा आकार लेने लगी थी जिसका मुख्य उद्देश्य किसी भी प्रकार से कॉंग्रेस को सत्ता से हटाना तथा केन्द्र में विपक्ष की सरकार बनाना था। यद्यपि 1977 में गैर कॉंग्रेसवाद के आधार पर विपक्षी दल संगठित हुए थे लेकिन 1989 के चुनाव पूर्व बने गठबंधनों में क्षेत्रीय दलों की मुख्य भूमिका थी।

नवीं लोकसभा चुनाव परिणामों के रुप में कॉंग्रेस व उसके सहयोगी को 204 व राष्ट्रीय मोर्चा एवं सहयोगी को 143 स्थान प्राप्त हुए। यद्यपि इस चुनाव में कॉंग्रेस को सबसे अधिक सीटें प्राप्त हुई व दूसरे स्थान पर जनता दल था। कॉंग्रेस ने सरकार बनाने से इन्कार कर दिया। जनता दल के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय मोर्चे ने सरकार बनाने का दावा राष्ट्रपति के समक्ष किया। राष्ट्रपति के आमंत्रण पर राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ने वाममोर्चा तथा भाजपा के समर्थन से विश्वास मत प्राप्त किया लेकिन यह दल सरकार में सम्मिलित नहीं थे। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के पतन का सबसे प्रमुख कारण जनता दल की आंतरिक कलह थी। प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह, चन्द्रशेखर व देवीलाल जैसे असंतुष्ट नेताओं को मनाने में असफल रहे थे। सरकार के अस्थिर होने में कॉंग्रेस की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। कॉंग्रेस ने चन्द्रशेखर गुट को अपने मूल दल से अलग होने की दशा में सरकार बनाने में समर्थन देने का आश्वासन दिया था। इससे राष्ट्रीय मोर्चा सरकार में मतभेदों को बढ़ावा मिला।

नवम्बर 1990 में केन्द्र में विश्वनाथ प्रतापसिंह की सरकार द्वारा त्यागपत्र दिए जाने के बाद जनता दल का केन्द्रीय स्तर पर जनता दल और जनता (समाजवादी) दल के रुप में औपचारिक रुप से विभाजन हो गया। कॉंग्रेस ने जनता दल से अलग हुए इस गुट को समर्थन देने का निर्णय लिया लेकिन कॉंग्रेस ने यह समर्थन सरकार से बाहर रहकर देने का स्वीकार किया और चंद्रशेखर प्रधानमंत्री बने। लोकसभा अध्यक्ष रविराय ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में 5 मंत्रियों सहित 8 लोकसभा सदस्यों को सदन की सदस्यता से अयोग्य घोषित कर दिया। यह सदस्य दलबदल कानून के अन्तर्गत अयोग्य ठहराए गए थे। सत्ता पक्ष की सदस्यता लोकसभा में घटकर 54 रह गयी थी। सरकार गठन के पश्चात् जनता दल (स) में आपसी कलह भी उभरकर सामने आने लगी। चन्द्रशेखर तथा देवीलाल के मध्य विवाद सतह पर आ गया था। देवीलाल, प्रधानमंत्री पर 5 दलबदल के आरोपी मंत्रियों के त्यागपत्र स्वीकार करने का दबाव डाल रहे थे। वह सरकार की कृषि नीति से भी असन्तुष्ट थे। कॉंग्रेस ने भी इन मंत्रियों को सरकार से हटाने की मांग की थी।

सरकार व कॉंग्रेस अध्यक्ष के मध्य भी विवाद सामने आया। यह विवाद खाड़ी नीति पर सरकार की आलोचना के कारण था। कॉंग्रेस ने अमेरिकी विमानों को भारत में ईंधन भरने देने की अनुमति देने का भी विरोध किया। 16 फरवरी 1991 को गुलाम नबी आजाद ने सरकार को ईंधन आपूर्ति बंद न करने की स्थिति में गंभीर परिणाम की चेतावनी दी। सरकार ने ईंधन आपूर्ति बंद की। इसके पश्चात् कॉंग्रेस ने बजट से उत्पन्न होने वाली मंहगाई पर सरकार को चेतावनी दी। मार्च में कॉंग्रेस अध्यक्ष राजीव गाँधी की जासूसी का प्रकरण उस समय सामने आया जब दिल्ली पुलिस ने हरियाणा पुलिस के दो सी. आई. डी. अधिकारियों को पकड़ लिया। सरकार व कॉंग्रेस के मध्य विवाद बढ़ने पर प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति से लोकसभा भंग करने की सिफारिश कर दी।

जनता दल की गठबंधन सरकार के पतन का प्रमुख कारण इस सरकार का प्रमुख सहयोगी दल कॉंग्रेस सरकार से बाहर रहकर समर्थन दे रहा था। सरकार की विवशताओं में कॉंग्रेस की साझेदारी नहीं थी। कॉंग्रेस ने स्वयं को अनेक अवसरों पर चुनाव के लिए तैयार बताया। इस तरह के प्रकरणों से गठबंधन की राजनीति में मतभेद बढ़े जिससे सरकार का पतन होना सुनिश्चित हो गया और राजनीतिक अस्थिरता बढ़ गयी थी।

कॉंग्रेस जनता दल (सोशलिस्ट) के साथ गठबंधन तात्कालिक राजनीतिक विवशताओं की परिणति था। कॉंग्रेस चुनावों का सामना करने से पूर्व राजनीतिक परिदृश्य को अपने अनुकूल बना लेना चाहती थी। इसके साथ ही वह मतदाताओं को संकेत देना चाहती थी कि राजनीतिक स्थिरता की स्थापना सिर्फ कॉंग्रेस ही कर सकती है। विपक्षी दलों की सरकारों में सरकार के संचालन हेतु आवश्यक कौशल का अभाव है। गठबंधन की सरकार के प्रति कॉंग्रेस के पक्षपातपूर्ण रुख से राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ावा मिला।

1996 से 1998 तक

1996 से 1998 के 18 महीने में केन्द्र में तीन सरकारें बनीं। चुनाव परिणाम में सबसे बड़ी पार्टी के रुप में भाजपा उभरकर आई। राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा ने सबसे बड़ी पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई और लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने का समय दिया। यह सरकार 13 दिवस ही चल पाई। वाजपेयी जी ने लोकसभा में बहस की और विश्वास मत लेने से पहले इस्तीफा दे दिया। तब नये चुनाव न हों इसके लिए राजनीतिक दलों ने अपने-अपने समीकरण स्थापित कर नई सरकार जनता दल के एच. डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में गैर भाजपाई सरकार बनाई। कॉंग्रेस (ई) ने समर्थन दिया। 21 अप्रैल 1997 को एच. डी. देवगौड़ा के पतन के बाद इन्द्रकुमार गुजराल ने 34 सदस्यीय मंत्रिमण्डल के साथ 12वें प्रधानमंत्री के रुप में शपथ ली। 28 अगस्त को न्यायमूर्ति मिलापचन्द जैन ने राजीव गाँधी हत्याकाण्ड पर सरकार को अन्तरिम रिपोर्ट दी। कॉंग्रेस की जिद थी कि डी. एम. के. के तीन मंत्रियों को हटाओ अन्यथा समर्थन वापस ले लिया जायेगा।

समर्थन वापिस लेने की धमकी से लेकर समर्थन वापसी के बाद

काँग्रेस और संयुक्त मोर्चे के भीतर काफी उथल-पुथल हुई। उसी डी. एम. के. के साथ वर्तमान मनमोहन सिंह की सरकार आराम से चलती रही है। डी. एम. के. ने तब बताया था कि काँग्रेस ने ही लिट्टे को बढ़ावा दिया और उनके कैम्प चलवाए। बाद में शांति सेना राजीव गाँधी ने श्रीलंका में लिट्टे के आंदोलन के विरुद्ध भेजी और यही उनकी हत्या का कारण बनीं। काँग्रेस के नेतृत्व वाले मोर्चे ने 21 नवम्बर को द्रमुक को सरकार से बाहर निकालने की मांग को ठुकरा दिया। 23 तारीख को काँग्रेस कार्यसमिति ने अपने निर्णय पर मोहर लगाई। 24 तारीख को अनिश्चितकाल के लिए लोकसभा स्थगित की गई। 28 तारीख को काँग्रेस ने समर्थन वापिस लिया और राष्ट्रपति जी को पत्र सौंपते हुए पत्र में काँग्रेस अध्यक्ष सीताराम केसरी ने लिखा था "मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि संसद को भंग न करके केन्द्र में वैकल्पिक सरकार बनाने की संभावना की खोज करें। इस सिलसिले में मैं आपसे अनुरोध करना चाहूँगा कि काँग्रेस पार्टी सरकार बनाने का दावा पेश करती है और हमें विश्वास है कि अगर हमें मौका दिया गया तो हम सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर देंगे।" गुजराल सरकार ने इस्तीफा देकर राष्ट्रपति को कहा कि मार्चा काँग्रेस या फिर भाजपा में से किसी को अपना समर्थन नहीं देगा। एक-एक कर सभी 14 घटकों ने इस आशय के पत्र राष्ट्रपति को सौंपे थे। समाजवादी पार्टी और तमिल मनीला काँग्रेस (मूपनार) ने यह पत्र थोड़ी देर से दिया। श्रीमती सोनिया गाँधी ने सरकार बनाने का दावा अर्जुनसिंह के कहने पर पेश किया किन्तु समाजवादी दल के मुलायमसिंह ने उन्हें समर्थन नहीं देकर प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया। इस स्थिति में राष्ट्रपति जी को लोकसभा भंग कर फरवरी 98 में चुनाव कराने पड़े।

1999 से 2004 तक

1998 की लोकसभा मात्र 13 माह ही अस्तित्व में रही थी लगातार तीसरी गठबंधन की सरकार के पतन में काँग्रेस की भूमिका प्रत्यक्ष रुप से उभरकर सामने आयी। भाजपा सरकार के पतन के पश्चात् जिस तरह से काँग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी ने जोड़-तोड़ कर सरकार बनाने का प्रयास किया। यह प्रयास उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करता है। चुनावों से पूर्व कारगिल पहाड़ियों पर पाकिस्तान से अघोषित युद्ध हुआ था। इस संघर्ष में 500 के लगभग भारतीय सैनिकों की मृत्यु हुई थी। इस संघर्ष की अवधि में देश में राष्ट्रीय एकता की भावना चरम पर थी। इस मुद्दे का भी चुनावों पर प्रभाव पड़ना तय था। 1999 के चुनाव काँग्रेस के लिए विशेष महत्व के थे। सोनिया गाँधी 1999 के चुनावों तक काँग्रेस अध्यक्ष बन चुकी थी। चुनाव में काँग्रेस का मुख्य मुद्दा राजनीतिक स्थिरता का था।

काँग्रेस ने अपने घोषणा पत्र में स्थिरता को देश की सबसे बड़ी आवश्यकता बताया था। राजनीतिक स्थिरता के अभाव के कारण ही देश की अखण्डता का खतरा उत्पन्न हुआ जिसकी परिणति कारगिल युद्ध के रुप में सामने आयी। भाजपा ने भी चुनाव घोषणा पत्र में स्थिरता को मुख्य मुद्दा बनाया था। उसने संवैधानिक समीक्षा का वायदा करते हुए लोकसभा की अवधि 5 वर्ष निश्चित करने का वायदा किया।

1999 के चुनावों मं भाजपा 182 सीटें प्राप्त कर सबसे बड़े दल के रुप में उभरी। प्राप्त मतों का प्रतिशत 23.70 था। काँग्रेस की सीटों की संख्या में और कमी आ गयी थी। काँग्रेस ने 28.42 प्रतिशत मत के साथ 112 स्थान प्राप्त किए थे। वह लोकसभा में दूसरा सबसे बड़ा दल था। राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। श्री अटल बिहारी वाजपेयी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के सर्वसम्मति से नेता चुने गए। उन्होंने 13 अक्टूबर को 70 सदस्यों वाले मंत्रिमण्डल के साथ प्रधानमंत्री पद की शपथ ली।

मार्च 2001 में तहलका डाट काम ने रक्षा सौदों में जब दलाली दिये जाने के वीडियो टेप प्रस्तुत किये तब उसमें रक्षामंत्री जार्ज फर्नाडीज के नाम का उल्लेख था। ममता बनर्जी ने रक्षा मंत्री से इस्तीफे की मांग की। प्रधानमंत्री ने जब इस मांग को नामंजूर कर दिया तब ममता बनर्जी ने केन्द्र की सरकार से अपने समर्थन वापसी की घोषणा कर दी जिससे राजनीतिक अस्थिरता में बढ़ोत्तरी हो गयी। तहलका डाट काम द्वारा रक्षा सौदों में दलाली के सन्दर्भ में जारी वीडियो टेपों में तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष बंगारु लक्ष्मण को एक लाख रुपये लेते हुए दिखाया गया। इस प्रकरण पर राजनीतिक अस्थिरता बढ़ गयी थी। प्रमुख विपक्षी दलों द्वारा नैतिक आधार पर सरकार से इस्तीफा मांगा गया। सरकार के रक्षा मंत्री ने इस मुद्दे पर इस्तीफा भी दे दिया।

विपक्ष में काँग्रेस ने समय-समय पर कुछ ऐसे कार्य किए जिससे देश सुरक्षा व्यवस्था को आघात पहुंचा। विपक्ष द्वारा सरकार को अस्थिर करने तथा कामचलाऊ सरकार कोई निर्णय नहीं लेगी, का शोर मचाने से शत्रु को प्रोत्साहन मिला। राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मुद्दों जैसे पोखरण - दो (परमाणु बम विस्फोट) तथा पृथ्वी, अग्नि मिसाइल एवं अनुशासनहीन एडमिरल विष्णु भागवत की बर्खास्तगी का विरोध कर विपक्ष ने दुनिया को बता दिया कि सुरक्षा के विषय में देश में आन्तरिक मतभेद हैं। जी. टी. वी. के सर्वेक्षण के अनुसार देश की 57 प्रतिशत जनता मानती है कि भाजपा सरकार के हाथों में देश की सुरक्षा व्यवस्था बेहतर हुई।

स्वस्थ विपक्ष के विकास के लिए सुझाव

1. विपक्ष को सुविधाएँ - विपक्ष को देश की महत्वपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक मामलों की जानकारी की सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जिससे उन मामलों पर वह जनता का उचित मार्ग निर्देशन का स्वस्थ एवं प्रबुद्ध जनमत तैयार कर सके। अमेरिका में 'वाटरगेट काण्ड' का भण्डाफोड प्रेस की स्वतन्त्रता के कारण ही सम्भव हो सका था।

2. निर्वाचन व्यय की व्यवस्था - निर्वाचनों में धन का अधिक व्यय

जनता को भ्रम में डालता है। चुनावों में लाखों रुपये खर्च करना, फिर कई गुना अधिक कमाना आज की राजनीति का अकाट्य सिद्धान्त बन चुका है। निर्वाचन सम्बन्धी व्यय सरकार द्वारा उठाकर या राजनीतिक दलों को उनकी प्रतिनिधित्व शक्ति के आधार पर निर्वाचन व्यय के लिए आर्थिक सहायता देकर किया जा सकता है।

3. द्विदलीय प्रणाली के लिए प्रयास – द्विदलीय प्रणाली के विकास के लिए प्रयास किया जाए। समान विचारधारा वाले दलों का ध्रुवीकरण होना चाहिए। राष्ट्रीय दल होने के लिए मापदण्ड में परिवर्तन करके दलों की संख्या कम की जा सकती है।

4. विपक्ष के द्वारा निश्चित कार्यक्रम एवं विचारधारा अपनाना – विपक्षी दलों को एक निश्चित कार्यक्रम और विचारधारा के आधार पर मिलकर एक हो जाना चाहिए।

5. दल-बदल को हतोत्साहित करना – दल-बदल का सहारा लेकर विपक्ष की शक्ति को कमजोर नहीं करना चाहिए।

सारत: विपक्ष को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा। 'विरोध के लिए' राजनीति को छोड़कर 'उत्तरदायी सहयोग की नीति' को ग्रहण करना होगा। सदन की कार्यवाही को रोककर प्रदर्शित किया गया विरोध जहाँ घातक और नकारात्मक है वहीं घोर प्रतिक्रियावादी एवं विध्वंसक भी है जो स्वस्थ लोकतन्त्र का आधार नहीं माना जा सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जॉन स्टअर्ट मिल:आन लिबर्टी पृ. 139*
2. *राबर्ट ए. डहल (स):पोलिटिकल अपोजीशन इन वेस्टर्न डेमोक्रेसीज पृ. 18*
3. *अटल बिहारी वाजपेयी :लोकसभा वाद विवाद 1 दिसम्बर 1971*
4. *कुमार, कुलदीप:भाजपा का कारगिल और भारतीय दल, अमर उजाला 13 अगस्त 1999*
5. *कॉंग्रेस का चुनाव घोषणा पत्र:1999 के लोकसभा चुनाव*
6. *राजग का चुनाव घोषणा पत्र:1999 के लोकसभा चुनाव*

विवेकानन्द के वेदान्त चिन्तन में ब्रह्म का स्वरुप

डॉ. किरन
प्रवक्ता, जी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, इशारा, सकीट, एटा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

अद्वैत वैदान्त के अनुयायी होने के कारण स्वामी विवेकानन्द ब्रह्म की निरपेक्ष, निर्विशेष एवं निर्गुण सत्ता को स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार आचार्य शंकर अपनी प्रबल युक्तियों से ब्रह्म के सविशेषत्व का निरसन करते है, उसी प्रकार स्वामीजी भी अनेक तर्क-प्रहारों से सगुण ब्रह्म की धारणा का उच्छेदन कर निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं।''सगुण ब्रह्म के सब विशेषण निर्गुण-ब्रह्म के सम्बन्ध में अनावश्यक और अयौक्तिक हैं। इसलिए वे त्याज्य हैं। निर्गुण और सर्वव्यापी पुरुष ज्ञानवान् नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विचार ससीम का धर्म है। वह सृष्टिकर्ता भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि जो बन्धनहीन है, मुक्त है, उसे कभी सृष्टि करने की प्रवृत्ति नहीं हो सकती।''[1]आचार्य शंकर जगत् की सत्ता के निराकरण के लिए एक तर्क यह देते हैं कि ''यदि जगत् की सत्ता स्वीकार कर ली जाये तो-जिस प्रकार दो वस्तुएँ परस्पर एक दूसरे के सान्तत्व का अवबोध कराती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म एवं जगत् दोनों के सत्य होने पर ब्रह्म भी सान्त हो जायेगा।[2] स्वामी जी भी इस विषय में यह युक्ति प्रस्तुत करते हैं कि ''एक ही समय में एक से अधिक वस्तुओ का अस्तित्व नहीं रह सकता।[3] यदि ब्रह्म सगुण है, यदि ब्रह्म अनेक सद्गुणों से उपेत है और यदि ब्रह्म संसार के समस्त सद्गुणों की निधि है तो सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार क्या बिना दोषों के गुणों का अस्तित्व अम्भव है ? क्या बिना अन्धकार के प्रकाश का अस्तित्व सम्भव है ?[4]

यदि ईश्वर ही सृष्टि का कर्ता, धर्ता और हर्ता है तो द्वैतवाद के अनुयायी जगत् के वैषम्य के विषय में क्या समाधान देगें ?[5] एक मनुष्य सुखी है तो दूसरा दुःखी, एक धनी है तो दूसरा निर्धन-एक का जीवन दूसरे की मृत्यु पर निर्भर करता है। यह प्रतिद्वंद्विता, निष्ठुरता, घोर अत्याचार और दिन-रात की आह-जिसे सुनकर कलेजा फटा जाता है- इसका सगुण ईश्वरवादी क्या समाधान प्रस्तुत करेंगे ?[6] यदि यही ईश्वर की सृष्टि है तो वह ईश्वर निष्ठुर से भी बढकर है। जब हम देश-काल निमित्त रुपी शीशे के माध्यम से ब्रह्म की ओर देखने का प्रयत्न करते हैं तभी वह जगत् से सम्बद्ध प्रतीत होता है।[7] तभी वह सगुण प्रतीत होता है जबकि वास्तविकता यह है कि जहां पर ब्रह्म है वहां देश-काल आदि निमित ही नहीं है।[8] देश-कालादि से युक्त रहने पर ब्रह्म कदापि असीम और अनन्त नही रह सकता। वह सापेक्ष तथा सविशेष हो जायेगा, क्योंकि सत्य वही है जो देश-कालादि से परे हो।[9] इसके अतिरिक्त, जिन देश-काल एंव निमित से हम ब्रह्म को सविशेष और सम्बद्ध करना चाहते हैं, उन देश-कालादि का भी अस्तित्व नहीं है। तीनों की ही धारणा सापेक्ष है। काल मन के अधीन है। इसी प्रकार देश की भी निरपेक्ष एवं शुद्ध रुप से कल्पना नहीं की जा सकती, कार्य-कारण-भाव भी देश एवं काल के अधीन होने से सापेक्ष है। अत: सोपक्ष होने के कारण देश-काल सत् नहीं है'[10] एवं ब्रह्म को असत् से सीमित और सान्त नहीं बनाया जा सकता। काल मन के अधीन[11] और ईश्वर मन से युक्त नहीं है। अत: वह काल से भी परे है। देश से वही वस्तु सम्बद्ध हो सकती है जो साकार हो। ईश्वर निराकार है अत:

 ISSN 2277-5587

देश से भी सम्बद्ध नहीं हो सकता।[12] कार्य कारण भाव काल और देश के आश्रित है। जब ईश्वर देश और काल से अस्पृष्ट है तो वह कार्य-कारण-भाव से भी असम्बद्ध है।

आचार्य शंकर ने अगम्य होने के कारण ब्रह्म को इन्द्रियादि से अज्ञेय कहा है। ब्रह्म को विषयीकृत करने का इन्द्रियों के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। ब्रह्म-स्वरुप होने एवं विषय-विषयी के भेद रहित होने के कारण आत्मा स्वयं को उसी प्रकार नहीं जान सकती जिस प्रकार अग्नि स्वयं को जला नहीं सकती।[13] स्वामी जी भी सर्वत्र ब्रह्म की अज्ञेयता का प्रतिपादन करते हैं। ज्ञान का तात्पर्य किसी वस्तु को सीमित कर देने से है। जब कभी हम किसी वस्तु को जानना चाहते है तब वह मन द्वारा सीमाबद्ध हो जाती है।[14] ज्ञान का तात्पर्य है वस्तु को बाहर लाकर विषय की भाँति प्रत्यक्ष करना। परन्तु ईश्वर का बहि:प्रेक्षण असंभव है। आत्म-स्वरुप होने के कारण हम किसी प्रकार उस (आत्मा) का प्रक्षेप नहीं कर सकते।[15] जो सबका ज्ञाता है, जो सब ज्ञानों का आधार है उसे किस प्रकार जाना जा सकता है।[16] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्वामी जी स्पेन्सर के समान अज्ञेयवादी हैं। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि 'आत्मा न ज्ञेय है और न अज्ञेय- क्योंकि अज्ञेय मानने से भी पहले उसे विषय बनना पड़ेगा, वह ज्ञेय और अज्ञेय दोनों की अपेक्षा अनन्त गुणा ऊँची है।[17]

जब ब्रह्म अज्ञेय, अनिर्वचनीय व अवर्णनीय है तो यह निश्चित है कि उसके विषय में किसी भी प्रकार के विशेषणों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। सापेक्ष होने के कारण हम उसके विषय में 'अस्ति' शब्द का भी प्रयोग नहीं कर सकते।[18] फिर भी ब्रह्म का सत्, चित् और आनन्द इन शब्दो से अभिहित किया जाता है।[19] यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि स्वामी जी सत्, चित् आनन्द आदि को वैष्णव आचार्यो के समान ईश्वर के गुण नहीं मानते है। ये तीनों आत्मा के गुण नहीं, उसके स्वरुप है।[20] यदि इन्हे (सत्, चिदादि को) गुण रुप में स्वीकार जी इनके एकत्व का प्रतिपादन करते है। अनन्त सत्ता, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द ये तीनों एक है, भिन्न-भिन्न नहीं।[21] ज्ञान और आनन्द के बिना सत्ता नहीं रह सकती। अत: ये तीनों अभिन्न है।

''जब तक हमारा शरीर है, जब तक हम इस शरीर को आत्मा समझे बैठे है और जब तक हम स्थूल जगत् की ओर दृष्टि किये हुए हैं, तब तक हमें सगुण ईश्वर को स्वीकार करना ही होगा। ऐसी अवस्था में ईश्वर को स्वीकार न करना निरा पागलपन है''[22] इन शब्दों के साथ स्वामी विवेकानन्द भी आचार्य शंकर के समान सगुण ईश्वर की मान्यता का समर्थन करते हैं। संसार के अधिकांश व्यक्ति द्वैतवादी है। ऐसे व्यक्ति, जो साधारण बुद्धि के है, निर्गुण ब्रह्म को धारणा को ग्रहण करने में असमर्थ हैं।[23] अत: एक व्यक्तिविशेष के रुप में ईश्वर की उपासना किये बिना मनुष्यों का काम नहीं चल सकता है।[24]

वेदान्त-दर्शन का एक ही उद्देश्य है और वह है एकत्व की खोज।[25] एकत्व के अन्वेषण का तात्पर्य है कि हमें जो विषय-विषयी और जड़चेतनादि की विभिन्नता और विविधता प्रतीत हो रही है, उस विविधता में एकत्व किस प्रकार स्थापित किया जाये। इसके लिए शनै: शनै: इस प्रकार लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा जिस प्रकार किसी सूक्ष्म तारे को देखने के लिए पहले अनेक समीपस्थ तारे का निर्देश करना पड़ता है। अत: अद्वैत वेदान्त में भी इसमें सत्कार्यवाद को स्वीकार कर कार्य-कारण में अभेद-प्रतिपादित किया जाता है। एकत्व के अवबोधन का क्रम पहले 'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म' की धारणा को पुष्ट कर, पश्चात् 'तत्वमसि' को स्रदयंगम करना है। स्वामी जी ने भी बार-बार युक्तिपूर्वक कार्य-कारण का अभेद प्रतिपादित किया हैं।[26] इस जगत् का अन्तिम परिणाम चैतन्य है।''[27] उस मायायुक्त ईश्वर से ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते है।[28] वही जगत् का उपादान एवं निमित कारण है।[29] संसार में देह, मन, इन्द्रिय आदि जितनी भी वस्तुएँ है, उनमें भेद प्रकार-गत नहीं है, अपितु परिणाम-गत है।[30] एक ही वस्तु नामरुप की उपधि के कारण अनेक रुप से प्रतीत हो रही है।[31] नामरुप के कारण ही समुद्र की तरंग समुद्र से पृथक, प्रतीत हो रही है। वस्तुत: उसका उससे भेद नहीं है। इसी प्रकार जगत् भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

सत्कार्यवाद अथवा ब्रह्मपरिणामवाद को स्वीकार कर लेने पर प्रश्न उठता है कि निरपेक्ष तत्व परिवर्तनशील और नाशवान् कैसे हो गया ? दर्शन की इस मूल समस्या के समाधानार्थ स्वामी जी ने भी अद्वैत-वेदान्त के समान विवर्त्तवाद को स्वीकार किया है। विवर्त्तवाद का अर्थ है कि समस्त नाना-रुपात्मक पदार्थ ब्रह्म के प्रतिभासिक रुप हैं। ब्रह्म विश्व का वास्तविक नहीं, आभासी उपादान कारण है। इस तथ्य को सर्प-रज्जु के उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट किया जाता है। रज्जु का सर्प रुप में आभास होता है, वास्तविक परिणाम नहीं। इसी प्रकार सत् में प्रतीत होने वाले समस्त परिवर्तन भी आभास मात्र हैं।[32]

माया न तो विज्ञानवाद है, न ही वस्तुवाद। वह कोई मतवाद भी नहीं है। वह तो समस्त जगत् की, जिनको हम देख रहे हैं, घटनाओं का सहज वर्णन मात्र है, [33]जो सर्वशक्तिमान् मनुष्य की शक्तियों को कुण्ठित कर देती है, जो उसे स्परुप से च्युत कराकर बाह्मय विषयों में-मृगमरीचिकाओं में-भटकने को विवश कर देती है, जो एक युवक के, एक वैज्ञानिक के समस्त उल्लास, उमंग, उत्साह और आशाओं पर तुषारपात कर देती है वही शक्ति माया है।[34] जिस शक्ति से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का सृजन होकर पार्थक्य बोध हो रहा है, जिससे विभिन्नताएँ एवं विविधताएँ प्रतीत हो रही हैं, वही माया है।[35] यह माया वस्तुत: नाम-रुप के सिवाय और कुछ नहीं है।[36] यदि नाम-रुप का त्याग कर दिया जाये तो परमतत्व ही अवशिष्ट रह जायेगा। जो भी पार्थक्य और परिवर्तन प्रतीत होता है, वह उस नामरुप के कारण ही होता है।[37] इसी को दूसरे शब्दों में देश, काल व निमित्त कहते हैं।[38] अद्वैत वेदान्त के समान स्वामी जी भी माया को सदसदनिर्वचनीया कहते हैं। ''माया के विषय में न तो यह कहा जा सकता है कि उसका अस्तित्व नहीं है क्योंकि उसी ने समस्त भेद

उत्पन्न किये हैं, न ही इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि उसका अस्तित्व है क्योंकि वह सदैव दूसरे पर ही आश्रित रहती है।''[39] यद्यपि परमार्थत: उसका अस्तित्व नहीं है, फिर भी व्यवहार में उसे अनिर्वचनीय कह सकते हैं। इसको न एक कर निर्दिष्ट कर सकते है और न अनेक कह कर।[40]

स्वामी जी ने अद्वैत वेदान्त के समान ही विषय और विषयी अथवा माया और ब्रह्म ग्रन्थि को ही जीव को ही जीव माना है।[41] वस्तुत: जब तक नाम-रुप हैं, जब तक स्वरुप-विस्मरण है, तभी तक जीव-जगत की कल्पना है। ''जब स्वरुपावबोध होकर नामरुप का लोप हो जायगा तब जीवादि की स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव नहीं होगा।[42] वस्तुत: यह जो जीव-बहुत्व प्रतीत हो रहा है वह मुक्ति-सिद्ध नहीं है। इस विषय को स्वामी जी ने तर्क-प्रणाली द्वारा प्रतिपादित किया है।[43] आत्मा का स्वरुप अन्य दर्शनों ने चाहे कुछ भी माना हो, परन्तु यह सभी स्वीकार करते हैं कि वह देश-काल से परे है वह निराकार होगी, यह निश्चित है। इसी प्रकार देश-काल जिसका स्पर्श नहीं कर सकते एवं सर्वव्यापक हो सकता है। अनन्त असन्दिग्ध है। केवल एक ही पदार्थ अनन्त एवं सर्वव्यापक है उसका जन्म-मरण भी संभव नहीं, क्योंकि जिस प्रकार 'पृथ्वी क्यों नहीं गिरती' ? यह प्रश्न स्वत: प्रत्याख्यात है उसी प्रकार यह प्रश्न भी स्वयं स्पष्ट है कि जो अनन्त है वह कहाँ जायेगा और कहाँ से आयेगा ? इस प्रकार न तो जीव-बहुत्व सिद्ध किया जा सकता और न ही जीव का आवागमन सिद्ध किया जा सकता है।[44] आत्मा मुक्तस्वरुप है। जो देश-काल से रहित है वह किससे और कैसे बद्ध हो सकता है ? यदि आत्मा मुक्त-स्वाभाव न होती तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकती थी।[45]

स्वामी जी जीव को स्वतन्त्र कर्ता स्वीकार करते है। वे इस प्रकार के किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार करने की तैयार नहीं जिससे जीव में निर्बलता और पराश्रयता को प्रश्रय मिले। ''यदि जीव सुखी और दु:खी है तो केवल स्वयं के कर्मो के कारण ही है। जीव ही कार्य है और जीव ही कारण है। अत: जीव स्वतंत्र, विराट् ही इच्छा-शक्ति किसी घटना के अधीन नहीं है। मनुष्य की प्रबल, विराट् इच्छा शक्ति के सामने सभी शक्तियाँ, यहाँ तक कि प्राकृतिक शक्तियाँ भी, सिर झुका सकती हैं।[46]

एक ही परमतत्व जब सृष्टिकर्ता के रुप में अवभासित होता है। तब ईश्वर कहलाता है और वही परमतत्व जब क्षुद्र शरीर के संचालक के रुप में प्रतीत होता है तो जीव कहलाता है।[47] इस प्रकार तत्वत: जीव और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। यही तत्वमसि का तात्पर्य है। स्वामी जी के अनुसार जीव का समष्टि रुप ही ईश्वर है।[48] इस प्रकार ईश्वर का अस्तित्व जीवों पर निर्भर है।[49] स्वामी जी का यह ईश्वर सम्बन्धी विचार वेदान्त से भिन्न है। आचार्य शंकर ने ईश्वर और जीव में भेद प्रतिपादित किया है। ईश्वर और जीव दोनों ही अविद्या माया युक्त हैं। 'तत्वमसि' के वाच्यार्थ द्वारा यही परिलक्षित होता है। उपाधि से रहित होने पर ही उनमें अभेद हो सकता है। समस्त घटाकाश मिलकर जिस प्रकार महदाकाश नहीं बन सकते उसी प्रकार समस्त जीव मिलकर भी ईश्वर नही हो सकते।

स्वामी विवेकानन्द की मोक्ष की धारणा में अद्वैत वेदान्त से सर्वथा अनुकूलता है। आचार्य शंकर के समान वे भी मोक्ष को न तो संस्कार्य मानते हैं और न ही प्राप्य। कोई भी बाहरी कार्य मोक्ष को प्रभावित नही कर सकता। आत्मा पर किसी भी पदार्थ की प्रतिक्रिया से तात्पर्य यह होगा कि आत्मा मुक्तस्वरुप नहीं है।[50] यदि आत्मा को मोक्ष प्राप्त हो सकता है तो इसका तात्पर्य है कि आत्मा मुक्तस्वरुप है।[51] जो आत्मा कार्य कारण से परे है उस पर किसी कार्य का प्रभाव कैसे पड़ सकता है ? मोक्ष आत्मा का गुण भी नहीं है, जैसे चकमक पत्थर में रहने वाली अग्नि उसका स्वभाव है, गुण नहीं।[52] गुण उपार्जित किया जाता है। और नष्ट हो जाता है पर आत्मा का स्वभाव ऐसा नहीं है आत्मा को बद्ध करने वाला कोई पदार्थ नहीं है।[53] यदि ऐसा सम्भव हो सके तो आत्मा का स्वातंत्र्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार मोक्ष को प्राप्य[54] भी नहीं कह सकते। जिसने कभी स्वराज्य को खोया ही नहीं, उसे पुन: उसको प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है ? यह जो वृद्धावस्था प्रतीत हो रही है- यह तो भ्रान्ति है,[55] सत्य नहीं। परमार्थत: आत्मा शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त-स्वभाव है।[56]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *He cannot be called a knowing being because knowledge only belongs to the human mind....He cannot be called a creating, because none creates except in bondage. Complete Works, Vol. III, p. 128-9.*
2. *शांकरभाष्य-तैत्ति. उपनि.-2।1।*
3. *Complete Works of Swami Vivekananda -Vol. III, p. 421.*
4. *Ibid, Vol. II, p. 241.*
5. *Ibid, Vol III, p. 241-4.*
6. *Ibid, Vol. III, p. 123-4.*
7. *The Absolute has become the universe by coming through time, space and causation.- Ibid, II-p. 120.*
8. *The idea of time cannot be there-the idea of space cannot be there, seeing that there is no external change. What you call motion and causation cannot exist where there is only one-Ibid-Vol. II-p. 130.*
9. *That which is beyond time, space and causation that is perfect-Vol. III, p. 13.*
10. *Complete works of Swami Vivekananda-Val II, p. 135-6.*
11. *Ibid, Vol. II, p. 78.*
12. *It is only form that is conditioned and limited by space that which is formless cannot be confined in space- Ibid, Vol. II, p. 255.*

13. शंकर भाष्य-केन.उप. 1।3।
14. Complete works of Swami Vivekananda –Vol. III, p. 417-8.
15. Complete works of Swami Vivekananda-Vol. II, p. 134.
16. Ibid, Vol. III, p. 410.
17. Ibid, Vol. II, p. 134.
18. Ibid, Vol. VII, p. 72.
19. Ibid,Vol. III, p. 336.
20. Ibid., Vol. III, p. 326.
21. Ibid, Vol. II, p. 143.
22. Complete works of Swami Vivekananda-Vol. III, p. 281.
23. Ibid, Vol. II, p. 241.24. Ibid, Vol. III, p. 387.6
25. Idid, Vol. II, p. 263.
26. Ibid., Vol. II, p. 425-7.
27. Ibid, Vol. II, p. 209.
28. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. II, p. 251.
29. Ibid, Vol. II, p. 248.
30. Ibid, Vol. III, p. 246.
31. Ibid Vol. II, p. 274.
32. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड 9, पृष्ठ 68।
33. Complete Works of Swami Vivekananda-Vol. II, p. 89.
34. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. II, p. 118-21.
35. It is this Maya that is making individuals, making one appear different from another. Ibid, Vol. II, p. 275.
36. ज्ञानयोग, पृ0 86।
37. Thoughts on Vedanta, p. 9.
38. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. II, p. 112.
39. Ibid, Vol. II, p. 275-6. 9. Thoughts on Vedanta, p. 9.
40. Complete Works of Swami Vivekananda-vol. II, p. 112.
41. Matter and mind are one and the same substance, the only difference is in the degree of bibration- Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. VI, p. 32.
42. Ibid Vol. VIII, p. 362.
43. ''विवेकानन्द जी के संग में'', पृ0 308।
44. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. II, p. 78.
45. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. I, 330.
46. Ibid, Vol. II, 78-9.
47. Ibid, Vol. III, p. 195-6,
48. Ibid, Vol. III, p. 125.
49. Ibid, Vol. II, p. 461.
50. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. V. p. 266.
51. Ibid, p. 269.
52. If it is possible attend of freedom, the conclusion is inevitable that the soul is by its nature free. Ibid, Vol. II, p. 196.
53. Ibid, p. 196.
54. Ibid, p. 193.
55. Ibid, p. 196.
56. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. II p. 195.

भारत-बांग्लादेश सम्बन्धों पर चुनौतियों का प्रभाव

संगीता सैनी
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

सन् 1971 ई0 में विश्व के मानचित्र पर सम्प्रभुता-सम्पन्न स्वतन्त्र राष्ट्र के रुप में बांग्लादेश का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने दक्षिण एशिया उप-महाद्वीप के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के स्वरुप में दूरगामी तथा गुणात्मक परिवर्तन किया। इसके प्रादुर्भाव ने धार्मिक मान्यता पर आधारित द्वि-राष्ट्र विचारधारा को चोट पहुँचाई। भारत दक्षिण एशिया में एक सुदृढ़ तथा शक्तिशाली राष्ट्र के रुप में उभरा तथा एक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के समर्थक के रुप में भारत की छवि प्रतिष्ठित हुई। भारत ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को पश्चिमी पाकिस्तान के क्रूर, दमनकारी तथा शोषक सत्ता से छुटकारा दिलाने में सैनिक, वित्तीय तथा नैतिक सहायता व सहयोग प्रदान किया।

भारत के उक्त कदम के पीछे भारी मात्रा में पूर्वी पाकिस्तान के लोगों का शरणार्थी के रुप में भारत में आना रहा है। इस बारे में अनुमान लगाया जाता है कि करीब 10 लाख बांग्लादेशी शरणार्थियों ने भारत में शरण लिया। पश्चिमी पाकिस्तान के क्रूर दमन से बचने के लिए ये शरणार्थी भारत में आने लगे। एक हद तक तो भारत ने शरणार्थियों के बोझ को सहन किया, किन्तु जब इनकी संख्या में अत्यधिक बढ़ोत्तरी होने लगा तो भारत ने पाकिस्तानी सरकार को अपनी चिन्ता से अवगत कराया और शरणार्थियों को वापस बुलाने के लिए वैश्विक स्तर पर प्रयास करने लगा, किन्तु पाकिस्तान का इस दिशा में सकारात्मक कदम के बजाय उल्टे भारत पर आरोप लगाने लगा। परिणाम यह हुआ कि, भारत को पाकिस्तान के मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा और इस प्रकार पूर्व में एक नए प्रभुता सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य - बांग्लादेश, का जन्म हुआ। भारत का पाकिस्तान में हस्तक्षेप अपनी इस विदेश नीति के कि, दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाए, के विपरीत है, किन्तु इसके पीछे भारत की मजबूरी थी।[1]

मार्च, 1970 के चुनाव में आवामी लीग ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया किन्तु जनरल याहिया खाँ ने सत्ता का हस्तान्तरण सफलतापूर्वक नहीं किये, जिससे पूर्वी पाकिस्तान के लोगों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना आरम्भ कर दिया। फलस्वरुप पाकिस्तानी सैनिक इन पर बहशी दरिन्दे की तरह टूट पड़े और क्रूरता की सारी सीमाएँ तोड़ दिये। यहाँ तक की बच्चों एवं महिलाओं पर बेइंतहा अत्याचार किया गया। भारत ने पूर्वी बंगाल के लोगों के मानवीय अधिकारों के समर्थन में विश्व जनमत इकट्ठा करने का निर्णय किया। तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा विदेश मन्त्री स्वर्ण सिंह ने पूर्वी बंगाल की समस्या के राजनीतिक हल हेतु विश्व समुदाय का समर्थन प्राप्त करने के लिए विश्व के देशों का दौरा किया, जोकि शरणार्थियों की सुरक्षित वापसी में सहायक हो। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भी इसे उठाया तथा कई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भी इसे उठाया। किन्तु, इन प्रयत्नों से कोई लाभ नहीं हुआ। 1971 में भारत को इसका आभास हो गया कि, समस्या के समाधान के लिए उसे हस्तक्षेप करना पड़ेगा। 15 जून, 1971 को श्रीमती गांधी ने राज्य सभा में यह घोषणा की कि, "हमें बांग्लादेश में हो रही घटनाओं की चुनौती का सामना करने लिए अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ेगा।" तत्पश्चात् भारत ने बंग्लादेश के लोगों तथा उनकी मुक्ति वाहिनी को

 ISSN 2277-5587

उनके अधिकारो की प्राप्ति में सहायता देने के लिए अग्रसर हुआ। यह कदम 1971 के भारत-पाक युद्ध में परिवर्तित हो गया।[2] भारतीय सेना ने मुक्ति वाहिनी के साथ मिल कर एक संयुक्त कमान बनाई तथा दोनों मिलकर पूर्वी पाकिस्तान में पश्चिमी पाकिस्तान की सेना के साथ लड़ना आरम्भ कर दिया। लगभग दो सप्ताहों के अति कुशल सैनिक कार्यवाही के बाद लैफ्टीनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के नेतृत्व में इस संयुक्त कमान ने 16 दिसम्बर, 1971 को बांग्लादेश को स्वतन्त्र करवाने में सफलता प्राप्त की।

अवैध घुसपैठ की समस्या :

स्वतंत्र बांग्लादेश के बाद एक मुख्य समस्या अवैध सीमा घुसपैठ की थी। अवैध घुसपैठ की घटनाओं को रोकने के लिये भारत द्वारा कई प्रकार के प्रयास भी किये गये, जैसे सीमा पर सुरक्षा को कड़ा किया गया, सीमाक्षेत्र में सशस्त्र बलों की सक्रियता को बढ़ाने के लिये सैनिकों की संख्या में वृद्धि की गयी। बांग्लादेश से भी यह अपेक्षा की गयी थी कि वह भारत के इन प्रयासों में सहयोग करेगा। परन्तु इस समस्त प्रयासों का कोई अनुकूल प्रभाव नहीं प्राप्त किया जा सका।[3] भारतीय विदेश मंत्री श्री पी.वी. नरसिंहराव ने 16-18 अगस्त 1980 तक की यात्रा के बाद भारत-बांग्लादेश के संयुक्त वक्तव्य में दोनों देशों ने सीमा पार क्षेत्र से अवैधानिक गतिशीलता को रोकने की आवश्यकता पर बल दिया गया था तथा इस बात पर सहमति व्यक्त की गयी थी कि इस दिशा में इनके बीच पहले से ही चल रहे प्रयासों को और अधिक मजबूत तथा सक्रिय किया जावेगा।[4]

बांग्लादेश के नागरिकों द्वारा अवैध सीमा पार की समस्या :

1979 तक स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई तथा अपने बांग्लादेश के दौरे के दौरान प्रधानमंत्री देसाई ने इस समस्या पर राष्ट्रपति जिया-उर-रहमान के साथ बातचीत की। दोनों ही नेताओं ने तब अवैध रुप से सीमा पार करने वालों को नियन्त्रित करने का निर्णय किया। यह भी तय हुआ कि, बांग्लादेश मिजो (Mizo)विद्रोहियों के विरुद्ध कार्यवाही करेगा जो बांग्लादेश के शरणस्थलों से अपनी गतिविधियों का संचालन कर रहे थे।

एक सुदृढ़ तथा प्रभावशाली निवारक के रुप में असम में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री हितेश्वर सैकिया (Hiteswar Saikia) ने बांग्लादेश से अवैध अप्रवासियों को रोकने के लिए सीमा के साथ-साथ 270 किमी. लम्बी दीवार बनवाने का प्रस्ताव रखा। बांग्लादेश ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। इस प्रकार अवैध प्रवास की समस्या को प्रभावशाली ढंग तथा विशेषज्ञों द्वारा हल किए जाने की आवश्यकता अनुभव की गई। सीमा की तरफ से इस अवैध आवागमन को रोकने की शीघ्र आवश्यकता बनी रही। यदि बांग्लादेश दीवार बनाने के पक्ष में नहीं था तो इसे अपने नागरिकों में ढूंढने तथा देश प्रत्यावर्तन में भारत की सहायता करनी चाहिए थी। चटगांव के पहाड़ी इलाकों में चकमा जनजातियो के पुनर्वास का मामला भी भारत तथा बांग्लादेश के मध्य पूर्ण रुप से हल किया जाना शेष रहा। बांग्लादेश की सरकार ने यह आश्वासन दिया कि चकमा के कबाइली लोगों की वापसी के लिए उचित वातावरण तथा संरक्षण देगी। बेगम जिया की 1992 की भारत यात्रा के समय इस मुद्दे पर स्पष्ट बातचीत हुई। कुछ चकमा शरणार्थी बांग्लादेश वापस भी भेजे गये। 1996-97 में भी ऐसा ही किया गया परन्तु मूल रुप में यह समस्या अभी भी भारत-बांग्ला सम्बन्धों की एक समस्या बनी हुई है।[5]

चकमा समस्या :

बांग्लादेश सम्बन्धों में बांग्लादेश के चकमा शरणार्थियों की समस्या तनाव का एक और प्रश्न है। अधिकतर चकमा शरणार्थियों ने भारत के त्रिपुरा राज्य में शरण ले ली है। सन् 1994 तक 5200 शरणार्थी वापस भेजे जा चुके थे। शेष 50,000 शरणार्थियों की वापसी के प्रश्न पर 1996 के अंत तक बातचीत चल रही थी। उनमें से अधिकतर शरणार्थी त्रिपुरा के शिविरों में वापसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वापसी केवल स्वेच्छा के आधार पर की गई थी।

सीमा विवाद :

सन् 1974 ई. में बांग्लादेश तथा भारत के मध्य दिल्ली समझौता हुआ तथा अंत: क्षेत्रों की समस्या सुलझ गई, तथापि मुजीब के बाद बांग्लादेश की सरकार ने एक बार फिर भारत के साथ सीमा समस्या को जीवित करने का प्रयत्न किया। भारत और बांग्लादेश के बीच सीमा समस्या मुख्यत: दाहाग्राम (Dahagram),वेरुबरी (Berubari), तथा अंगरपोटा (Angarpota) इनक्लेव से सम्बन्धित रही है। प्रारम्भ में यह भारत और पाकिस्तान के बीच की समस्या थी। परन्तु बांग्लादेश के निर्माण के बाद यह समस्या भारत और बांग्लादेश के बीच स्थानान्तरित हो गयी। इनके बीच सीमा की कुल लम्बाई लगभग 3000 मील है जिस पर शायद ही कोई प्राकृतिक अवरोध है। मई, 1974 में शेख मुजीब की दिल्ली यात्रा के समय सम्पन्न सीमा समझौतों में वेरुबरी भारत को प्राप्त हुआ था जबकि बांग्लादेश को दाहाग्राम तथा अंगरपोटा के इनक्लेव प्राप्त हुए थे।[6]

इसी दौरान बांग्लादेशी पक्ष में भी दोनों देशों के बीच परम्परागत मैत्री तथा सहयोग को बनाये रखने तथा उसे और अधिक मजबूती प्रदान करने के अपने सरकार की इच्छा को पुन: दुहराया तथा यह विश्वास व्यक्त किया था कि उनके लोगों के प्रगति तथा भलाई के लिए दक्षिण एशियाई क्षेत्र में शॉति, स्थिरता एवं सहयोग आवश्यक है।[7]

समस्या के समाधान के लिए भारत तथा बांग्लादेश के बीच ढाका में सचिव-स्तरीय बैठकें फरवरी, 1980 में हुई। यह बातचीत केवल भारत तथा बांग्लादेश के भविष्य के लिए आशावादी स्तर पर समाप्त हो गई। 1980 में तत्कालीन विदेश मन्त्री पी.वी. नरसिंम्हाराव (P.V. Narasimha Rao) के दौरे के बाद यह घोषणा की गई कि, भारत तथा बांग्लादेश 1974 के सीमा समझौते को लागू करने हेतु विवरणों के परिकलन के लिए अक्टूबर 1980 में एक उच्च स्तरीय बातचीत हुई तथा यह तय हुआ कि, दो वर्षो के भीतर दोनों देश 1974 के

समझौते के आधार पर सीमाओं का निर्धारण कर लेंगे। इस बातचीत से दोनों देशों के बीच कुछ शंकाएं दूर हो गईं तथा इस क्षेत्र में कुछ और सर्वेक्षण के पूरा होने तक मुहुरी चार क्षेत्र में यथास्थिति बनाये रखा जाना भी स्वीकार किया गया। जुलाई, 1983 में ही बांग्लादेश को तीन बीघा (Tin Bigha) गलियारे के चिरस्थायी पट्टे पर दिए जाने पर समझौता हो सका।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के मई, 1990 के फैसले के बावजूद (जिसमें उसने 1974 के समझौते को वैध करार दिया था) तीन बीघा (Tin Bigha) गलियारे का बांग्लादेश को हस्तांतरण कुछ समय तक अनिर्णीत पड़ा रहा। इसने यह फैसला दिया कि गलियारे के हस्तांतरण में कोई संवैधानिक अड़चन नहीं थी तथापि पश्चिमी बंगाल में लोकप्रिय जनमत, विशेषकर वे लोग जो कूच-बिहार के जिले के निवासी थे, इस हस्तांतरण के विरुद्ध थे। गलियारे में जिन 17 लोगों की सम्पत्ति स्थित थी उन्होंने 1974 के समझौते का विरोध किया तथा हस्तांतरण से पूर्व पुन: सर्वोच्च न्यायालय में मामला ले जाने की बात भी की। परन्तु सभी कठिनाइयों पर काबू पा लेने के बाद अक्टूबर 1992 में भारत में तीन बीघा गलियारा बांग्लादेश को स्थायी रुप से पट्टे पर दे दिया। लेकिन इसके बाद भी भारत-बांग्लादेश सीमा के कुछ क्षेत्रों के सीमांकन के प्रति कुछ मतभेद विद्यमान बने हैं।

सीमा निर्धारण तथा भारत बांग्लादेश सम्बन्ध :

20 अप्रैल, 1986 को दोनों देशों ने दक्षिण त्रिपुरा के सीमावर्ती गांव बेलोनिया (Belonia) के नीचे मुहुरी चार की भूमि के निर्धारण को शीघ्र निपटाने का फैसला किया तथापि दोनों पक्ष झगड़े के महत्वपूर्ण मुद्दों पर सहमत नहीं हो सके। बांग्लादेश ने भारत की ओर 1.2 किलोमीटर बांध के निर्माण तथा पलस्तर के कार्य के विरुद्ध विरोध इस आधार पर जारी रखा कि यह झगड़े वाली 'मुहुरी चार' के सीमा के निर्धारण पर हानिकारक प्रभाव डालेगा।' भारत के विरोध पर कोई ध्यान न दिया अपितु इसकी अपेक्षा बांग्लादेश से आग्रह किया कि, वह उसकी सेनाओं द्वारा भारतीय कारीगरों पर की जा रही 'अकारण गोलाबारी' बन्द करें तथा निर्माण के कार्य को इस आधार पर न्यायसंगत ठहराया कि, यह केवल अस्थाई स्वरुप का था तथा पूर्ण रुप से 1974 के इन्दिरा-मुजीब समझौते के धाराओं के अन्तर्गत था।

इन्दिरा-इरशाद समझौते, 1981 ने यह निर्णय किया कि भारत अपने तीन बीघा क्षेत्र को स्थायी पट्टे (Permanent Lease) पर बांग्लादेश को दे देगा। अर्थात् कहने को तीन बीघा भारत का प्रदेश रहते हुए भी पट्टे पर बांग्लादेश को प्राप्त हो जाएगा। इस भूमि का किराया न लेने का निर्णय किया। बांग्लादेश को पट्टे वाली भूमि पर पूर्ण अधिकार दे दिए गए। इस पट्टे में यह व्यवस्था दी गयी थी कि पट्टे पर दिये गये दो गांवों पर संप्रभुता का प्रयोग बांग्लादेश की सरकार द्वारा किया जायेगा, किन्तु इस पर वास्तविक संप्रभुता भारत की होगी। इस प्रकार वास्तविक अर्थो में भारत ने कोई क्षेत्र पट्टे पर नहीं दिया था, बल्कि बांग्लादेश को केवल मार्ग प्रदान किया था, जिसका प्रयोग करते हुए दोनों देशों के नागरिक सामान्यतया सैनिक, स्वतंत्रतापूर्वक एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भ्रमण कर सकते थे।[6] बांग्लादेश की जनता और सुरक्षा बलों को स्वतन्त्रतापूर्वक इस क्षेत्र में आने जाने का अधिकार दिया गया और उन्हें कोई पारपत्र (Passport) या प्रवेशपत्र (Visa) साथ रखना आवश्यक नहीं होगा। भारत के नागरिकों के लिए इस क्षेत्र में अबाध आने जाने का अधिकार प्राप्त रहेगा। दाहाग्राम और अंगापोटा के लोगों ने इस व्यवस्था का सदय से स्वागत किया। परन्तु पश्चिम बंगाल की जनता ने गम्भीर रोष व्यक्त किया। इस समझौते की मुख्य विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार से बतलाया जा सकता है -

1. दाहाग्राम (Dagagram) तथा अंगरपोटा (Angerpota) को पनबारी मौजा (Panbari Monza P.S. Patgam) से बांग्लादेश के साथ जोड़ने के उद्देश्य से तीन बीघा गलियारे को पट्टे पर दिया जायेगा, ताकि बांग्लादेश की सरकार अपने क्षेत्रों पर अपनी प्रभुसत्ता का प्रयोग कर सके।

2. पट्टे पर दिए गए क्षेत्र पर भारत की प्रभुता होगी। इसका वार्षिक किराया बांग्लादेश की मुद्रा का एक रुपया होगा, तथापि बांग्लादेश को यह किराया नहीं देना होता तथा भारत की सरकार ऐसा किराया वसूलने के अपने अधिकार का त्याग करती है।

3. पहले अनुच्छेद में लिखित उद्देश्यों के लिए पट्टे पर दिया गया क्षेत्र बिना किसी बाधा के बांग्लादेश के निरन्तर अधिकार तथा प्रयोग में रहेगा।

4. बांग्लादेश के नागरिक तथा पुलिस, अर्द्धसैनिक बल तथा सैनिक अधिकारी अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित इस क्षेत्र में स्वतन्त्रता तथा स्वछंदता से घूम सकते हैं तथा उन्हें किसी प्रकार के पासपोर्ट तथा यात्रा के दस्तावेज नहीं उठाने पड़ेंगे। बांग्लादेश की वस्तुओं का आना-जाना भी नि:शुल्क होगा जिस पर किसी भी प्रकार की सीमा शुल्क कर, फीस या पारगमन खर्चा नहीं लिया जायेगा। भारतीय नागरिकों को भी यही अधिकार प्राप्त रहेंगे।

5. भारतीय वस्तुओं का पट्टे पर दी गई भूमि के पार यातायात स्वतन्त्र और नि:शुल्क होगा। इस प्रकार के यातायात के उद्देश्य के लिए क्षेत्र के आर-पार जाने वाली वर्तमान सड़क का ही प्रयोग किया जायेगा। भारत पट्टे पर दी गई भूमि के ऊपर या नीचे केवल अपने ही प्रयोग के लिए किसी भी प्रकार की सड़क बना सकता है। लेकिन यह ऐसे किया जायेगा जिससे पट्टे पर दिये गलियारे में बांग्लादेश के नागरिकों या वस्तुओं के आवागमन में कोई रुकावट पैदा न हो।

6. दोनों सरकारें पट्टे पर दी गई भूमि के साथ-साथ चिन्हक रखने में एक-दूसरे से सहयोग करेंगी।[7]

7. दोनों देशों को पट्टे पर दी गई भूमि के ऊपर या नीचे केबल

लगाने, बिजली की तारें लगाने, तथा गन्दे नाले की पाइपें बिछाने का अधिकार होगा लेकिन ऐसे कार्यों से किसी भी देश के नागरिकों या वस्तुओं के निर्बाध आवागमन में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए।[9]

सीमापार से आतंकवाद एवं मादक द्रव्यों का अवैध व्यापार :

आज दुनियाभर में आतंकवाद पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय गहरी चिन्ता व्यक्त कर रहा है, क्योंकि अनेक देश आतंकवाद से प्रभावित हैं, जिनमें भारत भी सम्मिलित है। हमारे देश में अस्थिरता और आतंकवाद फैलाने के लिए कई देशी व विदेशी आतंकवादी संगठन सक्रिय हैं। विश्व के बदलते परिदृश्य में परोक्ष युद्ध के बल पर गतिविधियाँ चलाना आतंकवादियों की एक प्रमुख कूटनीतिक योजना बन गई है। पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आइ.एस.आई. ने भारत के सामरिक दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील क्षेत्र पूर्वोत्तर राज्यों की सीमा पर अपनी गतिविधियाँ चलाने के लिए जमीन तैयार कर दी हैं। इस लक्ष्यपूर्ति के लिए उसने बांग्लादेश में अपने नेटवर्क का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने तत्कालीन उपप्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवानी को एक गोपनीय रिपोर्ट सौंपी, जिसमें उन्होंने बांग्लादेश में चल रहे सभी आतंकवादी प्रशिक्षण शिविरों के सन्दर्भ मे सम्पूर्ण विवरण दिया गया था। इस गोपनीय रिपोर्ट के अनुसार इस समय बांग्लादेश में लगभग 195 से अधिक आतंकवादी प्रशिक्षण शिविर चल रहे हैं। इसके साथ ही मदरसों में मजहबी तालीम देकर आतंकवाद की एक नई पौध तैयार करने का काम भी जोरों पर चल रहा है।

यद्यपि भारत सरकार ने विभिन्न राजनयिक माध्यमों से बांग्लादेश सरकार के सामने आतंकवादी शिविरों का मामला उठाया है, किन्तु पड़ोसी सरकार उनके अस्तित्व को स्वीकार करने से भी इन्कार करती रही है, दूसरी ओर चीन और अन्य पूर्वी एशियाई देशों के विगत दिनों हुए उसके समझौतों से यह स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि, कहीं बांग्लादेश का रुझान पूर्व की ओर तो नहीं बढ़ रहा है। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री खालिदा जिया ने चीन की यात्रा के दौरान वहाँ एक महत्वपूर्ण रक्षा समझौते पर भी हस्ताक्षर की थी। इसके कुछ दिन पूर्व म्यांमार के नेता थान वूके ने बांग्लादेश की यात्रा की थी। बांग्लादेश के निकट आने वाले पूर्वी एशियाई देशों में थाईलैण्ड की भी गिनती है। यह सर्वविदित है कि, जब भी बांग्लादेश में भारत विरोधी बेगम खालिदा जिया की बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बी.एन.पी.) की सरकार सत्ता में आई है, तब भारत व बांग्लादेश के सम्बन्ध नकारात्मक दिशा में मोड़ लेते रहे हैं। जब बांग्लदेश में 01 अक्टूबर, 2001 को सम्पन्न हुए आम चुनाव में बेगम खालिदा जिया सत्ता में आईं, तो साउथ एशियन कान्फ्रेंस से जुड़े बुद्धिजीवियों ने 04 अक्टूबर को एक संयुक्त वक्तव्य जारी कर कहा था - "इस आम चुनाव के बाद बेगम खालिदा जिया के नेतृत्व में एक कट्टरपंथी समर्थक और तालिबानी सरकार सत्ता में आ रही है।

भारत में 'लश्कर-ए-तैयबा' व 'द स्टूडेन्ट्स इस्लामिक मूवमेन्ट ऑफ इण्डिया' (सीमी) के अलावा अनेक आतंकवादी संगठन देश में अस्थिरता और आतंकवाद फैलाने के लिए सक्रिय हैं। आतंकवाद से भारत को उलझाए रखने हेतु बांग्लादेश के माध्यम से पाकिस्तान खुफिया तंत्र नई रणनीति बना चुका है। इस सन्दर्भ में आई.एस.आइ. प्रमुख रहे जनरल हामिद गुल का कहना है कि, भारतीय सैनिकों को जेहादियों के जरिए नुकसान पहुँचाकर व्यस्त रखने के करण ही पाकिस्तानी सेना को बिना किसी अतिरिक्त खर्च के नई टुकड़ी तैयार करने का मौका मिल जाता है। यही कारण है कि, बांग्लादेश, चीन व पाक की शह पर भारत को आँखें दिखाने लगा है। वर्तमान स्थिति व समय को दृष्टि में रखते हुए भारत को कठोर-से-कठोर कूटनीति भले ही क्यों न अपनानी पड़े, इसे अपनाना होगा। चूँकि दक्षिण एशिया के बदलते सुरक्षा परिदृश्य में भारत की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है और भविष्य में भी रहनी चाहिए।[10]

उत्तर बंगाल में अब तक बीस किलो हेरोइन व दस हजार किलोग्राम गांजा जब्त किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त भारी मात्रा में अवैध शराब, नशे के इंजेक्शन व टेबलेट बरामद हुए हैं। पता चला है कि, युवाओं को प्रभावित करने के लिए दो पैकेट हेरोइन के साथ एक नाइन एम.एम.की पिस्टल मुफ्त दी जाती है। कस्टम विभाग ने इसकी विस्तृत रिपोर्ट केंद्रीय ड्रग्स कंट्रोलर को भेजा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि, ड्रग्स के कारोबार में पर्दे के पीछे से कई सफेदपोश भी जुड़े हुए हैं। उनके माध्यम से सिलीगुड़ी से प्रतिमाह करीब सौ करोड़ का हवाला कारोबार भी होता है। ड्रग्स कारोबारियों का प्रमुख अड्डा सिलीगुड़ी स्थित तेंजिंग नोर्गे अंतरराष्ट्रीय बस अड्डा व न्यू जलपाईगुड़ी रेलवे स्टेशन है। यहां से प्रतिमाह बीस करोड़ का ड्रग्स कारोबार होता है।[11]

छोटे अग्नेयास्त्रों का प्रसार :

भारत एवं बांग्लादेश सम्बन्धों का यदि भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि बांग्लादेश के अभ्युदय के प्रारम्भिक समय में श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं मुजीब के समय दोनों देशों के सम्बन्ध अत्यंत प्रगतिशील एवं सद्भावनापूर्ण रहे हैं, किन्तु कालांतर में भारत एवं बांग्लादेश के सम्बन्धों में निरंतर खटास पैदा होती गयी है। इसकी वजह बांग्लादेश में भारत विरोधी राजनीतिज्ञों की सक्रियता के साथ चीन जैसे राष्ट्रों के दबाव में बांग्लादेश का अपनी राजनीतिक गतिविधियों का निर्धारण रहा है। यह सर्वविदित है कि, बांग्लादेश में भारत विरोधी आतंकवादी गतिविधियों को प्रसारित करने के लिए अनेक आतंकवादी-शिविरों को संचालित किया जा रहा है। इन आतंकी गतिविधियों को व्यावहारिक रुप देने के लिए गोला-बारुद एवं हथियारों की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता को पूरा करने का स्थान बांग्लादेश को चुना गया है। वास्तव में, बांग्लादेश को छोटे अग्नेयास्त्रों के निर्माण एवं प्रसार का केन्द्र बनाया जा रहा है।

फरक्का विवाद :

भारत-बांग्ला देश सम्बन्धों में खटास एवं तनाव पैदा करने वाली समस्याओं में फरक्का विवाद मुख्य है। गंगा के पानी के धीमे बहाव के कारण कलकत्ता की बन्दरगाह के अन्दर जो गाद जाम हो जाती थी, उसे साफ करने के लिए तथा इस पानी का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए भारत सरकार ने 1951 में गंगा के आर-पार फरक्का पर एक बांध बनाने तथा भागीरथी के पानी का सम्पूर्ण उपयोग करने के लिए निम्न स्तर पर बांध से 26 मील लम्बी एक सम्पर्क नहर निकालने का निर्णय किया। इस परियोजना के मुख्य उद्देश्य उन ज्वारीय लहरों की आवृत्ति तथा तीव्रता में कमी करना था जो हुगली तक जाकर कलकत्ता की जहाजरानी सेवाओं को प्रभावित करती थीं। साथ ही इसके माध्यम से कलकत्ता को ताजे पानी की अपूर्ति में वृद्धि करना था। भारत ने पाकिस्तान द्वारा उठाई गई इस आपत्ति को इस आधार पर नकार दिया कि पाकिस्तान का दृष्टिकोण ठोस नहीं था। परन्तु उसके साथ ही, इसने पाकिस्तान को यह आश्वासन भी दिया कि, फरक्का बांध से पूर्वी पाकिस्तान के हितों को कोई हानि नहीं होगी।

मुजीब के बाद फरक्का समस्या

मुजीब के युग के बाद के समय में फरक्का बांध पर आगे बातचीत का वातावरण विशाक्त हो गया क्योंकि बांग्लादेश की प्रेस में भारत के विरुद्ध उत्तेजनापूर्वक प्रचार शुरु हो गया था। यह भी कहा जाने लगा कि भारत को फरक्का बांध से जरा-सा भी पानी लेने के लिए पहले बांग्लादेश से स्वीकृति लेनी होगी। फरवरी, 1976 में जब भारत ने फरक्का से कमी के मौसम में पानी लेने के लिए बातचीत करने के लिए ढाका को सरकारी प्रस्ताव भेजा तो उसने यह विचार पेश किया कि ऐसी सभी बातचीत तब तक व्यर्थ होगी जब तक की भारत फरक्का से एकपक्षीय रुप से गंगा का पानी लेता रहेगा। इस तरह की स्थिति के साथ बांग्लादेश ने इस प्रकार "अवैध पानी, लेने से बांग्लादेश की सिंचाई, अर्थव्यवस्था तथा अन्य औद्योगिक आवश्यकताओं पर बुरे प्रभावों का रोना, रोना शुरु कर दिया। इसने तो इस समस्या का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने का प्रयत्न भी किया। बाद में बांग्लादेश ने फरक्का समस्या पर द्वि-पक्षीय बातचीत के महत्व को समझा तथा मई, 1976 में दोनों देशों के अधिकारियों के बातचीत के दो दौर हुए।

सितम्बर, 1976 में बांग्लादेश ने फरक्का पर एक श्वेत पत्र जारी किया तथा इसमें फरक्का बांध के बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था तथा कृषि पर उठने वाले कु-प्रभावों का उल्लेख किया। इस महीने में बांग्लादेश ने संयुक्त राष्ट्र में फरक्का का मामला उठाया। इसने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव से यह प्रार्थना की कि, फरक्का के मामले को महासभा की कार्यसूची में शामिल किया जाए। 24 सितम्बर को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने इसको अपनी कार्यसूची में सम्मिलित करने का तथा इस पर विचार करने के लिए इसे एक विशिष्ट राजनीतिक समिति (Special Political Committee) को सौंपने का निर्णय किया। भारत ने इसका विरोध किया तथा अनुभव किया कि इस प्रकार यह मामला और अधिक जटिल हो जाएगा तथा जो बात द्वि-पक्षीय बातचीत से सुलझ सकती है, उसमें व्यवधान उत्पन्न हो जाएगा। भारत ने बांग्लादेश की आलोचना इसलिए भी की कि क्योंकि बांग्लादेश ने अनावश्यक रुप से ही संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा को इस द्वि-पक्षीय समस्या में शामिल किया था। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को कहा कि, वह इस समस्या का हल ढूंढने के लिए किये जाने वाले द्वि-पक्षीय प्रयत्नों का समर्थन करें।[12]

दिसंबर 2014 में बांग्लादेश के राष्ट्रपति की भारत यात्रा, विदेश मंत्री की जून 2014 में सर्वप्रथम विदेश यात्रा के रुप में की गई ढाका यात्रा और अगरतला स्थित बांग्लादेश वीजा कार्यालय को सहायक उच्चायुक्त कार्यालय के रुप में स्तरोन्नत किया जाना शामिल है। भारत-बांग्लादेश संबंध सही मायने में बहुआयामी हो गया है जिसके तहत व्यापक विषय क्षेत्र शामिल हैं जैसे- व्यापार तथा निवेश, सुरक्षा, कनेक्टिविटी, सीमा प्रबंधन, जल, विद्युत, पोत-परिवहन, नवीकरणीय ऊर्जा, विकास सहयोग, कला एवं संस्कृति, लोगों के बीच आपसी बातचीत, मानव संसाधन विकास आदि शामिल हैं। संयुक्त परामर्शदात्री आयोग (जेसीसी) की तीसरी बैठक 20 सितंबर, 2014 को नई दिल्ली में आयोजित की गई जिसमें दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों से जुड़े सभी मुद्दों की पुनरीक्षा की गई। संयुक्त परामर्शदात्री आयोग के दौरान बांग्लादेश ने नालंदा विश्वविद्यालय के संबंध में भारत के साथ सहयोग पर एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए।

वर्ष 2015 में द्विपक्षीय सहयोग के तहत करारों, प्रोटोकॉलों तथा समझौता ज्ञापनों को लागू करने और साथ ही जून 2015 में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की बांग्लादेश यात्रा के दौरान सम्मत पहलुओ पर ध्यान दिया गया है। जून, 2015 में प्रधान मंत्री जी की ढाका यात्रा के दौरान लिए गए निर्णयों से दोनों देश और भी निकट आए हैं। उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान कुछ ऐसे मुद्दों पर प्रगति हुई, जिनका समाधान दशकों से नहीं हो पा रहा था। भारत और बांग्लादेश ने भू-सीमा मुद्दों, सुरक्षा, अवसंरचना विकास, विद्युत, व्यापार और निवेश तथा संपर्क सुविधा के क्षेत्र में सहयोग, उपक्षेत्रीय सहयोग तथा लोगों से लोगों के बीच आदान-प्रदान सहित अन्य सभी मुद्दों पर द्विपक्षीय सहयोग को बढ़ावा देने के लिए मिलकर कार्य किया है। भारत ने एक ऐसे आत्मविश्वासी, बेबाक, उभरती शक्ति के रुप में विश्व में अपनी नई भूमिका निभानी जारी रखी जो विश्व में अपनी जगह बनाने और अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए इच्छुक है।

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना के निमंत्रण पर प्रधानमंत्री जी ने 6-7 जून, 2015 तक बांग्लादेश का दौरा किया। यह प्रधानमंत्री का बांग्लादेश का पहला दौरा था। इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने बांग्लादेश के राष्ट्रपति श्री मुहम्मद अब्दुल हमीद से मुलाकात की और प्रधानमंत्री हसीना के साथ द्विपक्षीय, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर चर्चा की। उन्होंने नेता प्रतिपक्ष रौशन इरसाद

बीएनपी की अध्यक्ष बेगम खालिदा जिया तथा विभिन्न बामपंथी दलों के प्रतिनिधियों से मुलाकात की। इस यात्रा के दौरान बाइस (22) करारों/समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए और उनका आदान-प्रदान किया गया जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं: 1974 के भू-सीमा करार तथा 2011 के इसके प्रोटोकॉल के अनुसमर्थन दस्तावेजों का आदान-प्रदान; 1974 भूसीमा करार तथा 2011 के इसके प्रोटोकॉल के कार्यान्वयन के तौर तरीकों पर दोनों विदेश सचिवों के बीच पत्रों का आदान-प्रदान; तटीय नौवहन से सम्बद्ध करार; द्विपक्षीय व्यापार करार, अन्तर देशीय जलमार्गों से संबद्ध प्रोटोकाल, पारगमन एवं व्यापार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम का नवीनीकरण; बांग्लादेश में भारतीय विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना से संबद्ध समझौता ज्ञापन; बांग्लादेश को दो बिलियन अमरीकी डॉलर का नया भारतीय ऋण दिये जाने से संबद्ध समझौता ज्ञापन; मानव तस्करी की रोकथाम से संबद्ध समझौता ज्ञापन; जाली मुद्रा की तस्करी एवं परिचालन की रोकथाम से संबद्ध से समझौता ज्ञापन; बंगाल की खाडी तथा हिंद महासागर क्षेत्र में नीली अर्थव्यवस्था एवं समुद्री सहयोग से संबद्ध समझौता ज्ञापन इत्यादि।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Kissinger, Henry A. : "The White House Years", Boston : Little Brown, 1979*
2. *अप्पादोरई, ए., 'भारत की विदेश नीति एवं पर-राष्ट्र सम्बन्ध पर चुनिन्दा दस्तावेज', 1947-1972, जिल्द 1, दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982, पृ. 469*
3. *Shehryar, Aftab,Indo-Bangladesh ties : New Phase, India Backgrounder Seveice Vol. 7, No 33 (346) Nov. 15. 1982. p. 271*
4. *Foreign Affairs Record, Vol. 21 No. 12 Dec. 1975, p. 19-20*
5. *घई, आर. ए., 'भारतीय विदेश नीति', न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर, 2009, पृ: 368*
6. *Fareigh Affairs Rveord. Vol, 26. No. 8 August 1980 p. 162*
7. *Sharma, Sriram - India Foreign Policy : Annual Survey 1982. Stening Publishers, New Delhi, 1986, p. 41*
8. *Gupta, Prabhat : "A new begining in Indo-Bangladesh Relation", New Age (New Delhi), Oct. 1982, p. 2*
9. *घई, आर. ए., 'भारतीय विदेश नीति', न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर, 2009, पृ. 378-379*
10. *मित्र, डॉ. एस. के., 'बांग्लादेश में आतंकवादी प्रशिक्षण शिविर', प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, जनवरी, 2004, पृ. 1114-1115*
11. *सीमा पार से तस्करी युवाओं को बना रही है नशीला, दैनिक जागरण, दैनिक समाचारपत्र, सितम्बर 03, 2010*
12. *घई, आर. ए., 'भारतीय विदेश नीति', न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर, 2009, पृ0 379-87*

नागौर के प्राचीन मंदिर एवं मूर्तिकला

संतोष कुमार
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

राजस्थान का पश्चिम सम्भाग विशेषत: मरुमण्डल (मारवाड़) प्रतिहारकालीन संस्कृति एवं कला की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा है। नागौर अंचल उसका अभिन्न अंग था। स्थापत्य एवं मूर्तिकला की गौरवपूर्ण परम्परा प्राचीन समय से ही इस क्षेत्र में विद्यमान रही है। कलात्मक मंदिर, सुविशाल बावड़ियां, बिखरी हुई मूर्तियां, जुझारों के गोवर्द्धन तथा कीर्तिस्तम्भ आदि ऐसे अल्पज्ञात स्रोत सामग्री है जिनसे सांस्कृतिक इतिहास की जीवन्त झांकी शताब्दियों के अन्तराल के बाद भी मूक पाषाण खंडों के माध्यम से मुखर है। इन पर उत्कीर्ण अभिलेख नवीन तथ्यों को उद्घाटित करते हैं। उनकी विधिवत खोज व समुचित मूल्यांकन से अंधकारमय इतिहास की विलुप्त कड़ियां जोड़ी जा सकती है।

पूर्व मध्यकाल में भीनमाल (जालौर) से डीडवाना (नागौर) तक का प्रदेश प्रतिहार राजवंश (750-1018 ई.) की प्रमुख क्रीड़ास्थली थी। इस परिसर गुर्जर देश, गुर्जर भूमि, गुर्जरात्रा मण्डल आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध था। तत्कालीन साहित्य में इसे तीनों लोकों में विख्यात,[1] धन, श्री-समृद्धियुक्त[2] तथा देवालयों से रम्य एवं अलंकृत[3] कहा गया है। चूंकि प्रतिहार राजवंश का मूलस्थान[4] भिन्नमाल-जाबालिपुर (भीनमाल-जालौर) था और उनकी एक शाखा माण्डयपुर (मण्डोर)-रोहिन्सकूप (घटियाला) मेड़ता में शासन की बागडोर संभाले हुए थी। अत: यह सहज स्वाभाविक था कि गुर्जर देश में प्रतिहार कला परम्परा में विनिर्मित मंदिरों का जाल बिछ गया था। कला जगत में मंडोर, ओसियां, घटियाला, बुचलका, मेड़ता आदि के प्रतिहारकालीन मंदिर पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। पिछले दशकों में नागौर में हुई खोज एवं सर्वेक्षण के परिणामस्वरुप अनेक प्रतिहारकालीन भव्य मंदिर, बावड़ियां व स्मृति स्तंभ प्रकाश में आ चुके हैं।

नागौर क्षेत्र प्रतिहार साम्राज्य का अविभाज्य अंग था। अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित भोज प्रतिहार के वि.सं.फाल्गुन सुदी 13 (6 फरवरी, 844 ई.) के शिवा ग्राम से प्राप्त ताम्र पत्र में स्पष्टत: गुर्जरात्रा भूमि में स्थित डेण्डवाणक विषय (डीडवाना जिला) का उल्लेख[5] है। ताम्रपत्र के ऊपरी भाग में मुद्रांक के रुप में देवी भगवती का अंकन सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और शक्ति उपासना की लोकप्रियता का परिचायक है।[6] तत्कालीन गुर्जरात्रा भूमि में वर्तमान मारवाड़, सिरोही-जालौर-भीनमाल एवं पूर्वी राजस्थान तक का अधिकांश भाग सम्मिलित था। पश्चिम में डीडवाना से लेकर पूर्व में राजोरगढ़ (अलवर), सतवास-कामां (भरतपुर) का क्षेत्र इसकी सांस्कृतिक सीमाएं थीं।[7] वि.सं. 915 (858 ई.) में जयसिंहसूरि रचित धर्मोपदेशमाला विवरण से ज्ञात होता है कि नागौर अंचल मिहिर भोज के समय में प्रतिहार साम्राज्य का भाग था और वहां अनेक जिनालय था जिसके शिखर की प्रतिष्ठा वि. सं. 1181 (1124 ई.) में धर्मघोष सूरि ने की थी और उसका जीर्णोद्धार वि.सं. 1234 (1177 ई) में जिनपति सूरि द्वारा हुई थी। यहां की मूलनायक प्रतिमा को लगभग वि.सं. 1235 (1178 ई.) में शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी ने भंग भी किया था।[8]

पिछले दशकों की खोज के परिणामस्वरुप डीडवाना परिसर से जो भूस्फुट कला सामग्री प्राप्त हुई है- वह प्रतिहार युग में इस क्षेत्र की श्री एवं समृद्धि की द्योतक है। छोटी खाटू की अलंकृत बावड़ी और वहां की

 ISSN 2277-5587

मूर्तिकला, डीडवाना से प्राप्त अभिलेख युक्त स्मारक स्तम्भ तथा गोठ-मांगलोद का दधिमति माता मंदिर 8-9 वीं शताब्दी की प्रतिहारकालीन संस्कृति एवं कला के अनन्यतम उदाहरण है। ये भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला को डीडवाना परिसर की महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट देन है।[10] डीडवाना से प्राप्त श्याम प्रस्तर में विनिर्मित योगनारायण विष्णु की प्रतिमा प्रतिहारकालीन मूर्तिकला की पराकाष्ठा एवं विशिष्ट कलाकृति है। यह जोधपुर संग्रहालय की निधि है।[11]

डीडवाना जुझारु वीरों की रणभूमि रही है। तीन दर्जन से भी अधिक स्मारक स्तम्भ वहां से खोजे जा चुके हैं जिनमें अधिकांश पर लेख भी उत्कीर्ण हैं। कुछ पर मूर्तियां भी अंकित हैं। तिथियुक्त सती स्मारक स्तम्भों का महत्व इतिहास की स्रोत सामग्री के रुप में सर्वोपरि है। छोटी खाटू से इससे भी पुराने स्मारक-फलक ज्ञात हैं जिन पर वि.सं. 743,745,749,827 के लेख[12] उत्कीर्ण हैं। इसमें स्त्रियों के सहमरण का उल्लेख है परन्तु उनके लिए सती जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया हैं इनमें से अधिकांश सामग्री अद्यावधि अप्रकाशित है।

मंगलानक (मंगलाना) इस परिसर का अन्य महत्वपूर्ण प्रतिहारकालीन केन्द्र था। यह डीडवाना से दक्षिण में 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां के निवासी देदुक ने 8वीं शताब्दी में एक सुन्दर उमामाहेश्वर पट्ट (मूर्ति) कालिंजर (मध्यप्रदेश) में प्रतिष्ठित की थी जो वहां के नीलकंठ मंदिर में सुरक्षित है। इस मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख[13] में देदुक क मंगलानक विनिर्माण (मंगलानक से निकला हुआ) कहा गया है।

गोठ-मांगलोद का दधिमति माता मंदिर प्रतिहारकालीन मंदिर स्थापत्य का सिरमौर है। दाहिमा (दधीचक) ब्राह्मणों की कुल देवी को समर्पित यह देवभवन-भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला का गौरव है। शिखरबद्ध यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। वेदीबंध की सादगी, जंघा भाग की रथिकाओं में देवी-देवताओं की मूर्तियां, मंडोवर व शिखर की मध्यवर्ती कंठिका में चहुं ओर रामायण दृष्यावली एवं शिखर प्रतिहारकालीन परम्परा के अनुरुप है। यह महा-मारु शैली के मंदिर का सुंदर उदाहरण है। जंघा भाग पंचरथ है जिसकी मध्यवर्ती प्रधान ताक में पश्चिम की ओर आसनस्थ चतुर्भुजी दुर्गा, उत्तर की ओर तपस्यारत चतुर्भुजी स्थानक पार्वती तथा दक्षिण की ओर अष्टभुजी आसनस्थ एवं कुम्भोदर गणपति की खंडित प्रतिमा विद्यमान है। कर्णरथ पर द्विबाहु स्थानक दिग्पाल वाहन सहित अंकित है तथा मेषवाहना अग्नि, महिषवाहना यम, नरवाहना वरुण। प्रतिरथ में द्विबाहु स्थानक चामरधारिणी आमूर्तित है। राजस्थान की प्रतिहारकालीन मूर्तिकला में रामायण दृश्यावली का प्राचीनतम अंकन दधिमति माता मंदिर में ही प्राप्त है। जंघा व शिखर भाग की मध्यवर्ती कंठिका में 15 विशालकाय फलकों में राम वनवास से लेकर लंका विजय तक के दृष्य कुशलतापूर्वक अज्ञातनामा कलाकार ने बड़ी सहृदयता से बनाया है जो डीडवाना परिसर की भारतीय मूर्तिकला को अन्यतम देन है।[14]

इस मंदिर की मूल प्रशस्ति संबंधी अभिलेख को पं. रामकरण असोपा[15] ने लगभग 80 वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। इसे मारवाड़ के प्राचीनतम अभिलेख की संज्ञा देते हुए उसमें अंकित तिथि संवत्सर सतेषु 289 श्रावण वदी 13 को उन्होंने गुप्त संवत् से जोड़ते हुए उसे गुप्तकालीन (289+319 .608 ई) बताया था परन्तु संवत् के नामोल्लेख के अभाव में यह समीकरण विवादास्पद है। लिपि शास्त्र की दृष्टि से भी यह कुटिल लिपि में अंकित है तथा प्रतिहार शासक बाउक की वि.सं. 894 (837 ई.) में अंकित प्रतीत होती है। संभवत: यह मंदिर प्रतिहार नरेश भोजदेव प्रथम (836-892 ई.) के समय में बना। दौलतपुरा के वि.सं. 900 (843 ई.) के ताम्रपत्र में भगवती का अंकन-उनके भगवती भक्त होने का प्रमाण है।

डीडवाना परिसर का दूसरा प्रतिहारकालीन केन्द्र छोटी खाटू था जहां की अलंकृत बावड़ी व मठ में जड़ी मूर्तियां व अभिलेखयुक्त स्मारक स्तम्भ उस गौरवपूर्ण अतीत के जीवन परिचायक है। जून 1968में अत्यधिक वर्षा के कारण यह बावड़ी प्रकाश[16] में आयी। प्रतिहारकालीन बावड़ियों में राजस्थान की यह सर्वाधिक कलात्मक बावड़ी है जो अंग्रेजी एल आकार की है।[17] प्रवेश पर सीढ़ी से उतरते ही एक विशालकाय बावड़ी के बाएं ओर गवाख में ऊपर जटाजूट धारी शिव-मस्तक अंकित है और फिर थोड़े अंतराल पर एक आयाताकार शिला-फलक पर 9 पंक्तियों का कुटिल लिपि में अभिलेख भी उत्कीर्ण है जो पर्याप्त स्पष्ट हो चुका है। इसकी लिपि 9वीं शताब्दी की है और इसमें मरु-भूमि में बावड़ी निर्माण का उल्लेख मिलता है। इस परिसर का यह बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलेख है जिसमें अंधकारयुगीन इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ सकता था। जिस ताक में यह अभिलेख विद्यमान है उसके दोनों ओर घट पल्लव युक्त सुन्दर अर्द्ध-स्तम्भ बने हैं। नीचे उतरने पर यह वापी त्रिस्तरीय है जिसकी छतें आच्छादित हैं जिनमें कुछ ध्वस्त प्राय: हो रही है। दो स्तरों के मध्यवर्ती भाग में दोनों ओर घट पल्लव, अर्द्ध कमल युक्त विशालकाय स्तम्भों के बीच अलंकृत रथिकाएँ है जिन पर उत्कीर्ण मूर्तिकला प्रतिहार युग की कला की सुन्दर कृतियाँ हैं। स्तम्भों के निचले भाग पर द्वारपाल एवं कच्छपवाहिनी यमुना तथा मकरवाहिनी गंगा की भव्य मूर्तियां क्रमश: अंकित हैं। रथिकाओं (4 फीट 3 इंच X 2 फीट 7 इंच) की द्वार शाखा भी प्रतिहारकालीन कला के अनुरूप पत्रलता युक्त हैं तथा निचले भाग में कुम्भ धारण किये गंगा-यमुना वाहन सहित आमूर्तित हैं। रथिका का उत्तरंग लम्बाकार शिखराकृति मंदिरों से युक्त है (ओसियां के 10 वीं शताब्दी के बड़ सूर्य मंदिर के गर्भगृह के द्वार खंड का उत्तरांग भी इसी प्रकार अलंकरण से सुशोभित है) जिसके मध्यवर्ती भाग में एक ओर स्थानक पद्मपाणि शिव व दूसरी ओर शिवलिंग की पूजा करते मालाधर का दिग्दर्शन है। उत्तरंग के ऊपर उद्गम में बाएं ओर स्थानक चतुर्भुजी देवी और दाहिने ओर का यह उद्गम संभाग अब ध्वस्त होकर विलुप्त हो चुका है।[18]

छोटी खाटू की सबसे महत्वपूर्ण प्रतिमा षडानन स्कंद[19] की है जो निराली है। षडभुजी कार्तिकेय नर्तन मुद्रा में हैं और अपने वाहन मयूर को बड़े दुलार से कुछ खिला रहे हैं। देवता के प्रधान मुख के ऊपर शीर्ष

भाग पर पांच अन्य मुखों को पंक्तिबद्ध रुप में प्रदर्शित कर अज्ञातनामा कलाकार ने उनके षडानन नाम को सार्थकता प्रदान करने का कुशल प्रयास किया है। यद्यपि इस प्रकार का अंकन प्राचीन यौधेय सिक्कों तथा पंजाब-कुल्लू-कांगड़ा की मध्यकालीन मूर्तियों में लोकप्रिय था परन्तु राजस्थान से इस आशय की प्रतिमाएं अन्यत्र प्राप्त नहीं हुई हैं। प्रारंभिक 9वीं शताब्दी की छोटी खाटू की यह महत्वपूर्ण कार्तिकेय मूर्ति राजस्थानी शिल्प की अनुपम निधि है।

गुर्जरत्रा मण्डल प्राचीन मंदिरों से मंडित था। खिजरपुर का वैष्णव मंदिर तथा किंसरिया का माता जी मंदिर परबतसर क्षेत्र के महत्वपूर्ण मंदिर हैं। खिजरपुर की भाँति आनन्दपुर कालू[10] में भी प्राचीन प्रतिहारकालीन विष्णु मंदिर विद्यमान है। वे 8वीं शताब्दी की कलाकृतियां हैं। आनन्दपुर कालू से प्राप्त द्विभुजी आसनस्थ चंद्र की प्रतिमा उल्लेखनीय है। किंसरिया माता का मंदिर पर्याप्त जीर्णोद्धार तथा नवीनीकरण के कारण अपने मूल प्राचीन स्वरुप यद्यपि खो चुका है परन्तु वह निश्चयत: 10वीं शताब्दी में चौहान युग का महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय देवी मंदिर था। वेदीबंध तथा जंघा का अधिकांश भाग मूल स्वरुप में है परन्तु शिखर राजपूतकालीन है। इस मंदिर में लगे रविवार वैशाख सुदि अक्षय तृतीय के वि.सं. 1056 के अभिलेख से ज्ञात होता है कि दधीचक चच्च ने इस अम्बिका के मंदिर का निर्माण कराया जिसका शिखर कैलाश पर्वत की समता[11] करता था। वि.सं. 1768 शक संवत 1633 आषाढ़ शुक्ल 7 के एक अन्य अभिलेख में जोधपुर शासक महाराजा अजीतसिंह के राज्यकाल में इस देव भवन के विशाल स्तर पर जीर्णोद्धार की चर्चा है। अद्यावधि यह ऐतिहासिक साक्ष्य अप्रकाशित है। मंदिर के सभामंडप में विष्णु के दामोदर स्वरुप की परिचायक एक राजपूतकालीन सुन्दर प्रतिमा विद्यमान है जिसकी चरण चौकी पर महाराजा अजीतसिंह के राजत्व का वि.सं. 1782 का लेख भी उत्कीर्ण है।

डीडवाना की सुप्रसिद्ध नमक की झील (मारवाड़ बालिया) के निकट स्थित सरकी अथवा पाडा मंदिर-नागौर का महत्वपूर्ण परन्तु अल्प ज्ञात प्राचीन मंदिर है। मध्यकालीन यह मंदिर मूलत: शिव मंदिर था जैसा कि जंघा भाग की पश्चिमी पिछली प्रधान ताक में नटराज शिव की प्रतिमा से सुस्पष्ट है। इसी प्रकार उत्तर की प्रधान ताक में महिषमर्दिनी एवं दक्षिण की प्रधान ताक में नृत्य गणेश की मूर्ति विद्यमान है जो उसके शैव स्वरुप की परिचायक है। अद्यावधि अप्रकाशित शिखरबद्ध इस मंदिर की वाह्य कंठिका में धार्मिक संदर्भों एवं कथानकों को कलाकार ने आमूर्तिक किया है।

चौहान काल में यह समूचा क्षेत्र शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र था। केकिन्द (प्राचीन किष्किन्धा) का गुणेश्वर मंदिर, भुण्डाना का शिव मंदिर, भवाल का देवी (महाकाली) मंदिर-मध्यकाल 10 से 12वीं शताब्दी के मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला के अन्य भंडार हैं जो इस परिसर के गौरवपूर्ण सांस्कृतिक धरोहर के जीवन्त परिचायक हैं। धार्मिक सहिष्णुता एवं समभाव इनका प्रमुख लक्षण था यही कारण है कि किष्किन्धा में गुणेश्वर महादेव मंदिर के निकट धर्मावलम्बियों ने विधि चैत्य का मूल स्वरुप परिवर्तित हो चुका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, पाटन में सुरक्षित ताड़पत्रीय ग्रंथ, सिंघी जैन ग्रंथ माला, पृ. 62*
2. *प्रभावक चरित, निर्णय सागर संस्करण, श्लोक 4 पृ. 128*
3. *उद्योतनसूरि द्वारा जालौर में वि.सं. 835 शक संवत् 700 में रचित कुवलयमाला कहा।*
4. *शर्मा, डॉ. दशरथ, ऑरिजन ऑफ दि प्रतिहार : ए रिव्यू स्टडी, जर्नल इंडियन हिस्ट्री त्रिवेन्द्रम, वॉल्यूम -XLI, पार्ट -III, दिसम्बर 1963, पृ. 757-67*
5. *गुर्जरत्रा भूमौ डेडवानक विषय केल्हर्न, दौलतपुर कॉपर प्लेट इन्स्क्रिप्शन ऑफ वि.एस. 900, एपिग्राफिया इंडिका, वॉल्यूम-V, पृ. 208-13*
6. *अग्रवाल, आर.सी., भगवती ऑन कॉपर प्लेट सील ऑफ वि.एस. 900, जर्नल न्यूमिस्मेटिक सोशायटी ऑफ इंडिया, वाराणसी, वॉल्यूम-I, 1967, पृ. 46*
7. *मिश्र, विभूति भूषण, गुर्जर प्रतिहार एण्ड देयर टाइम्स, 1966, पृ. 2*
8. *देसाई, मोहनलाल दुलीचंद, जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, बम्बई, 1943, पृ. 180*
9. *सोमानी, रामबल्लभ, फलोदी पार्श्वनाथ मंदिर पर मोहम्मद गोरी का आक्रमण, ऐतिहासिक शोध संग्रह, पृ. 200-202*
10. *छोटी खाटू डीडवाना से 36 किलोमीटर की दूरी पर जोधपुर-दिल्ली रेल मार्ग पर अवस्थित है। गोठ मांगलोद छोटी खाटू से 42 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। ये सभी प्रतिहार साम्राज्य के प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र थे।*
11. *डीडवाना की उत्कृष्ट कलाकृति : योगनारायण, संयुक्त राजस्थान, जयपुर, सितम्बर 1955 तथा मरुभारती, पिलानी, भाग-2, अंक 3*
12. *अग्रवाल, रत्नचन्द्र, पश्चिमी राजस्थान के कुछ प्रारम्भिक स्मृति स्तम्भ, वरदा, बिसाऊ, भाग-6, अंक 2, अप्रैल 1963, पृ.68-79*
13. *(जसति) भुवन-कारणं स्वयं भुर्जयति पुरंदर-नंदनो मुरारिर्जयति गिरि सुता निरुहेदेहो।*
14. *श्रीवास्तव, विजयशंकर, द दधीमाता टेम्पल : नागौर प्रोसिडिंग राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, VIII, पालि सेशन, 1974, पृ. 25-27*
15. *शर्मा, डॉ. दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, बीकानेर, वाल्यूम-1, पृ. 87*
16.
17. *मंडोर (जोधपुर) रेलवे स्टेशन के निकट की प्रतिहारकालीन बावड़ी भी एल आकार की है जिसका निर्माण वि.सं. 742 में ब्राह्मण*

ISSN 2277-5587

चणक के पुत्र माधू ने कराया था।

18. अग्रवाल, आर.सी., प्रतिहार स्कल्पचर फ्रॉम छोटी खाटू, जर्नल ऑफ ओरियेन्ट इन्स्ट्टयूट, बडौदा, वॉल्यूम-XXIII 1973, पृ. 72-74
19. अग्रवाल, आर.सी., स्कन्दा इन अर्ली राजस्थानी स्कल्पचर, रिसर्चर, जयपुर, वॉल्यूम-XII-XIII,, 1972-73, पृ. 15
20. सिन्हा, सुरेश्वरनंद, प्रतिहार टेम्पल एट आनन्दपुर कालु, रिसर्चर, जयपुर, वॉल्यूम-XIV-XV,, 1984-85, पृ. 43
21. कैलास शैल शिखराकृति तेन सौध : त शुभं भवनं भवान्य श्लोक 21 तथा गृहमेतादिहाम्बिकाया: श्लोक 25 असोपा, रामकरण, एपिग्राफिया इंडिया, वॉल्यूम-12, पृ. 59

पूर्व-मध्यकालीन भारत में वैष्णव धर्म एवं समाज

प्रेम सिंह
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

मौर्य वंशीय सम्राट अशोक के शासन के बाद की शताब्दियों में बौद्ध धर्म तथा अन्य शास्त्र निन्दक धार्मिक सम्प्रदाय के प्रबल प्रहारों ने वैदिक रीतियों तथा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा, प्रभुत्व एवं सर्वप्रियता को गहरा आघात पहुंचाया था। उस काल का जनसमुदाय मूर्तिपूजक भक्तिवादी सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट होने लगा तथा उसका समर्थन करने लगा और बहुधा पशुबलि दिये जाने वाले वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड की लोकप्रियता में काफी कमी आ गयी। याज्ञिक अनुष्ठान की मांग में कमी हो जाने के कारण ब्राह्मणों की स्थिति शोचनीय हो गयी थी, जिससे वे जीविका के कुछ अन्य साधनों का सहारा लेने के लिए बाध्य हो गये। इस विकट असमंजस पूर्ण परिस्थितियों में उनकी दृष्टि बहुत से जनजातीय एवं अवैदिक देवताओं की उपासना की ओर गया। जब नवीन आर्थिक एवं राजनीतिक समीकरण स्थापित वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को गम्भीर रुप से चुनौती दे रहे थे उस समय इन देवताओं की पूजा को शास्त्र सम्मत बनाने का सर्वसम्मत पुरजोर प्रयास प्रारम्भ हुआ। ई.पू. 200 से 200 ई0 तक की अवधि में अनेक नवीन कलाओं और शिल्पों का विकास हुआ, साथ ही व्यापार और उद्योग में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई।[1] जिसके फलस्वरुप निम्न वर्णों विशेष रुप से इन व्यवसायों में लगे शूद्रों के स्तर में अनिवार्य रुप से सुधार हुआ।[2] बड़ी संख्या में विदेशी जातियों के आगमन ने ब्राह्मण धर्मी सामाजिक व्यवस्था के बन्धनों को और ढीला कर दिया। निम्न वर्णों के प्रति अति संकुचित दृष्टिकोण के कारण वैदिक धर्म नई शक्तियों का सामना करने के नितान्त अनुपयुक्त था और बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय होता जा रहा था। ब्राह्मणों ने मुख्यत: बौद्ध धर्म का प्रतिरोध करने तथा ब्राह्मण धर्मी सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के उद्देश्य से ही जनसाधारण में व्यापक रुप से प्रचलित लोकप्रिय देवताओं की उपासना पर अपना अधिकार जमा लिया और उनकी पूजा में अहिंसा के सिद्धान्त का, भक्ति की भावना का तथा पद और प्रतिष्ठा से व्युत्पन्न प्रभुता के प्रति आज्ञाकारिता के भाव का समावेश किया और इस प्रकार उसे विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों के अनुरुप नए सांचे में ढाला। उन्होंने स्त्रियों तथा निम्न वर्णों के प्रति उदार रुख अपनाया, पर साथ ही उन्होने वर्ण पर आधारित सामाजिक विभाजन को सुरक्षित बनाए रखने की चेष्टा की। वैष्णव धर्म का उद्भव लोकप्रिय देवताओं की उपासना के ब्राह्मणीकरण के प्रयास के क्रम में नारायण विष्णु के साथ इन देवताओं के एकीकरण से हुआ और इस प्रकार वैष्णव धर्म ने उच्च वर्गों के वर्णगत आचार नियमों का प्रसारित करने में तथा जनसाधारण को सामाजिक असन्तुलन से सामंजस्य बनाने में सहायता प्रदान की।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वासुदेव कृष्ण तथा संकर्षण की उपासना मूलत: अवैदिक और लौकिक मूल की थी। उनकी पूजा का ब्राह्मणीकरण शास्त्र सम्मत देवता नारायण विष्णु के साथ उनके एकीकरण के द्वारा हुआ[3] कहा गया है[4] कि महाभारत के नारायणीय खण्ड का मुख्य लक्ष्य वासुदेव और नारायण के बीच तादात्म्य स्थापित करना है। समर्थन में यह कहा जा सकता है कि इस खण्ड में नारद के द्वारा विष्णु की जो स्तुति गाई गई है, उसमें उनके 169 उपमान हैं, जिनमें से अधिकांश ब्राह्मणों[5] योगियों तथा यज्ञो से संबद्ध हैं।

 ISSN 2277-5587

इससे नारायण विष्णु वासुदेव की संहितिवादी उपासना के अन्तर्गत ब्राह्मणीय विचारधारा के प्रधान्य का पता चलता है। अवैदिक मूल के प्रमुख देवता नारायण बहुत प्राचीन काल में ही वैदिक धर्म के अन्तर्गत लाए जा चुके थे; क्योकि शतपथ ब्राह्मण उनका सम्बन्ध पुरुष सूक्त की एक ऋचा से जोड़ता है जो समाज के चतुर्वर्गीय विभाजन का उल्लेख करने वाला प्राचीनतम प्रमाण है। इससे स्पष्ट रुप से पता चलता है कि इस ग्रन्थ के रचना काल तक उनके उपासकों का कम से कम एक वर्ग वर्णव्यवस्था को स्वीकार कर चुका था। नारायण के उपासक दो प्रकार के थे; एक वे जो वर्ण नियमों की अवहेलना करते थे तथा प्रारम्भिक अनुष्ठानों से अभी भी जुड़े हुए थे और पंचरात्र के नाम से विख्यात थे; दूसरे वे जो ब्राह्मणीय समाज व्यवस्था तथा वेदों के प्रमाण स्वीकार कराते थे और भागवतों के नाम से प्रसिद्ध थे। पूजा की पंचरात्र विधि शायद निम्न वर्गो के बीच प्रचलित रही हो; किन्तु चूंकि स्रोत प्राय: समाज के केवल उच्च वर्गो के ही दृष्टिकोण को प्रकट करते है, इसलिए जनसाधारण के बीच इसकी लोकप्रियता की मात्रा का अनुमान करना कठिन है। संभवत: भागवत धर्म की प्रगति और लोकप्रियता के कारण पंचरात्र धर्म का प्रभाव बहुत क्षीण होता गया और चूंकि गुप्तकाल में इस सम्प्रदाय का भी ब्राह्मणीकरण प्रारम्भ हो ही चुका था ।अत: यह अंतत: वैष्णव धर्म में ही अंतर्लीन हो गया प्रतीत होता है।

प्रत्यक्षत: वैष्णव धर्म ने उन विदेशियों तथा आदिवासी जातियों के आर्यीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिनका परवर्ती मुसलमानों की तरह न तो अपना कोई प्रबल धर्म या सम्प्रदाय था और न सुविकसित संस्कृति ही थी। मनुस्मृति में कहा गया है[6] कि पवित्र धार्मिक संस्कारों तथा ब्राह्मणों की अवहेलना करने के कारण ही पौंड्रक, चोल, द्रविड़, कंबोज, यवन (ग्रीक), शक (सिथियन), पारद, पह्लव (पार्थियन) चीनी, किरात तथा दरद जातियां शनै: शनै: शूद्रों की श्रेणी में गिर गए है और भागवत पुराण में कहा गया है "कि किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस तथा इसी प्रकार की अन्य दुराचारी जनजातियां विष्णु पूजन से पवित्र हो जाती हैं।[7] इस प्रकार वैष्णव धर्म ने इन जनजातियों को ब्राह्मणधर्मी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाविष्ट एवं समायोजित करने के लिए एक प्रबल साधन प्रदान किया। गीता वर्णानुशासन की पृष्ठभूमि में ही भक्ति का उपदेश देती है। ई. सन् की दूसरी शताब्दी में मिश्रित जाति एवं आदिवासी मूल के सातवाहन वंशी नरेश गौतमीपुत्र को ब्राह्मणों का अनन्य पक्षपोषक[8] तथा वर्ण व्यवस्था का समर्थक घोषित किया गया है।[9]

कुषाण नरेशों ने जिन्होने देवपुत्र[10] की उपाधि धारण कर अपना देवत्व सिद्ध करने का प्रयास किया था, अपने मृत पूर्वजों की प्रतिमाओं से अंतर्विष्ट 'देवकुल'[11] कहे जाने वाले देवायतनों की स्थापना की थी। इन देवकुलों की मरम्मत को पुण्य कार्य माना जाता था। इन देवकुलों की स्थापना संभवत: वृष्णि देवताओं से अधिष्ठित मंदिरों के नमूने पर की गई थी, जिनकी पूजा विदेशियों में काफी प्रचलित प्रतीत होती है। 'देवकुल' शब्द, जिसका अर्थ मंदिर या देवगृह होता है, देवता के कुल या परिवार का भी वाचक हो सकता है और यह संभव है कि प्रारंभ में इसका प्रयोग उन्ही देवायतनों के लिए हुआ हो, जिनमें एक परिवार के ही कई देवताओं की प्रतिमाएं अधिष्ठित रही हो, जैसे कि वृष्णिवीरों के मंदिर में होती थी। कुषाण राजाओ ने इस नीति को अपने पूर्वजों के निमित्त समर्पित देवायतनों में अपनाया। भास के 'प्रतिमा नाटक' में भरत अपने चार मृत पूर्वजों की प्रतिमा वाले देवकुल को देवताओं, प्रत्यक्षत: चार वृष्णि देवताओं, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का देवायतन समझने की भूल कर बैठते हैं। इससे जाना जा सकता है कि राजपरिवारों के पैत्रिक देवकुल वृष्णि देवकुलों के साधर्म्य पर ही निर्मित किए गये थे, जिनके विषय में ऐतिहासिक दृष्टांत केवल कुषाणों के ही उपलब्ध हैं।

महाभारत तथा पुराणों में राजत्व के देवत्व की बात प्राय: जोर देकर कही गई है और इसके साथ विष्णु को संबद्ध किया गया है। भगवद्गीता का कथन है कि राजा को मनुष्यों के बीच देवता की अभिव्यक्ति के रुप में समझा जाना चाहिए।[12] राजसत्ता की दैवी उत्पत्ति की घोषणा उत्तर वैदिक साहित्य[13] के कुछ अवतरणों तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में भी की गई है, जो निश्चित रुप से गुप्तयुग से पहले के है किन्तु ये ग्रन्थ राजसत्ता को सामान्यत: प्रजापति, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा कुछ अन्य देवताओं के साथ सम्बन्धित करते हैं।[14] विष्णु के साथ निश्चित सम्बन्ध केवल महाभारत और पुराणों में स्थापित किया गया है जिनका अन्तिम संस्करण गुप्तयुग में हुआ। पुराणों में राजाओं की चर्चा प्राय: विष्णु के अंशावतारों के रुप में की गई है। इस बात का उल्लेख बार-बार किया गया है कि सभी युगों में चक्रवर्ती सम्राट अपने अंदर विष्णु का अंश लिए पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं।[15] विष्णु पुराण इससे एक कदम और आगे जाता है क्योंकि वहां ऐसी भाषा में, जो बौद्धो के बोधसत्व सिद्धान्त की याद दिलाती है, कहा गया है कि प्राणियों के सभी वर्गो के सभी राजा जो जन्म ले चुके हैं या लेगें विष्णु के अंशावतार है विष्णु को छोड़कर अन्य कोई भी पृथ्वी की रक्षा करने मे समर्थ नहीं है।[16] परमश्रेष्ठ सम्राट के हाथ पर विष्णु के चक्र का चिन्ह होता है। इसी प्रकार की भावनाएं चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में लिखे गये ग्रन्थ विष्णु धर्मोत्तर पुराण में व्यक्त की गई हैं। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि राजा विष्णु से युक्त होकर तथा अपने शरीर में देवत्व का सत्व धारण करके जनता की रक्षा के लिये मानव के रूप में जन्म लेता है।[17] अवतारवाद के सिद्धान्त ने भी राजाओं के दैवीकरण की दिशा में योगदान दिया और विष्णु के दो सुप्रसिद्ध अवतार, राम दाशरथी और कृष्ण क्षत्रिय शासक थे। इस सिद्धान्त को कुछ पौराणिक राजाओं; यथा, पुरंजय,[18] भीमरथ,[19] पंचजय,[20] तथा मांधाता[21] के संदर्भ में बार-बार प्रयुक्त किया गया है, जिन्हे विष्णु के तेज और रुप से युक्त बतलाया गया है। इस प्रकार के कथनों का स्पष्ट उद्देश्य राजा को महान देवता के रुप में मान्यता देने वाली धारणा का प्रचार करना था।

गुप्तकालीन वैष्णव तथा शैव मत दोनों ही भक्ति, ब्राह्मणों के प्राधिकार एवं वर्णव्यवस्था पर आधारित थे। इस कारण, यद्यपि वैष्णव एवं शैव मतावलंबी 'परम भागवत' तथा 'परम माहेश्वर' जैसी उपाधियां धारण कर अपने अभीष्ट देवता के प्रति अपना सर्वोच्च सम्मान सूचित करते थे, तथापि वे प्राय: ब्राह्मण धर्म के देव समुदाय के अन्य देवताओं को भी आदर देते थे। परम भागवत नरेश कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त ने शैव, रुचि के नाम धारण किए थे तथा कुमार गुप्त के कुछ सिक्को की पीठ पर राजा के नाम की ओर संकेत करने के लिए गरूड़ का स्थान कार्तिकेय के वाहन मयूर ने ले लिया था। 491 ई. के एक अभिलेख में महाराज गौरी के द्वारा हर (शिव) की अर्धांगिनी 'देवी' के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है, उसका ही एक और अभिलेख जिसमें तालाब बनाने की सूचना दी गई है विष्णु की वंदना से प्रारंभ होता है। मौखरी नरेश अनंतवर्मन ने ई0 सन् की छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कृष्ण शिव एवं दुर्गा की प्रतिमाएं स्थापित कराई तो उनकी इस धार्मिक निष्ठा में कोई असंगति नहीं थी। उसके कुछ ही बाद गंग नरेश हस्तिवर्मन रणभीत ने, जो परम माहेश्वर तथा शिव का ही एक रुप माने जाने वाले भगवान गोकर्ण स्वामिन का भक्त कहा गया है, अपनी उपाधि के अनुरुप नारायण की 'रणभीतोदय' नामक प्रतिमा स्थापित कराई थी। विष्णु, शिव एवं अन्यान्य देवताओं के ऐसे उपासक, जो विभिन्न देवताओं को अपनी श्रद्धा अर्पित करते थे तथा स्मृतियों सामाजिक आचार-विचार के नियमों का पालन करते थे, 'स्मार्त' कहे गए हैं। गुप्त युग में शासक वर्ग के वैष्णव धर्म का यह रुप नि:सन्देह सर्वाधिक लोकप्रिय रहा प्रतीत होता है और इसीलिए वैष्णव पुरोहितों का पूर्ण हार्दिक समर्थन उनके आश्रयदाताओं को प्राप्त था।

महाकाव्यों के परवर्ती अंशों एवं पुराणों में नारायण विष्णु की उपासना वर्णव्यवस्था के साथ पूर्णत: युक्त है। रामायण के उत्तरकाण्ड के एक अवतरण[23] में राम, जो स्वयं विष्णु के अवतार कहे गए हैं कठोर तपस्या में तल्लीन एक शूद्र तपस्वी का सिर काट देते हैं, क्योंकि तपस्या केवल ब्राह्मण ही कर सकता है। वर्ण नियमों के इस उल्लंघन के कारण किसी ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गई थी, अत: राम तुरंत कार्यवाही करते हैं और इस प्रकार ब्राह्मण तरुण को पुनर्जीवित करते हैं। उनके इस कार्य की देवताओं तथा ऋषियों के द्वारा बड़ी प्रशंसा की जाती है।

विष्णुपुराण में यम विष्णु के उपासक के लक्षण गिनाते हुए कहते हैं कि वह व्यक्ति ही वैष्णव समझा जाना चाहिए, जो अपने वर्ण धर्म के पक्ष से कभी विचलित नहीं होता।[24] विष्णु को प्रसन्न करने के लिए वर्णनियमों के अनुसार आचरण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। यही भाव विष्णु धर्मोत्तर[25] में भी दोहराया गया है। गुप्तकाल का एक अन्य ग्रन्थ जयाख्य संहिता, वर्ण नियमों के पालन के आधार पर वर्गीकरण कर वैष्णव भक्तों के चार भेदों का उल्लेख करता है। विष्णु की संहति मूलक उपासना ने वर्णव्यवस्था का समर्थन किस सीमा तक किया था, वह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि असीरगढ़ ताम्रमुहर अभिलेख इशान वर्मन मौखरि के प्रपितामह हरिवर्मन की तुलना, वर्णाश्रम व्यवस्था के संस्थापक के लिए अपनी राजसत्ता का प्रयोग करने में, चक्रधारी विष्णु के साथ करता है। गुप्तयुग के अनेक नरेश अपने आपको ब्राह्मणधर्मी सामाजिक अनुशासन का संरक्षक घोषित करते है। परम भागवत नरेश महाराज संक्षोभ के अभिलेखों में उनका वर्णन ऐसे व्यक्ति के रुप में है, जो वर्णाश्रम के संस्थापन के लिए कृत संकल्प है। परवर्ती अभिलेखों में यह विवरण सामान्य बन गया प्रतीत होता है, किन्तु यह तथ्य कि वर्ण नियमों का विवेचन करने वाले पौराणिक अध्याय अधिकांशत: ई. सन् की तीसरी से पांचवी शताब्दी के बीच लिखे गये थे, स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि यह आंदोलन जिसे शासक वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था अपनी जड़े तत्कालीन सामाजिक अवस्था में जमाए हुए था। इस संदर्भ में यशोधर्मन के 532 ई. वाले मंदसौर अभिलेख के प्रमाण पर ध्यान दे सकते हैं। इसमें एक 'राजस्थानीय' अभयदत्त का उल्लेख एक ऐसे व्यक्ति के रुप में है, जिसने देवताओं के पुरोहितों, के समान अपने शासकीय अधिकारों के द्वारा वर्णो अर्थात चारों' मान्य वर्णो के हितार्थ[26] राज्य की रक्षा की। उसके पद का उत्तराधिकारी उसका भतीजा धर्म दोष भी जातियों के अंतर्मिश्रण को रोकने वाले के रुप में वर्णित है।

यज्ञों के प्राचीन वैदिक कर्मकाण्ड के विपरीत वैष्णव धर्म ने न केवल पुरोहितों एवं शासक वर्गो के हितों की रक्षा की अपितु निम्न वर्णो को उनके लिए निर्धारित अनुष्ठान पद्धति से विष्णु की पूजा करने का अधिकार प्रदान कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी की। इसने किसी भी धार्मिक निष्ठा या अंधविश्वास को हानि नहीं पहुँचाई, अपितु उन्हें आत्मसात ही किया तथा किसी प्रकार का प्रतिशोध उत्पन्न किए बिना उन्हें ब्राह्मण धर्म के सांचे में ढाला। इस प्रकार यह अनेकानेक जनजातीय एवं स्थानीय देवताओं की उपासना का सफलतापूर्वक ब्राह्मणीकरण कर सका तथा सभी वर्गो एवं वर्णो के बीच लोकप्रिय हो सका। 400 से 600 ई. तक के अनेक सामंत एवं राजा वैष्णव धर्मावलंबी थे। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में अनगिनत अज्ञात ब्राह्मणों द्वारा रचित वैष्णव साहित्य की विशाल राशि के अतिरिक्त जो उनके वैष्णव धर्मावलंबी होने के साक्ष्य के अवशेष के रुप में वर्तमान हैं, कुछ ऐसे अभिलेख भी उपलब्ध है, जो विष्णु के ब्राह्मण उपासकों के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। संप्रति पेशावर संग्रहालय में सुरक्षित ई. सन् की दूसरी शताब्दी का एक अभिलेख किसी ब्राह्मण वासुदेव का उल्लेख करता है जिसका नाम भागवत धर्म के प्रभाव का सूचक है। गौतम गोत्र के परम सम्मानित सात्वत आचार्य यशस्त्रात, उनके पुत्र विष्णुत्रात तथा प्रपौत्र सोमत्रात जो सभी विष्णु के धर्मनिष्ठ उपासक थे। 484 ई. एक अभिलेख में मैत्रायणीय शाखा के एक ब्राह्मण सामंत राजा मातृ विष्णु का उल्लेख है, जिसने भगवान जनार्दन (विष्णु) को एक ध्वज दंड समर्पित किया

था। उसके परिवार के अन्य सदस्यों के नाम इंद्र विष्णु, वरुण, विष्णु तथा धन्य विष्णु भी वैष्णव प्रभाव प्रदर्शित करते हैं।

वैष्णव धर्म की अभूतपूर्व लोकप्रियता का कारण इस तथ्य में निहित है कि यह धर्म काल की आवश्यकताओं को बहुत अच्छी तरह समझ सका था। भक्ति के सिद्धान्त का उपदेश देने में वैष्णव धर्म का तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण के साथ सामंजस्य था, जिस समय सामंत लोग अपने आपको पादोपजीविन अर्थात अपने स्वामियों के चरणों पर निर्भर समझते थे। यह सभी श्रेणी के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। राजा लोग विष्णु का अवतार होने का ढोंग रचकर अपने अधिकार (या शक्ति) को सुदृढ़ कर सकते थे; धनी लोग मंदिरो एवं प्रतिमाओं का निर्माण कराकर पुण्य अर्जित कर सकते थे; तथा निर्धन लोग सहज भक्ति एवं ब्राह्मण धर्मी समाज के द्वारा उन पर लादे गए सामाजिक दायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन कर अगले जन्म में अपनी स्थिति के सुधार की आशा कर सकते थे। यह मत सभी प्रकार के धार्मिक विश्वासों तथा अंधविश्वासों का समर्थन करता था तथा तर्क एवं बुद्धि की जगह आस्था (निष्ठा) को बढ़ावा देता था। इस प्रकार, इसने जनसमुदाय को अपनी नियति या स्थिति से समझौता करने के लिए एक शक्तिशाली माध्यम का काम किया तथा गाँव की आत्मनिर्भर कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था पर आधारित सामाजिक वर्गो को स्थायित्व प्रदान करने में सहायता पहुँचाई।

जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में एक महान आन्दोलन का आरम्भ किया जो, प्राय: गांधी तक चलता आया है और आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर नहीं, कर्म पर अवलम्बित है। इसलिए, ब्राह्मण भी पतित हो सकता है और शूद्र भी अपने को पूजा योग्य बना सकता है। इसी प्रकार वेदों ने यज्ञ का अधिकार केवल द्विजों को दिया था और जब उपनिषद बढ़े तब ब्राह्मणों ने उन्हें भी ब्रह्म-विद्या का नाम देकर शूद्रों और स्त्रियों की पहुँच से बाहर कर दिया। इसके विपरीत बुद्धदेव ने चारों वर्णों और स्त्रियों को धर्म का अधिकार समान रुप से दे दिया। यह ब्राह्मण धर्म के खिलाफ सबसे बड़ी बगावत थी और बौद्धों का ब्राह्मणों ने जो भी विरोध किया, वह मुख्यत: उनके इसी विद्रोह के कारण। बौद्ध धर्म की एक बड़ी विशेषता यह रही कि उसने जाति प्रथा के खिलाफ अपने हथियार कभी नहीं डाले। महायान के आरम्भ के समय से बौद्ध धर्म को, दिन-दिन बदल कर, हिन्दू धर्म के समीप आते देखते हैं, लेकिन सिद्धान्तत: जाति-प्रथा का उसने कभी भी अनुकरण नहीं किया। यही कारण है कि महायान बिगड़ कर जब मन्त्रयान और वज्रयान बनने लगा, तब भी जातिवाद के खिलाफ उसकी कार्यवाही जारी ही रही। बौद्ध धर्म ने जातिवाद का जो डटकर विरोध किया, उसी से मध्यकाल में जाकर निर्गुण मत का प्रचार करने वाले सन्तों को यह साहस हुआ कि वे भी जाति-प्रथा को नहीं माने।

आलवार-नायनार सन्त प्रेम के दीवाने थे। शिव या विष्णु के प्रति वे प्रेम की भावना से दौड़ रहे थे। इनके गान रहस्यवादी गान हैं। उनके भीतर अदृश्य सत्ता पर रीझने वाले मनुष्य की आकुलता भरी हुई है। कबीर और मीरा के रहस्यवादी पद फिर भी मुसलमान सूफियों के भावों से प्रभावित हैं, किन्तु आलवारों के पदों में खांटी भारतीय रहस्यवादिता की झांकी पाते हैं। उत्तर में फैले हुए वेद-विरोधी आन्दोलन के कारण हिन्दुत्व का शुद्ध रुप, खिसक कर दक्षिण चला गया था। यही कारण है कि जिन दिनों उत्तर भारत के बौद्ध सिद्ध धर्म के बाह्योपचारों की खिल्ली उड़ा रहे थे, उन्ही दिनों, दक्षिण के आलवार और नायनार सन्त शिव और विष्णु के प्रेम में पागल हो रहे थे। धर्म के बाह्योपचार छूँछे हैं एवं जाति का भेद निस्सार है, यह अनुभूति बौद्ध सिद्धों के समान आलवारों में भी थी, किन्तु इसके कारण भिन्न थे। बौद्ध सिद्ध धर्म के बाह्योपचारों का खण्डन इसलिए कह रहे थे कि बुद्ध से उन्हे इस खण्डन की परम्परा प्राप्त हुई थी। किन्तु आलवारों ने इन आचारों को गौण इसलिए माना कि वे भगवान के प्रेम में मस्त थे और भगवान की शरण में आए हुए भक्तों के बीच उन्हें कोई भेदभाव दिखायी नहीं देता था।

ज्ञान, कर्म और भक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए भी, रामानुज ने यह कहा कि भक्ति में भी सबसे सुगम मार्ग प्रपत्ति का है। इस मार्ग के लिए न तो ज्ञान की आवश्यकता है, न विद्याभ्यास और योग-साधना की। फिर भी, यह मार्ग सर्वसुगम और सबसे छोटा मार्ग है। जो मनुष्य सर्वतोभावेन भगवान की शरण में गिरता है, उसे भगवान तुरन्त अपना लेते हैं।

विष्णु स्वामी, निम्बार्क मध्व और रामानुज ने जिस साकारोपासना का प्रवर्त्तन किया उस पर भी डॉ. ताराचन्द्र को इस्लामी प्रभाव दिखायी देता है। वे कहते हैं कि विष्णु स्वामी, निम्बार्क और मध्व का चिन्तन नज्जाम, अशअरी और गजाली के चिन्तन के समान लगता है। ये यह भी कहते हैं कि इन आचार्यो ने जो मार्ग चलाया उसमें जाति प्रथा की कठोरता नही थीं, धर्म के बाह्योपचार अप्रमुख थे तथा एकेश्वरवाद, भक्ति भावना, प्रपत्ति और गुरु-भक्ति पर उसमें बहुत जोर था। जाति प्रथा की भावना इसलिए शिथिल हुई कि बौद्ध श्रमण इसके विरुद्ध, पन्द्रह सौ वर्षो से आन्दोलन करते आये थे। यह काम इस्लाम की प्रतीक्षा में रुका हुआ नहीं था।

मध्य काल देश के लिए एक भीषण संकट का काल था। नितांत भिन्न धारणा के लोगों के जुल्म जबर्दस्ती से यह देश आक्रांतित था। सर्वत्र आतंक तथा दैन्य छाया हुआ था। बुद्धिजीवी या विद्वान व्यक्तियों में स्वतंत्र विचार करने की शक्ति का ह्रास हुआ था और उनकी दृष्टि से मोक्ष ही साध्य था जिसके साधन थे यज्ञ कर्म, व्रत पालन पूजा अर्चा आदि। इसके कारण समाज में एक ऐसा बड़ा वर्ग था जो कर्मकाण्डियों के वश में आया था। छूआ-छूत तथा वर्ण वैषम्य का

काफी बोलबाला था। इस तरह सामाजिक तथा धार्मिक दास्यत्व में समाज जकड़ गया था। इस्लामी आक्रान्ताओं ने भारतीय जनमानस की भावनाओं पर आघात किया, उनके मन्दिरों एवं तीर्थ स्थलों का नष्ट किया गया, उनको धर्मान्तरण के लिए बाध्य किया गया। बहु-बेटियों, माताओं-बहनों से दुर्व्यवहार किया गया। ऐसी विषम परिस्थितियों में देश में सन्तों ने जो कार्य किया वह अद्वितीय है। भगवद्भक्ति का प्रचार करते समय उन्होंने कीर्तन, नामस्मरण के द्वारा समाज के सभी स्तरों को एकजुट करने का प्रयास किया। जाँत-पाँत से उत्पन्न होने वाली असमानता तथा सामाजिक असन्तुलन को उन्होंने दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने आध्यात्मिक समता पर जोर देकर भक्ति का प्रचार किया और उस धारा में समस्त प्रजा को अंत: प्लावित कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मुखर्जी, राधाकुमद, द एज आफ इंपीरियल यूनिटी (हिस्ट्री एंड कल्चर आफ द इंडियन पीपल- खंड 2, पृ. 599*
2. *शर्मा, शूद्राज इन एंशिएंट इंडिया, पृ. 218*
3. *इलियट, हिंदूइज्म एंड बुद्धिज्म, खण्ड-2, पृ. 200*
4. *भंडारकार, वैष्णविज्म, शैविज्म एंड माइनर रिलिजस सिस्टम, पृ. 200*
5. *हापर्किंस, द ग्रेट एपिक ऑफ इंडिया, पृ. 115*
6. *मनुस्मृति, 10.43-44*
7. *भागवतपुराण, 2.18*
8. *डी. आर. भंडारकार, एपिग्राफिका इंडिका, भाग-23, पृ. 32*
9. *एपिग्राफिका इंडिका, भाग-8, पृ. 60, नासिक गुफा अभिलेख,सं. 2, पं. 6-7*
10. *मित्र, वी.बी. दि गुर्जर-प्रतिहारराज एण्ड देयर टाइम्स, दिल्ली, 1966, पृ. 173*
11. *आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, एनुअल रिपोर्ट्स, 1911-12, पृ. 124*
12. *विष्णु धर्मोत्तरपुराण, 56, 26*
13. *घोषाल, 'ए हिस्टरी आफ इंडियन पोलिटिकल आइडियाज', पृ. 24 एवं आगे.*
14. *रामायण, 3. 19; 40.12; 76. 31 एवं आगे; मनु. 7, 3-4*
15. *वायुपुराण, 57. 72, ब्र. पु., 2. 29.78, कूर्मपुराण, 22.51*
16. *विष्णुपुराण, 1. 22 .16-21*
17. *विष्णु धर्मोत्तरपुराण, 2. 2. 9; 1. 172. 35*
18. *विष्णुपुराण, 4. 2 26*
19. *विष्णु धर्मोत्तरपुराण, 1 .74 18*
20. *हरिवंशपुराण, 1. 15.12*
21. *वायुपुराण, 188.69*
22. *एपिग्राफिका इंडिका, भाग-30, सं. 22, 2. पंक्ति 1-2*
23. *रामायण, 7, 73-76*
24. *विष्णुपुराण, 3, 7. 20*
25. *विष्णु धर्मोत्तरपुराण, 1, 58, 18*
26. *फ्लीट का अनुवाद, का. इंसक्रिप्शन ऑफ इंडिया भाग-3, पृ. 157*

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्योत्कर्ष के उपादान

डॉ. ऋतु दीक्षित
प्रवक्ता, नगरपालिका कन्या (पी.जी.) कॉलेज, कासगंज (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

कवि काव्य-सृष्टि का प्रजापति है। शुक्ल यजुर्वेद में 'कविर्मनीषी परिभूस्वयंभ'[1] कहा गया है। कवि अपने कल्पना वैभव से नयी रंगीन सृष्टि का उद्‌गम करता है।[2] सौन्दर्य-पिपासा मानव की चिरन्तन प्रवृत्ति है। जीवन की नश्वरता और अपूर्णता की अनुभूति सभी करते हैं। सभी जीवन का मर्म अवगत करने के लिए इच्छुक रहते हैं। इसी कारण साहित्य अनुभूति की प्राची पर उदय लेता है। मानव के भीतर चेतना का गूढ़ और प्रबल आवेग है। अनुभूति उसी आवेग की सच्ची सजीव और साकार लहर है। इसी अनुभूति के लिए व्यक्ति-धर्म, समाज और देश-काल का बन्धन अपेक्षित नहीं होता। कवि अपने विचार और सद्‌गत भावनाओं की अभिव्यक्ति काव्य या नाटक के माध्यम से ही करता है। प्रेम, विरह, रुप, माधुर्य एवं हर्ष-विषाद प्रभृति जीवन-मूल्य काव्य के परिवेश में ही अभिव्यञ्जि होते हैं।

तथ्य यह है कि मन ज्ञान-इन्द्रियों के माध्यम से जिन भावनाओं और संवेदनाओं का प्रभाव ग्रहण करता है, चित्त पर उनका कोई न कोई चित्र अथवा अवश्य अंकित हो जाता है। वातावरण, परिस्थिति, संस्कार आदि संस्कार, आदि की विविधता के कारण प्रत्येक व्यक्ति पर एक ही मनोभाव के कई प्रकार के संस्कार अथवा चित्र अंकित होते हैं। कवि या साहित्य सृष्टा चित्त पर पड़े इस संस्कारों को प्रेषणीय क्रिया द्वारा पाठकों के चित्त में प्रविष्ट करता है। प्रविष्ट करने की यह कुशलता ही काव्य शास्त्रीय मूल्य है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि कवि की कल्पना शब्दों के सहारे ऐसे बिम्बों का निर्माण करती है जिन्हें हम चक्षु-इन्द्रिय द्वारा देख नहीं पाते। मूर्ति विधायिनी कल्पना एक से एक बढ़ कर सुन्दर बिम्बों या प्रतिमाओं का सृजन करती है, जिससे सौन्दर्यानुभूतिजन्य आह्लाद की प्राप्ति होती है। कोई भी कलाकार अपनी कृति द्वारा जन-मानस में जितनी अधिक आह्लाद उत्पन्न करने की क्षमता रखता है, उस कृतिकार की कृति उतनी ही अधिक मूल्यवान् समझी जाती है।

संस्कृत के अलंकार-शास्त्रियों में काव्य के आधारभूत तत्वों के सम्बन्ध में मतभेद दृष्टिगोचर होता है। पर इष्ट अर्थ, अलंकार, गुण दोष-शून्यता, रसात्मक अनुभूति, भावात्मकता, कल्पना-वैभव आदि के अस्तित्व को प्राय: सभी अलंकार-शास्त्री समान रुप से उपादेय मानते हैं। काव्य के लक्ष्य के सम्बन्ध में शिक्षा, आनन्द और प्रसन्नता प्राप्ति का उल्लेख सर्वत्र पाया जाता है। वास्तव में किसी भी ग्रन्थ का काव्य-शास्त्रीय मूल्य जीवन-भोग, आनन्दानुभूति एवं जीवन-संस्कृति की उदात्त प्रेरणा प्राप्त कर आनन्द सरोवर में चित्त का समाहित हो जाना है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने साहित्य स्वरुप की विवेचना करते हुए लिखा है- 'साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थबोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्दानुभूति होती है।'[3] स्पष्ट है कि काव्य-शास्त्रीय मूल्यांकन सम्बन्धी मीमांसा के सन्दर्भ में गुण, रस, अलंकार, छन्द इत्यादि के अतिरिक्त जीवन मूल्यों की विवेचना भी आवश्यक है। नाट्याचार्य भरतमुनि[4] ने अपने नाट्य-शास्त्र में काव्य की परिभाषा एवं उसके गुण-तत्वों का विवेचन करते हुए श्रेष्ठ काव्य में निम्नलिखित गुणों का रहना आवश्क बताया है-

(1) कोमल और मनोरम पदावली,

(2) गूढ़ शब्द और अर्थ का अभाव,

(3) सर्वजन ग्राह्यता-प्रसाद गुण के कारण सामाजिकों द्वारा सहज अर्थ-प्रतीति

(4) युक्तियुक्तता-संवादों में तर्क, दृष्टान्त, निदर्शन एवं अभिप्राय विशेषों का समावेश

(5) नृत्य में उपयोग किये जाने की योग्यता-अभिनयक्षमता

(6) रसयुक्तता-अनुकरण प्रधान होने पर भी सामाजिकों में साधारणीकरण की प्रक्रिया द्वारा रसानुभूति की उत्पत्ति

(7) सन्धि-सन्धान युक्तता-कथावस्तु के गठन की सतर्कता

काव्य के उपर्युक्त सात विशेषणों में प्रथम और तृतीय विशेषणों द्वारा भरत मुनि ने प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों पर प्रकाश डाला है। द्वितीय विशेषण से दोष-युक्तता का बोध कराया है। चतुर्थ विशेषण में अलंकार का ग्रहण है। षष्ठ विशेषण में रस के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। पंचम और सप्तम विशेषणों द्वारा दृश्य काव्य के लिए उपयोगी विषयों का प्रतिपादन किया गया हैं। भरत मुनि के उपयुक्त कथन से किसी भी नाटक के काव्यत्व के विश्लेषणार्थ गुण, रस, अलंकार और छन्द को ग्रहण किया जाना उपयुक्त है।

भामह ने शब्द, छन्द, अभिधान, अर्थ, इतिहासाश्रित कथा, लोकयुक्ति कला, इन आठ काव्योपयोगी तत्वों को अष्टविध काव्य बैखरी के रुप में कहा है। जिस कृति में रस तत्वाष्टक की साधना समाहित रहती है, वह कृति काव्य-शास्त्र की दृष्टि से उपादेय मानी जाती है। इनकी मान्यता है- 'रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता'[6] अर्थात् सतकवित्व के बिना वाणी में वैदग्ध्य नहीं आ सकता और बिना वैदग्ध्य के कोई भी कृति चमत्कारपूर्ण नहीं हो सकती।

भरत मुनि ने काव्यत्व के लिए दस गुणों[7] को उपादेय माना है। पर भामह की तत्वग्राहिणी-प्रतिभा ने प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीन गुणों को ही स्वीकृति प्रदान की है।[8] इन्होने वकोक्ति को काव्य का निष्पादक तत्व बतला कर उसे काव्य के लिए अनिवार्य और व्यापक गुण बतलाया है।[9] यद्यपि वक्रोक्ति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कुन्तक द्वारा सम्पन्न हुई है, पर भामह ने भी उसका निर्देश किया है। भामह के मत से 'त्रिकालदर्शिनी प्रतिभा' जिसे प्राप्त है वह कवि अपने काव्य को सहज में चमत्कार पूर्ण सम्पन्न कर लेता है। उन्होने निर्दोषिता को भी काव्यत्व के लिए आवश्यक माना है। जिस प्रकार कुपुत्र कुल-निन्दा का कारण बनता है, उसी प्रकार सदोष काव्य-कृति निन्दा का कारण होती है।[10]

अतएव आचार्य भामह के अनुसार काव्यत्व के लिए गुण अलंकार, दोष युक्तता, वकोक्ति आदि का विचार करना आवश्यक है। आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में काव्य-वाणी के मार्ग के वैचित्र्य का स्वरुप शब्दात्मक काव्य-चमत्कार के वैचित्र्य अथवा उसके सौन्दर्यवर्द्धक तत्वों के वैचित्र्य के रुप में परखा है। कवि सहजा और उत्पाद्या इन दोनों प्रतिभाओं से युक्त हो कर काव्य को चमत्कारपूर्ण बनाता है। सहजा नैसर्गिक प्रतिभा से सम्पन्न कवि को प्राप्त होती है और श्रुतमय तथा भावनामय ज्ञान से सम्पन्न कवियों को उत्पाद्या की उपलब्धि होती है। तथ्य यह है कि किसी भी काव्य कृति में मौलिकता का निर्माण कवि की आहार्य प्रतिभा पर निर्भर है। यह प्रतिभा काव्य-शास्त्र श्रवण, काव्य शास्त्र तत्व-चिन्तन एवं काव्य-शास्त्र भावना के द्वारा सम्भाव्य है। शब्द और अर्थ के सौन्दर्य बोधक उपकरण आहार्य-प्रतिभा द्वारा सम्भव हैं। दण्डी ने काव्य-मूल्यांकन सिद्धान्त में वैदर्भी और गौडीय मार्गो का निरुपण किया है। श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ-व्यक्ति उदारता, ओज, कान्ति और समाधि, ये दस गुण वैदर्भी के प्राण हैं। गौडीय मार्ग में प्राय: इनका विपर्यय लक्षित होता है। दण्डी ने निर्भ्रान्त शब्दों में रीति में व्यक्तित्व की सत्ता स्वीकार की है। उन्होंने रीति और गुणों का सम्बन्ध स्थापित कर वैदर्भी काव्य को सत्काव्य माना है। इन्होंने शब्द और अर्थ के अलंकृत रुप को महत्व देते हुए भी रस को विशेष महत्व नहीं दिया है। रस के सम्बन्ध में इनका अभिव्यञ्जनावादी दृष्टिकोण प्रतीत नहीं होता। दण्डी ने भामह की अपेक्षा भाव को विशेष महत्व दिया है। भाव कवि के मानस-विकल्पों अथवा कल्पनाओं की एक सन्तान हैं जो प्रारम्भ से अन्त तक काव्य में अन्तर्व्याप्त रहती है।

रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में काव्यत्व के लिए अलंकार को आवश्यक माना है। लाटीया, पाञ्चाली, गौडीया और वैदर्भी इन चारों रीतियों का विवेचन कर वकोक्ति, अनुप्रास, श्लेष, यमक और चित्र इन पाँच अलंकारों की गणना की है। पश्चात् मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललित और भद्रा इन वृत्तियों का भी विवेचन किया है। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि आचार्य रुद्रट काव्य में चारुत्व का समावेश अलंकारों द्वारा ही निर्धारित करते हैं। रस योजना को उतना महत्व नहीं दिया, जितना अलंकार योजना को। निर्दोष वाक्यों का प्रयोग काव्य के लिए आवश्यक है। न्यून, अधिक, अवाचक, अक्रम, अपशब्द,दु:श्रवत्व आदि दोषों से रहित रचना में ही चारुत्व उत्पन्न हो सकता है। अत: रुद्रट के मतानुसार अलंकार-योजना और शेष का परित्याग काव्यकृति के लिए आवश्यक है।

वमन ने 'रीतिरात्माकाव्यस्य' कह कर रीति को प्रमुखता दी है। साथ ही रीति का गुण के साथ नित्य और अनिवार्य सम्बन्ध स्थापित कर इस आधार को अत्यन्त पुष्ट कर दिया है। ध्वनिकार ने लिखा है कि अलंकार और रीति काव्यालोचन में ऐसे प्रतिमान हैं, जो केवल काव्य के बहिरंग रुप का ही स्पर्श करते हैं। रस-सिद्धान्त ऐन्द्रिय आनन्द को सर्वस्व मानता हुआ भी बुद्धि और कल्पना के आनन्द के प्रति उदासीन है एक बात यह भी है। कि रस-सिद्धान्त प्रबन्धकाव्य का प्रतिमान तो ठीक है, पर स्फुट मुकतकों में विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी आदि का संघटन सम्यक् प्रकार से न हो सकने के कारण रस की स्थिति वहाँ घटित नहीं हो पाती। ध्वनिकार ने इन त्रुटियों का पर्यालोचन किया है और काव्यत्व के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रतिमान व्यञ्जना पर आश्रित ध्वनि को माना।[11] ध्वनि-सिद्धान्त की सम्यक् व्याख्या लोचनकार अभिनव गुप्त ने की है और इन्होने बताया है-

(1) वाच्य से अधिक रमणीय व्यंग्य का सद्भाव

(2) व्यञ्जक शब्दों का समावेश

(3) रस्य-भावों को उद्बुद्ध करने वाली उक्तियों का समावेश

(4) वाच्यार्थ के साथ व्यंग्यार्थ में भी रमणीयता का समावेश

(5) रस के आश्रयभूत माधर्यु, ओज और प्रसाद गुणों का समावेश

(6) दोषों का अभाव

(7) व्यंग्य रुप में रस और अलंकारों का नियोजन

कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व माना है। आचार्य मम्मट ने ध्वनि सिद्धान्त का पुनर्मूल्यांकन करते हुए शब्द-शक्तियों, रस एवं अलंकार के उचित प्रयोग को काव्यत्व कहा है। शब्द और अर्थ दोनों को दोषरहित माधुर्यादि गुणों से युक्त एवं सालंकार होना काव्य के लिए आवश्यक माना है। किन्तु रस की प्रतीति होने पर अलंकारहीन रचना भी काव्य कोटि में परिगणित की जा सकती है। रसानुभूति के तारतम्यता के आधार पर काव्य के भेद किये हैं। अत: मम्मट के अनुसार काव्यत्व के लिए वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ का प्राधान्य स्वीकार किया गया है।

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट की मान्यता का समर्थन करते हुए रुपक द्वारा काव्य पुरुष का विश्लेषण उपस्थित किया है और बताया है कि शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, रसादि आत्मा, माधुर्यादि गुण शौर्यादि की भाँति श्रुतिकटुत्वादि दोष काणत्वादि की तरह, वैदर्भी आदि रीतियाँ अंग रचना के समान और उपमादि अलंकार कटक, कुण्डलादि के तुल्य होते हैं।[12] काव्य में रस का रहना अनिवार्य है, इसके बिना काव्यत्व सम्भव नहीं है।[13] 'रस्यते इति रस:', इस योगार्थ द्वारा जो आस्वादित हो, वह रस है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार रस, रसाभास, भाव, भावाभास, प्रभृति रस के अन्तर्भूत हैं। अतएव रसात्मक वाक्य ही काव्य का रुप धारण कर सकता है। दोषयुक्त और अलंकार रहित होने पर भी रसवती उक्ति काव्य के क्षेत्र में परिगरिणत है।[14] इनके मतानुसार काव्यत्व के निर्धारणार्थ निम्नलिखित सिद्धान्त अपेक्षित है-

(1) सरस पद और वाक्यों का सन्निवेश

(2) भावमयता-भावजगत् का विश्लेषण

(3) शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का समन्वय

(4) रीति, गुण और औचित्य का समवाय

(5) रस की अनिवार्यता

(6) अलंकारों से संयोजित अप्रस्तुत विधान

(7) कल्पनामूलक सौन्दर्य की सृष्टिस्र

(8) नियोजित काव्यन्तत्वों में अंगारी भाव सम्बन्ध

(9) वर्णन चमत्कार का संयोजन

(10) कथा-सन्दर्भो के नियोजन के साथ प्रबन्ध काव्यों में सर्गादि का यथोचित विभाजन

(11) दृश्य-वर्णन योजना के साथ विषय वर्णनानुसार विविध छन्दों का प्रयोग

उपर्युक्त अलंकार-शास्त्रियों के मतों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि नाटकों में काव्यतत्व का विश्लेषण करने के लिए रस, भाव, अलंकार, छन्द कल्पनामूलक सौन्दर्य एवं औचित्य का विचार करना अपेक्षित है। दृश्य काव्य में रस की अनिवार्यता रहती है। रस के धर्मभूत माधुर्य, ओज आदि गुण भी रस के रुप विशेष हैं। माधुर्य में स्रदय की द्रुति अथवा द्रवीभावमयता सस्रदय सामाजिक के स्रदय का पिघल पड़ना है और यह तभी सम्भव है, जबकि सस्रदय का स्रदय विक्षेप से मुक्त हो कर रति आदि कोमल भावों के स्वरुप से अनुविद्ध हो जाय। इसका क्षेत्र संयोग श्रृगांर, करुण, विप्रलम्भ श्रृगांर और शान्त रस में अनुगत रहता है। असमास अथवा अल्प समास वाली रचना की माधुर्य-व्यञ्जकता स्पष्ट है। ओज में सस्रदय स्रदय की दीप्ति अथवा प्रज्वलित-प्रायता रहती है, जिससे चित्त विस्तृत अथवा उष्ण होता है। यह ओज वीर, वीभत्स और रौद्र रस में विद्यमान रहता है। प्रसाद में सस्रदय स्रदय की ऐसी निर्मलता पायी जाती है, जिससे व्यासंग-विक्षेप की निवृत्ति हो कर, चित्त पूर्णतया विमल हो जाता है। इस गुण का क्षेत्र सभी रसों में प्राप्त है। अतएव गुणों का विवेचन रस के अन्तर्गत ही है, यत: नाटक में रस ही साध्य होता है।

रस का अनुभव द्रष्टा (दर्शक) होने पर ही होता है, प्रकृति में लीन होने पर नहीं। 'द्रष्टा का अर्थ है तटस्थरुप से किसी वस्तु के रुप को देखनेवाला। यदि हमें तटस्थरुप से पदार्थो के देखने की क्षमता नहीं है, तो हम रस का अनुभव भी नहीं कर सकते। काव्य की अनुभूति का यही तत्व है। कला में भी यही नियम संगत होता है। यह अनुभूति न न्याय मत में ठीक उत्पन्न होती है, न सांख्य मत में। इसके लिए बहुत ही गम्भीर तथा व्यापक कारण हैं। वेदान्त मत के अनुसार रस की व्याख्या आचार्यो ने, विशेषत: पण्डितराज जगन्नाथ ने अवश्य की है, परन्तु वह ठीक जमती नहीं। वेदान्त के मौलिक सिद्धान्तों के साथ रस-प्रक्रिया के तथ्यों का मेल नहीं खाता। दोनों में कतिपय मौलिक अन्तर हैं।

वेदान्त के अनुसार आनन्द तीन प्रकार का होता है- (1) विषयानन्द, (2) ब्रह्मानन्द और (3) रसानन्द। ब्रह्म सच्चिदानन्द रुप है। वह स्वयं आनन्दरुप है। उसी आनन्दमय ब्रह्म से सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, जीते हैं और अन्त में लीन हो जाते हैं। आनन्द की उच्चतम कोटि ब्रह्मानन्द है जिसके अन्तर्गत जगत् के समस्त आनन्द सिमट कर एकत्र हो जाते हैं। उपर्युक्त तीनों आनन्दों में विषयानन्द हेय है तथा अन्य दोनों आनन्द उपादेय हैं। विषयानन्द की अपेक्षा रसानन्द अलौकिक। ब्रह्मानन्द और रसानन्द में आकाश -पाताल का अन्तर है। ब्रह्मानन्द वासना या कामना के नाश से उत्पन्न होता है। जगत् की दशा में 'वासना' होती है अशुद्ध , जो हमें विषय की ही ओर ले जाती है। उधर रसदशा में वासना की आवश्यकता बनी रहती है। स्थायी भाव रस के रुप में परिणत होता है और यह स्थायी भाव वासनारुप होता है। अत: वेदान्त की प्रक्रिया में रस की निष्पत्ति ठीक नहीं जमती। वेदान्त में काम का सर्वथा उन्मूलन अभीष्ट होता है। परन्तु रसशास्त्री में काम का शोधन आवश्कयक होता है। वासना में एक बड़ा दोष रहता है कि वह सकाम हुआ करती है। सकाम भाव को निष्काम भाव में परिणत करने पर ही रस का उन्मीलन होता है। इसका नाम है साहित्य में-भाव-शुद्धि: बौद्धदर्शन में 'परावृत्ति' तथा आधुनिक मनोविज्ञान में 'सब्लिमेशन' (उदात्तीकरण)। भावों की अशुद्धि का कारण होता है उनका व्यक्ति-विशेष से सम्बन्ध। 'मेरी

यह रति है'- यह सम्बन्ध स्थापित करते ही वह भाव हीन तथा अशुद्ध हो जाता है। व्यक्ति सम्बन्ध से हटाते ही वह विशुद्ध बन जाता है। अत: भाव-शोधन का कार्य अलोचना-शास्त्र 'साधारणीकरण' व्यापार के द्वारा करता है।

निष्कर्ष यह है कि 'ब्रह्म यह है कि 'ब्रह्मानन्द' वासना के क्षय पर आश्रित आनन्द है और 'रसानन्द' वासना की शुद्धि पर अवलम्बित आनन्द है। अत: वह पहिले से भिन्न है। इसीलिए रस 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहलाता है ब्रह्मानन्दरुप नहीं। इस पार्थक्य का यह मुख्य कारण है।

पण्डितराज जगन्नाथ और अभिनवगुप्त ने रस की बड़ी मीसांसा की है। अभिनवगुप्त का मत है कि वस्तुत: आनन्द ही रस है। रस एक है अनेक नहीं। रस, रस ही है। उसके लिए किसी पर्यायवाची शब्द की आवश्कता नहीं है। रस ब्रह्म के समान है। जिस प्रकार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और नानात्मक विकृतियाँ असत्य हैं, उसी प्रकार सत्य है। रस अंशी है। श्रृंगारादि रस उसके अंशमात्र हैं। अभिनवगुप्त ने मूलस्थानीय रस के लिए 'महारस' शब्द का प्रयोग किया है तथा अंशभूत रसों को केवल 'रस' कहा है। रस की एकरुपता की सिद्धि के लिए भारत ने निम्नाकित विख्यात वाक्य में एकवचन का ही प्रयोग किया है :-

"न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते।"

कवि कर्णपूर ने 'अलंकार-कौस्तुभ' में लिखा है कि आनन्दमय रस ही 'महारस' है। अन्य रस उस मूल महारस के केवल विकारमात्र हैं। इसलिए रस वस्तुत: एकरुप ही है। भारतीय साहित्याशास्त्र का सर्वस्वभूत सिद्धान्त है- एको रस:।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शुक्त यजुर्वेद 40।8*
2. *काव्य-प्रकाश, मोतीलाल बनारसी दास, 1966 ई0, 1।1*
3. *साहित्य विज्ञान, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, पृ0 31*
4. *मृदुललितपदाढयं गूढ़शब्दार्थहीनं,*
   बुधजनसुखयोग्यं बुद्धिमन्नत्त योज्यम्।-
   बहुरसकृतमार्ग सन्धिसन्धानयुक्त भवति
   जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।- नाट्यशास्त्र, 17।123
5. *शब्दश्छन्दोभिधानार्था इतिहासश्राया: कथा:।*
   लोकोयुक्ति: कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैर्ह्यमी।।
6. *वही, 1।4*
7. *श्लेष: प्रसाद: समता समाधि: मधुर्यमोज: पदसौकुर्मायम्।*
   अर्थास्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्व गुणा दशैते।।- नाट्यशास्त्र, 17।96
   - काव्यालंकार, आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा कृत भाष्य, वि. राष्ट्रभाषा परिषद्, सन् 1962, 1।9
8. *माधुर्यभिवाञ्छन्त: प्रसादश्च सुमेधस:।*
   समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुज्यते।।
   श्रव्यं नातिसमस्तार्थ काव्यं मधुरमिष्यते।
   आविद्धद्वंग ना बालप्रतीतार्थ प्रसादवत्।।
9. *वाचां वक्रार्थ शब्दोक्तिरलकृंड.राय कल्पते। काव्यालंकार, 5।66*
10. *सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।*
    विलक्ष्मणा हि काव्येन दु:सुतेनेव निन्द्यते।। वही, 1।11
11. *ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल संस्करण, 1।13*
12. *काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणा: शौर्यादिवत्, दोषा: काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत्, अलंकारा कटक कुण्डलादिवत् इति। - साहित्य दर्पण, सम्पादक डॉ.सत्यव्रत सिह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1975 ई., प्रथम परिच्छेद, पृ.11*
13. *रस एवात्मा साररुपतया जीवनाधायको यस्य। तेन विना तस्व काव्यत्वानंगीड.कारात्।'रस्यते इति रसा' इति व्युत्पत्तियोगाद्भावता द्दाभासादयोऽपि गृह्यन्ते। वही, पृ.23*
14. *काव्यत्मभूतस्य रसस्यानपकर्षत्वे तेषां दोषत्वमपि नांगीक्रियते।*
    साहित्य दर्पण, सम्पादक, डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1957, प्रथम परिच्छेद, प. 6।7

ISSN 2277-5587

कोस मीनारो का संरक्षण एवं महत्व

ओम प्रकाश बैरवा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

भारत मे गौरवपूर्ण विरासत आज भी अपनी भव्यता एवं उत्कृष्टता से विश्व को अलोकित कर रही है। यह श्रेष्ठ विरासत किसी एक विशिष्ट तत्व का नही अपितु अनेक तत्वो का सम्मिलित परिणाम है। एक ओर जहाँ प्रकृति ने इसके निर्माण मे अपनी अहम भूमिका का निर्वहन किया है तो दूसरी ओर यहाँ के निवासियों के कठिन परिश्रम, बुद्धि एवं कौशल एवं उनकी आध्यात्मिकता विचारधारा ने इसे समृद्ध बनाया है।

भारत की विरासत विविधरुपा है। प्राकृतिक विरासत के रुप हमारी पवित्र भूमि, जीवनदायी नदिया अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ या जीव जन्तु तो पुरातात्विक विरासत के रुप मे भव्य राजप्रसाद, किले, स्तूप, स्तम्भ, कोस मीनारे, लाट और मन्दिर है। सांस्कृतिक विरासत का भव्य रुप हमारे समृद्ध साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, संगित व नृत्य कला तथा मनभावन मेलों, पर्वो एवं तीर्थ स्थलो मे दिखलायी पडता है।

कोस मीनारे मुगलकालीन यात्रा मार्ग दिशा सूचक पुरातात्विक विरासत के रूप मे पहचानी जाती है जिनके संरक्षण का दायित्व भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग पर है जो इनके संरक्षण के लिये प्रयासरत है।

आज समग्र राष्ट्र मे पुरातत्व विभाग के माध्यम से शिक्षण व्यवस्था हेतू विशेषरुप से प्रयत्न किये जा रहे है किन्तु यह उसी स्थिति मे संभव है जब संग्रहित विरासत के संरक्षण एवं सुंरक्षा कि समुचित व्यवस्था हो। विभाग की सूची मे दृष्टिपात करने से विदित हो जाता है कि यह संग्रह कीट आक्रमणों अथवा असाधारण जलवायुगत परिवर्तनों द्वारा उत्पन्न विकृतजन्य कारको द्वारा ग्रस्त हो चुके है। प्रत्येक संरक्षण एवं सुरक्षाधिकारी यह जानता है कि लेशमात्र की उपेक्षा अथवा लापरवाही से उन्हे अपूरणीय एवं असंशोधनीय क्षति पहुँच सकती है। अत संरक्षण अधिकारी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। पुरातत्व विभाग का मूलभूत उददेश्य, दायित्व एवं कार्य इन संग्रहो की सुरक्षा एवं संरक्षण है। अत: संरक्षण एक सकल प्रक्रिया है जिसमे संग्रह के सम्पर्क मे आने वाला प्रत्येक व्यक्ति जवाबदेह है और इसे संरक्षित रखना प्रत्येक नागरिक उत्तरदायित्व है किन्तु सरकार और इस क्षेत्र के कार्यकर्ता का अधिक उत्तरदायित्व है।[1]

पुरातत्व विभाग की संरक्षण सूची मे सूचीबद्ध कि गई विरासत कला, विज्ञान एंव संस्कृति के जीवित प्रमाण है। ये शिक्षण एवं मनोरजंन के मात्र स्थल ही नही अपितु अमुल्य कलाकृतियों के वैज्ञानिक संरक्षण हेतु प्रयोगशाला भी है। इस बहुमुल्य संपदा को भावी पीढियो हेतु सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है।[2]

संरक्षण का अर्थ एवं परिभाषाए

संरक्षण कार्य एक रक्षात्मक विज्ञान है जिसके अन्तर्गत कलाकृतियो को निरापद सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है जिसमे वस्तुओ की शारीरिक दशा से संबधित प्रत्येक क्रिया सम्मिलित होती है। इसके द्वारा क्षतिग्रस्त सामग्रियों का पुनरुद्धार एवं उन्हे मौलिक अवस्था मे बनाये रखने मे सहायता मिलती है।

कलाकृतियों को हर संभव स्थिति मे चिरस्थाई बनाये रखने मे यह विज्ञान अत्यंत उपयोगी साबित हुआ है। संमुचित संरक्षण की प्रक्रिया के अध्ययन के अभाव मे पुरामहत्व सामग्री का अध्ययन करना दुष्कर कार्य हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण संस्थान द्वारा संरक्षण को निम्न प्रकार से परिभाषत किया गया है- "Any Action taken to determine the nature of properties of material used in any kind of cultural holding or in there housing handling or treatment any action taken to understand and control the cause of deterioration and any action taken to batter the condition such holding".[3]

डॉ. टी. आर. गैरोला ने संरक्षण को द्विअंगीय अवधारणा बताया है जिसमे परिरक्षण प्रक्रिया द्वारा कला वस्तु मे आये विकार का निवारण होता है तथा मौलिक संरचनात्मक प्रक्रिया मे कला वस्तु मे नई वस्तु या सामग्री जोडी जाती है। उनके अुसार- Conservation is a concpet which deal with two aspect- preservation and restoration any action taken in order to try to return the object As far as possible to orginal, physical and aesthetic state".

डॉ. टी. आर. गैरोला संरचनात्मक संरक्षण को परिभाषित करते हुऐ लिखा है। कि -& Restoration mean addition of one thing new given to conservational shape to artifacts some colours of composuition of atrtficts अर्थात जिस प्रक्रिया द्वारा पुरावशेष को पूर्व कुछ जोडकर दिया जा सके संरचनात्क संरक्षण कहलाता है।[4] इसी दृष्टि से स्थापत्य की प्रमुख विरासत कोस मीनारो के संरक्षण की आवश्यकता है।

कोस मीनारो का संरक्षण

भारतीय राजमार्गो पर स्थित,एवं मुगल शासको द्वारा निर्मित कोस मीनारो का संरक्षण एक कष्ट साध्य कार्य है। प्राचीन समय की यह विरासत आज उपेक्षा का शिकार है। क्योकि भारत विकास के की कहानी सड़क निर्माण एवं विकास के साथ शुरु होती है। भारत विकास की इसी कहानी ने कोस मीनारो को राष्ट्रीय राजमार्गो से दूर कर दिया जिस कारण भारतीय जनमानस की अज्ञानता के कारण कुछ मीनारो को गिरा दिया गया। है तथा जो बची है वे अपने विकास की कहानी को कहती है। एक समय यह मीनारे प्राचीन राजमार्ग हुआ करते थे जहा व्यापारी एवं राहगीर मीनार की उपस्थिति से इस बात का अंदाजा लगाता था कि पास मे कोई कुआँ या सराय होगी जहा पर उसकी प्यास बुझ जायेगी। सन 2004 मे भारतीय सर्वोच्च न्यायलय ने डॉ. सुभाष पराशर की जनहित याचिका मे फैसला देते हुए पुरातत्व विभाग की आलोचना की तथा यह आदेश दिया मुगलकाल की इन इमारतो का संरक्षण किया जाये अर्थात मोन्युमेंट एक्ट बनने के इतने दशक के बाद कोस मीनारो के संरक्षण पर ध्यान दिया गया।[5]

सर्वोच्च न्यायलय के आदेश के बाद पुरातत्व विभाग ने अपने कार्यो मे तेजी लाते हुए अपने अर्न्तगत आने वाले विभागो को आदेश दिया कोस मीनरो का संरक्षण कर विभाग को इसकी सूची दी जाये। अर्थात मोन्युमेन्ट एक्ट बनने के इतने दशक बाद कोस मीनारो के संरक्षण पर ध्यान दिया गया।

आदेश की अनुपालना मे दिल्ली, उतरप्रदेश ,बिहार, पंजाब, हरियाण, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि मे अक्टूबर माह मे एक सर्वे कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसके माध्यम से दिल्ली मे 35, उत्तरप्रदेश मे 30, पंजाब 91, हरियाण 47, मध्यप्रदेश 6, राजस्थान मे 8, कोस मीनारो का संरक्षण कर उन्हे सूचीबद्ध किया गया तथा उनका यह प्रयास अभी भी जारी है।

कोस मीनारो के विभाग द्वारा किये जा रहे कार्यो के अलवा भी कुछ कानूनी धाराऐ कोस मीनारो के कवच का कार्य करती क्योकि इनके अभाव मे किसी भी प्राचीन संग्रह को क्षति से नही बचाया जा सकता हैं।[6]

पुरासंपदा कानून प्रक्रिया ब्रिटिशकाल से ही मानी जाती है, क्योंकि जहाँ ब्रिटिशकाल ने भारतीयो को एकता के सही अर्थ समझाया वही उन्होने भारतीय पुंरासंपदा का संरक्षण कर उनके लिए कानून बनाये ताकि इस संपदा को सुरक्षित किया जा सके।

इण्डियन ट्रेजर ट्रोवर एक्ट 1874

कनिघम ने अपने खोजी स्वभाव के कारण यह महसूस किया कि भारत के पास अतल्य पुरासंपदा है जिनका संरक्षण करना आवश्यक हैं। अत; उन्होने इस कानून का निर्माण कर पुरासंपदा का संरक्षण किया। इस कानून के अनुसार किसी भी व्यक्ति को प्राचीन सामग्री प्राप्त होती है। जिसका मुल्य 10 रु. या उससें ज्यादा है तो वह इसकी सूचना जिला कलक्टर या भारतीय पुरातत्व विभाग को देगा ऐसा नही करने पर उसे 50 रु का जुर्माना या तीन महिने की कैद हो सकती है या दोनो। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस कानून मे बदलाव करते हुऐ जुर्माने की राशि को बढा दिया गया हैं।

प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम 1904

1904 एनिशिएण्ट मोन्यूमेण्ट प्रिजर्वेशन एक्ट पास हुआ। इसका उद्देश्य था कि पुरासामारको का परिरक्षण करना, सरकार का अधिकार पुरासमग्रीयो पर स्थापित करना, निर्धारित स्थान पर पुरातात्विक उत्खनन करना तथा निर्धारित क्षेत्र मे स्थापित पुरासमग्री का अधिग्रहण करना जो पुरातात्विक, कलात्मक और ऐतिहसिक महत्व का हो। इनकी सुरक्षा का भार केन्द्रीय सरकार को सौपा गया है। जो स्मारक या स्थल इसके लिए अधिकृत किये गये है। जिन्हे संरक्षीत घोषित किया गया है। इस अधिनियम मे स्मारक,टीला,गुहा, स्तम्भ मीनार आदि कलात्मक पुरासामग्री को सुरक्षा प्रदान करने का दायित्व केन्द्र को दिया गया है। कोई दूसरा व्यक्ति जो उक्त पुरासमग्री का स्वामी नही है, यदि वह कानून तोडने

का प्रयास करता है तो उसे तीन महिने का कारावास या 5000रु का आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है।

कोस मीनारो के संरक्षण का विशेष महत्व है। इसी कानून को आधार बना कर सन 2004 मे सर्वोच्च न्यायालय भारतीय पुरातत्व विभाग को कोस मीनारो का सर्वेक्षण का आदेश देकर उन्हे विभागीय सूची मे दर्ज करवया था। एनिशियेंट मान्यूमेन्ट एण्ड आर्कियोलॉजिकल साईट एण्ड रिमेन एक्ट(1958)।

1904 स्मारक संरक्षण अधिनियम के दोषो को दुर करने के लिए भारत सरकार ने एनिशियेंट मोन्यूमेन्ट एण्ड आक्रियोलॉजिकल साईट एण्ड रिमेन एक्ट 1958 पास किया इससे पुरासामग्री की व्याख्या करने मे विभ्रग को आसानी हुई एवं इस कानून की धाराओ मे कुछ संशोधन किया गया है।

इस कानून के तहत स्तम्भो, मीनारो की व्याख्या मे कहा गया - कोई भी जो हटाई जा सकती है जिसे सरकार ऐतिहासिक या पुरामहत्व के कारण सुरक्षित रखना,किसी हानि से, चोरी से जिससे स्मारको का महत्व के कारण संरक्षण किया जाना आवश्यक हो उसके संरक्षण की सूचना देकर सरकार संरक्षित करेगी। सरकार ने यह भी अधिकार दिया कि जो पुरासामग्री अंशत: या पूर्णत धार्मिक प्रयोग मे नही आती उनको धन देकर विभाग द्वारा खरीदा जा सकता है। जो धार्मिक स्मारक है उनके परिरक्षण के लिऐ सरकार उनके स्वामी से स्वीकृति प्राप्त कर सकती है जो पुरावशेष वास्तु से टूटकर अलग हो गया है तथा जिनका संरक्षण करना संभव नही होने पर भी उसे दूसरे स्थान ले जाने से रोकना सरकार का दायित्व होगा एवं उनकी खरीद का विभाग को आवश्यक अधिकार होगा।[7]

एंटीक्युटी एण्ड आर्ट ट्रेजर एक्ट (1972)

यह एक्ट भारतीय पुरासमग्री को विदेशो मे निर्यात होने से बचाने के लिऐ बनाया गया है इसके द्वारा व्यक्तिगत संस्थाओ को राजकीय नियंत्रण मे रखा गया है जो लाइसेंस प्रणाली को लागू करता है जिसके अनुसार जो संस्था पुरातात्यिक संस्था इस क्षेत्र मे कार्य करती है वह किसी भी प्राचीन सामग्री को बिना सरकार अनुमति के बिना विदेश मे निर्यात नही कर सकती।

इस एक्ट की अनुपालना मे भारत सरकार ने कई पुरासंपदा तस्करो को कारावास मे पहुचाया।

स्मारक सुरक्षा अधिनियम 2010

स्मारको एवं कोस मीनारो की सुरक्षा के लिए लोकसभा द्वारा 2010 मे इस के कानून का निर्माण किया गया है। जिसके अनुसार कोस मीनारो 100 या 200 मीटर के क्षेत्र मे कोई भी निर्माण राष्ट्रीय सुरक्षा प्राधिरण की अनुमति के बिना नही किया जा सकता , यदि किसी के द्वारा इस कानून का उल्लंघन किया जाता है तो उसे दो वर्ष का कारावास एवं एक लाख रु का जुर्माना किया जायेगा। यदि कोई स्मारक इस विकास कार्य मे बाधा बन रहा है। तो इसके संबंध मे वह राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण से अनुमति लेगा।[8]

भारतीय पुरातत्व विभाग ने कोस मीनरो के संरक्षण के प्रयासो मे तेजी लाते हुऐ इस क्षेत्र मे 2013 तक सरहानीय काम किये है। विभाग द्वारा कोस मीनारो को संरक्षित करने के अलावा इस क्षेत्र मे विभाग द्वारा पत्र पत्रिकाओ का भी प्रकाशन कर लोगो को इसके बारे मे जानकारी दी जाती है यह विभाग का ही प्रयास है कि नेशनल म्युजियम एसोसियन ने भारत के सभी क्षेत्रो मे पाये गये कोस मीनारो का एक विरवण तैयार किया है।

भारतीय पुरातत्व विभाग ने कोस मीनारो संरक्षण मे किये जा रहे उपाये एवं कार्य

विभाग ने मील स्तम्भो की सुरक्षा के लिऐ जालेनुमा सलाखो से आवरण मे बंद करके उन्हे सुरक्षा प्रदान की गई है ताकि उन्हे किसी असामाजिक तत्वो द्वारा नुकसान न पहुँचाया जा सके।

(पहले)

(सूचनापट्ट)

जालेनुमा आकुति मे बंद कोस मीनार भवानी खेडा हरियाणा, (भारतीय पुरातत्व विभाग हरियाणा नोटिफिकेशन, न1083)

प्रोटक्टेड मोन्यूमेंट के सूचनापट्ट लगाकर

पुरातत्व विभाग द्वारा आम जनता के ज्ञानार्थ सूचनापट्ट लगाकर जनता को सूचित किया जा जाता है कि उक्त पुरासंपदा पुरातत्व विभाग की सम्पति है जिसे किसी भी प्रकार से नुकसान पहुँचाना कानूनी अपराध है। कोस मीनारो का सर्वे करने पर यह पाया गया कि इस प्रकार के सूचनापट्ट हर उस पुरासंपदा के पास लगाये गये हैं, जहा पर कोई भी प्राचीन महत्व की सामग्री पाई गयी है।

चौकीनुमा आकृतियो से सहारा प्रदान करके

जो कोस मीनारे राजमार्गो पर स्थित होने के कारण नष्ट होने की कगार पर थे उनको पुरातत्व विभाग द्वारा चौकीनुमा आकृतियो द्वारा सुरक्षित कर उन्हे बचाने का प्रयास भारत सरकार द्वारा किया जा रहा है।

कोस मीनारो का पुन: निर्माण करके

2004 की सर्वोच्च न्यायालयो की टिप्पणी के बाद भारतीय पुरातत्व विभाग ने इस क्षेत्र मे जो कोस मीनारे नष्ट होने की कगार पर थी उनका संरक्षण कर उन्हे दुबारा ठीक किया गया है।

पहले बाद मे

संरक्षित कोस, मीनार मनाना,जिला पानीपत ,अधिसूचना संख्या 1083 (भारतीय पुरातत्व विभाग हरियाणा)

पत्र पत्रिकाओ के माध्यम से

पुरातत्व विभाग द्वारा पत्र पत्रिकाओ मे इनके बारे मे जानकारी का प्रकाशन कर भी विभागो द्वारा कोस मीनारो का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसके माध्यम से आम जनता को इसकी जानकारी प्रदान कि जा रही है।

सर्वेक्षण के कार्य के द्वारा

समय समय विभागो द्वारा एक सर्वेक्षण कार्य भी आयोजित किया जाता है। जिसके माध्यम से जिस प्राचीन विरासत को संरक्षित किया गया था इसके बारे मे विभागो द्वारा जानकारी प्राप्त की जाती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि किसी विरासत को किसी असामाजिक तत्व द्वारा किसी भी प्रकार कि हानि नही पहुचाई गई हो। इसी सन्दर्भ मे कोस मीनारो को भी संरक्षित करने का कार्य विभाग द्वारा समय समय पर किया जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय समय पर संज्ञान लेते रहना

2004 की कोस मीनारो की दुर्दशा को देखते हुऐ सर्वोच्च न्यायालय ने जो टिप्पणी की थी उसके बाद भी सर्वोच्च न्याायालय समय समय पर पुरातत्व विभाग के कार्यो की जाच करने के लिए भारत सरकार को समय समय पर आदेश देता रहता है।

विद्वानो द्वारा पुरामहत्व की सामग्री के लिए जागरुकता कार्यक्रमो का आयोजन करके

डॉ. सुभाष परासर, डॉ. मनोज शर्मा एवं समस्त भारतीय पुरातत्व विभाग के कर्मचारियो के प्रयासो से समय समय पर लोगो को जागरुक करना या भारत सरकार द्वारा विश्व पर्यटन दिवस जैसे कार्यक्रमो का आयोजन करके भी लोगो को प्राचीन महत्व की सामग्री के बारे मे जानकारी देने का भी प्रयास किया जाता है।

कोस मीनारो के आस -पास के क्षेत्र को उद्यादन मे बदलकर विभागो द्वारा कोस मीनारो के संरक्षण के लिए विभागा वहा के 100 से 300 मीटर के क्षेत्र को पार्क मे बदलकर वहा पर घास लगाई जा रही है ताकि उन्हे नुकसान से बचाया जा सके।

कोस मीनारो के संरक्षण मे व्यक्तिगत सुझाव

1. कोस मीनारो के संरक्षण के लिऐ यह आवश्यक है कि जिस क्षेत्र मे कोस मीनारे है। वहा के ही लोगो को प्रशिक्षित करके उन्हे इस काम के लिये रख लिया जाये क्योकि कोस मीनरो का क्षेत्र विस्तृत है जिस कारण से उनकी पूरी तरह से सुरक्षा कर पाना मुश्किल है।
2. भारत की लोकसभा मे प्रत्येक वर्ष सांसदो द्वारा एक गाँव गोद लिया जाता है। ताकि वह उनका विकास आदर्श कस्बे के रुप मे कर सके। यदि सांसदो को किसी प्राचीन विरासत या कोस मीनरो को भी गोद दिया जाये तो इनकी सुरक्षा के साथ -साथ सरकार को इनकी पूर्ण जानकारी भी मिल सकेगी।
3. जिस क्षेत्र मे कोस मीनारो है इनकी जानकारी सरकार या पुरातत्व विभाग को देनी चाहिए ताकि विभाग इनकी सुरक्षा कि समुचित व्यवस्था कर सके।
4. जिस क्षेत्र मे यह प्राचीन विरासत है इनकी सुरक्षा लोगो द्वारा भी कि जानी चाहिऐ

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सहाय, डॉ शिवस्वरुप', संग्रहालय विज्ञान की ओर,2005, दिल्ली , पृष्ठ सं 18-20*
2. *सी. शवराममूर्ति, डायरेक्टरी ऑफ म्युजियम्स इन इण्डिया, 1978, पृष्ठ सं 119*
3. *पतं, जी. एन., म्युजियम्स देयर एजुकेशन पोंटेन्सियल, जर्नल ऑफ इण्डियन म्युजियम्स, भाग 39, 1983, पृष्ठ सं 9*
4. *गैराला, टी आर, दी फन्डामेंटल ऑफ क्वाटंम मैकेनिक्स हिस्ट्रीकल एनॉलिसस स्टडीज, दिल्ली 1995 ,पृष्ठ सं 16*
5. *सेनापति, सुशांत कुमार, संचार के विकास की यात्रा व संरक्षण, जर्नल ऑफ इण्डियन म्युजियम हैदराबाद,1995*
6. *फारुकी, ए के एम, रोडस एण्ड क्युनिकेशन इन मुगल इण्डिया , दिल्ली , 1977, पृष्ठ सं 97*
7. *ए घोष , इण्डियन आर्कीलॉजी ए रिविू , जर्नल ऑफ आक्रिलॉजी , दिल्ली , 2004*
8. *गढवीर डॉ एम आर , पर्यटन दशा एंव दिशा , जयपुर 2012, पृष्ठ संख्या 14 से*

राजस्थानी लोकगीतों में पर्यावरण संबंधी चेतना

डॉ. संबोध गोस्वामी
फैलो, रॉयल एशियटिक सोसाइटी, लंदन,
व्याख्याता, राजकीय स्नातकोत्तर कला महाविद्यालय, दौसा

shodhshree@gmail.com

किसी समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवम मूल्यवान धरोहर होती है उसका लोक साहित्य। समाज की अनेक पीढ़ियों का संचित ज्ञान/ अनुभव, परम्परागत मूल्य, आदर्ते, विचार, आशायें, आकाँक्षायें जितनी सहजता से लोक साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं, उतने सहज, सरल, सुबोध रुप से अन्यत्र नहीं होती। 'लोक साहित्य' शब्द अंग्रेजी के ङ्गफोक लिटरेचर' का पर्याय है। 'फोक' शब्द से अभिप्राय मूलत: परम्परागत समाज के सभी सदस्य हैं, किन्तु प्रस्तुत संदर्भ में अंग्रेजी साहित्य में यह शब्द उन लोगों के लिये प्रयुक्त होता है, जो नागरिक संस्कृति तथा सविधि शिक्षा के प्रवाहों से मुख्यत: परे हों, जो अनपढ़ हों या थोड़े बहुत पढे हों, या ग्रामीण हों। किंतु 'फोक' शब्द का अर्थ मात्र इतना ही निकालना एक भूल होगी। दरअसल इस शब्द से अभिप्राय मानव समाज के उस वर्ग से है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना तथा पांडित्य के अहंकार से शून्य है, जो उनके कृत्रिम मूल्यों की कैद से स्वतंत्र है और एक परम्परा के प्रवाह से जीवित रहता है।

भारतीय जनता का अधिकतम भाग ग्रामों में निवास करता है और जिसे 'लोक' की संज्ञा दी जाती है, वह वस्तुत: यहाँ का ग्रामीण लोक समाज ही है। ग्रामीण लोक समाज जिन शब्दों में अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करता है, साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है, उन सबको 'लोक साहित्य' की संज्ञा दी जाती है। लोक साहित्य बहुधा अनाम होता है। किसी लोकगीत या लोक कथा का रचयिता कौन है, यह बहुत कम ज्ञात हो पाता है। यह बहुत संभव है कि किसी लोकगीत या कथा की रचना किसी एक व्यक्ति ने ही की हो और आगे चलकर अनेक पीढ़ियों के लोगों द्वारा उसमें परिवर्तन होता रहा हो। किंतु न तो स्वयं प्रस्तुतकर्ता और न अन्य लोग ही यह स्मरण रखने की चिंता करते हैं कि कौनसा अंश किसके द्वारा रचा गया।

लोक साहित्य हमारी संस्कृति का प्रमुख अंग है, जिसे पाँच भागों में सामान्यत: विभक्त किया जा सकता है- लोकगीत, लोकगाथा, लोक नाट्य, लोक कथा व लोक सुभाषित/प्रकीर्ण साहित्य। कुछेक सामाजिक विद्वानों ने लोक साहित्य के छटे भाग के रुप में जादूटोने, तंत्र मंत्र तथा अंधविश्वासों से संबंधित सामग्री को वर्गीकृत करने की चेष्टा की है।[1] लोक साहित्य, लोक जीवन के धार्मिक, आर्थिक एवम सामाजिक पक्ष से घनिष्टता के साथ जुड़ा हुआ है। विविध संस्कारों के अनुसार लोकगीतों की रचनाएँ हुई हैं, मुख्यतया जन्म और विवाह संस्कार पर सर्वाधिक लोकगीत मिलते हैं। व्रत, उपवास, पर्व, पूजा सभी लोकगीतों और कथाओं के साथ संपन्न होती हैं। अनेक ऋतुओं के आधार पर भी लोकगीतों का सृजन हुआ है। बुआई, रोपाई तथा कटाई के अवसरों पर अनेक प्रकार के क्रिया गीत गाये जाते हैं। रोग बीमारियों, अन्य प्रकार के शारीरिक कष्टों, भूत प्रेतों आदि को दूर भगाने के लिये, शकुन, अपशकुन, कृषि, वर्षा तथा जातिगत स्वभावों/विशेषताओं को वर्णित करने वाले मुहावरों, लोकोक्तियों तथा कहावतों के द्वारा लोक साहित्य समृद्ध हुआ है।[2] लोक साहित्य की महत्ता को देखते हुये सारे संसार में लोक साहित्य को संगृहित करके

प्रकाशित किया जा रहा है। इस कार्य के अंतर्गत लोकगीतों, लोककथाओं, मुहावरों, पहेलियों, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक कला, रीति रिवाजों, पूजा पद्धतियों एवम साधनाओं, विश्वासों और विचारों को संकलित करना शामिल है। और ये संकलन भाषाविज्ञान, दर्शन, समाज, विज्ञान, धर्मविज्ञान, नर विज्ञान, चिकित्सा, ज्योतिष, सभ्यता, संस्कृति आदि अनेक विषयों के विद्धानों एवम शास्त्रियों के गंभीर अध्ययन के विषय बने हुये है।

राजस्थानी लोकगीतों का वर्गीकरण :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, लोकगीत एक या अधिक विद्धान् लेखकों द्वारा एक योजना बना कर नहीं लिखे गये हैं। यह तो जंगल की उस हरियाली की तरह है, जो पंक्तियों, क्यारियों अथवा गमलों में नहीं लगती। जब-जब लोक-गायकों के मन में, महिला समूह में या ग्रामीण टोली के मन में, जैसी-जैसी उमंगें उठी, उनकी अभिव्यक्ति से लोकगीत बनते चले गये। यहीं कारण है कि इनका वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है।[3] कुछ विद्धानों ने इनका वर्गीकरण निम्नलिखित पद्धतियों पर किया है :

उद्देश्य के अुसार

(अ) धार्मिक लोकगीत : धार्मिक लोकगीतों के अन्तर्गत संस्कारों, देवी-देवताओं, भक्ति-पूजा, व्रत-त्यौहारों आदि से सम्बन्धित लोकगीत आते हैं। संतों की वाणी, पाबूजी, नागजी, तेजाजी, हीरामनजी, रामदेवजी, गोगापीर, प्रभृतियों पर गाये हुए लोकगीत, जिनमें लोकभजन भी शामिल हैं, इसके अन्तर्गत आते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में गजानन, विनायक, बिंदायक अथवा गणेश पर तो इतने गीत हैं कि एक पृथक् से पुस्तक बन सकती है। सती पूजन, भैरुजी, भोपाजी, भोमियाजी, सूरज-पूजन के लोकगीत भी इसी वर्ग में आते हैं।

(ब) मनोरंजनात्मक लोकगीत : मनोरंजनात्मक लोकगीतों में विभिन्न मानवीय चेष्टाओं, क्रीड़ाओं, ऋतुओं मानव जीवन के सरस प्रसंगों, मेलों, पर्वो, त्यौहारों, होली आदि के अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीत आते हैं। सास-बहू, समधी-समधन, ननद, भौजाई, ननदोई-देवर, भाभी, बडसासू के रिश्तों पर गाये जाने वाले लोकगीत भी इसके अन्तर्गत आते हैं।

(स) सामाजिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित लोकगीत : समाज में घटने वाली विभिन्न घटनाओं पर आधारित एवम् इतिहास की घटनाओं सम्बन्धी लोकगीत जैसे डूंगजी जवार जी, लाखो फूलाणी, मुड़यों नही महेस, घुड़ल्यों इसी वर्ग में आते हैं। प्रसिद्ध वीर पुरुषों के शौर्य के गीत भी इसी क्रम में गिने जायेंगे।

(य) संस्कारों के गीत : राजस्थान में कोई भी संस्कार, पुरोहित द्वारा शास्त्रीय विधि से पूजा कराये बिना भले ही रह जाये किन्तु लौकिक पक्ष में लोकगीत गाये बिना, सम्पन्न नहीं होता। जन्म, मरण व लौकिक 16 संस्कारों पर लोकगीत जैसे तेल, हल्दात, घोड़ी, बन्ना-बन्नी,मेंहदी, पीलो, कामण, तोरणियों, बधावा इसी वर्ग में आते है। ये सभी गीत संस्कारो के गीतों की श्रेणी में आते है।

इसके अलावा राजस्थानी लोकगीतों के वर्गीकरण के निम्न आधार भी हो सकते हैं[4]

राग-रागनियों पर आधारिक लोकगीत : मांड, पीलू, बरवा, मिश्र पीलू, पहाड़ी, तिलक कामोद, काफी सोरठ, देस सारंग, खमाज, गारा, झिझोटी, दुर्गा तथा भैरवी (सिन्धु भैरवी) आदि, रागों की गायकी की प्रणालियाँ, लोकगीतों के वर्गीकरण के आधार हो सकती है। जागीरों तथा रजवाड़ों में इस प्रकार के लोकगीतों का पोषण हुआ। चूंकि इन लोकगीतों का सम्बन्ध राजस्थान की सामन्ती शासकीय व्यवस्था से रहा, ये गीत महलों, अटारियों, हवेलियों तथा किले की चार दीवारियों में पनपे। तत्कालीन शासकीय व्यवस्था पर आश्रित जाति विशेष के गायकों द्वारा गाये जाने से इन लोकगीतों में शास्त्रीयता का पुट अधिक होता है। इन लोकगीतों में मूमल, पिणहारी, रतनराणा, खुमाण जी, कलाली, मारवाड़ को धूंसो, केसरिया बालम आदि अनेक रस भरे तथा ताल निबद्ध गीतों के नाम लिये जा सकते हैं। राजस्थान की प्रसिद्ध मांड गायिकी की परम्परा भी राजमहलों की चारदीवारी में इन्हीं पारम्परिक तथा व्यवसायी लोकगीत गायकों ने अक्षुण्ण रखी। लंगे, मांगणियार, ढोली, मीरासी, राव, राणा, कलावन्त व गंधर्वो ने इसे अपनाया। पेशेवर गायकों द्वारा गाये जाने के कारण इन गीतों के साथ ताल व वाद्य जैसे ढोल, ढोलक, नक्कारा, सितार, सारंगी, सिंध सारंगी, हारमोनियम जैसे वाद्यों का अवलम्बन प्रचुर मात्रा में रहा।

भाषाओं और बोलियों पर आधारित लोकगीत : राजस्थानी लोकगीतों को राजस्थान की विभिन्न भाषाओं व बोलियों के अनुसार भी विभाजित किया जा सकता है। ये लोकगीत आंचलिक बोलियों व शैलियों की विविधता व विभिन्नता लिए भावनात्मक रूप से सजीव हैं। हाड़ौती, मेवाती, ढूंढारी, मारवाड़ी, शेखावाटी, बागड़ी व बृज आदि विभिन्न आंचलिक भाषाओं के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। राजस्थान के 33 जिलों के अनुसार लोकगीतों का वर्गीकरण भी इसी कोटि में आवेगा। एक जिले में भी, कई प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं जैसे कोटा जिले के बांरा सबडिविजन की तहसील, किशनगंज में कुछ भागों में तथा शाहबाद तहसील के गांवों में बृज लोकगीत प्रचलित हैं। सवाई माधोपुर तथा अलवर जिले में ढूंढारी, मेवाती तथा बृज तीनों भाषाओं व शैलियों के लोकगीत गाये जाते हैं। करौली तथा हिण्डौन सबडिविजन में तो बृज भाषा के लांगुरिया, रसिया तथा मीणों तथा गूजरों द्वारा गाये जाने वाले ढूंढारी गीत भी उतने ही लोकप्रिय हैं। कोटा जिले की बारां तहसील में, बोल पंछीड़ा रे, पाटण की पेड़यां में भगतण नाचे रे, तो, शाहबाद में लांगुरिया, बसन्ती रंगवाय, दीजो या लांगुरिया की टोपी प्रचलित है।

समाज के विभिन्न वर्गो पर आधारित लोकगीत[5] (1) रजवाड़ी लोकगीत जैसे केसरिया बालम तथा मूमल (2) किसान मजदूरों के

लोकगीत जैसे -हाली जी हालण जी (3) मेलों के लोकगीत जैसे - शंकर्या, लोकगीत (4) विवाह शादी के लोकगीत जैसे कामण बधांवा, जंवाई (5) पर्वो व उत्सवों के लोकगीत (तीज-गणगौर, होली, दीवाली के गीत जैसे थाने आप पुजास्यां गणगौर, म्हारी मिरगानैणी जाबादयोनी या खोलये गणगौर माता खोलये किवाड़ी बार उभी थारे पूजण वाली। राजस्थान लोकगीतों को पुरुष गीत, स्त्री गीत, बाल गीत, युगल गीत, समूह गीत, (स्त्री पुरुष के पृथक्-पृथ्क) श्रेणियों में भी बांटा जा सकता है।

विरह के गीत, श्रृंगार तथा उपालंभ के गीत, पशु पक्षियों को माध्यम बनाकर गाये (संदेश) लोकगीत, ऋतुओं के गीत, खेती-बाड़ी के गीत, भौगोलिक स्थिति के परिचायक लोकगीत भी, लोकगीतों के वर्गीकरण का एक आधार हो सकता है।

राजस्थानी लोकगीतों में पर्यावरण संबंधी चेतना : पूर्व मेवाड़ राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित अरावली की सुरम्य अपत्यकाओं की प्राकृतिक गोद में बसे हुए आदिवासी बहुल क्षेत्र को 'वागड़' प्रदेश के नाम से परिभाषित किया जाता है। उदयपुर के खेरवाड़ा, धरियावाद तथा प्रतापगढ़ क्षेत्र तथा सम्पूर्ण बांसवाड़ा एवं डूँगरपुर जिलों में फैला हुआ है। गुजरात एवं मध्यप्रदेश के साथ राजपूतानें को मिलाने वाला यह प्रदेश अत्यन्त रमणीय है। वागड़ राजस्थानी भाषा में वागड़, वग्गड़ के रुप में प्रयुक्त होता आया है। वागड़ का शब्दिक अर्थ है 'वीरान तथा उबड़-खाबड़ धरातल वाला प्रदेश। वागड़ गुजराती भाषा में वगड़ा रुप में प्रचलित है जिसका अर्थ भी यही होता है। वास्तव में यह क्षेत्र उबड़-खाबड़ और विरान रहा है। अत: कहा जा सकता है कि उसकी भौगोलिक स्थिति ही उसके नामकरण का कारण रहा हो।[4] प्रस्तुत गीत[5] 'वागड़' प्रदेश में पर्यावरण संबंधी चेतना और पर्यावरण की नासमझी के कारण उत्पन्न परेशानियों एवम हालातों को बयान करते हैं। इन लोकगीतों में पर्यावरण संबंधी बहुत भाव-प्रवण अभिव्यक्ति प्रकट हुई है।

वागड़ ना डूंगरा हूना है भाईयों, वागड़ ना डूंगरा हूना है रे लोल,
रुकड़ा लगाड़ो हरियाली लावो, डूंगरा लीला डरो रे लोल
हुकू लाकडूं कापो रे भाइयों, लीलू कापे पाप लागे रे लोल।
बंजर धरती पुकार करे रे, धरती नो श्रृंगार करो रे लोल
रुकड़ा लावे बरसात रे भाईयों, रुखड़ा थी जमीन पकड़ाय रे भाईयों
जमीन नो कटाव रोकाय रे लोल, रुखड़ा आले पाना रे भाईयों
पाना थी खातर बणे रे लोल, रुखड़ा ने भाईड़ा हमजो ने भाईयों
कवियं नी बात हमजो रे भाईयों, काल पड़े आडा आवे रे रोखड़ा
पाना खाई ढोर जीवे रे लोल, बारे बीज नो होगन है भाईयों
रुखड़ा नके तमो कापे रे लोल, रुखड़ा आपड़ा रक्षक है भाईयों
भक्षक बनो नके इतना रे लोल।

(इस वागड़ गीत का भावार्थ है कि वागड़ प्रदेश की पहाड़ियाँ अत्यधिक पेड़ों की कटाई के कारण, सूनी हो गई हैं, अत: हे वागड़ वासियों पेड़ लगाओ, हरियाली लाओ और पहाड़ियों को हरा-भरा कर दो। सूखी लकड़ियों को चाहे काट लो पर हरे-भरे वृक्षों पर कुल्हाड़े चलाना पाप है। हे भाईयों! बंजर धरती तुम से फरियाद कर रही है कि हरियाली से धरती का श्रृंगार करो। हे भाईयों! वृक्षों से हमें अनेक फायदे मिलते हैं। वृक्ष गरीबी दूर करता है, बरसात लाता है और बरसात के कारण फसलें लहलहाती हैं। वृक्षों की जड़े जमीन की मिट्टी को पकड़ कर रखती हैं, और इससे भूमि कटाव रुकता है। वृक्षों की पत्तियाँ खेतों में गिरकर खाद बनती है। हे भाईयों! वृक्ष हमारे भाई हैं। अकाल पड़ने पर वृक्ष ही काम आते हैं, इसकी पत्तियाँ खाकर पशु जीवित रहते हैं। तुम्हें जमीन एवम बीज की कसम है कि तुम वृक्ष को कभी नहीं काटोगे। चूँकि यह हमारा रक्षक है अत: हम इसके भक्षक नहीं बन सकते।

निम्नलिखित वागड़ गीत[6] पुन: पर्यावरण संबंधी चेतना और परेशानियों एवम हालातों को बयान करता है।

हरना पड़ज्यो कोडीकाल रे हरनारी वैवण।
हरना पड़ज्यो हुकल वायरा रे हरनारी वैवण।
हरना पड़ज्यो खुंटो सारो रे हरनानी वैवण।
हरना नीर टुंटो नावांणे रे हरनारी वैवण।
हरना लक्ष्मी मखे लागी रे हरनानी वैवण।
हरना धान खूंटा कोटारां रे हरनारी वैवण।
हरना खानां खूंटा माडड़ा रे हरनारी वैवण।
हरना रांडी डगवे लागी रे हरनारी वैवण।
हरना सोरां मरवे लागो रे हरनारी वैवण।

(अर्थात हे हरना वेवाण! कोड़ीकाल अर्थात बड़ा भीषण दुर्भिक्ष पड़ गया है। सूखी हवायें चल रही है। जंगल में घास समाप्त हो गई है। कुओं में जल सूख गया है। पशु-मवेशी मरने लगे हैं। खलिहान खाली हो गये हैं। घाटियों के महुए खत्म हो गये हैं। स्त्रियों के शरीर पर झुर्रियाँ बढ़ने लगी हैं एवम बच्चे मरने लगे हैं।

इतिहास देखने से पता चलता है कि राजस्थान के भीलों को दुर्भिक्षों का निरन्तर सामना करना पड़ता था। सप्पन्यो (छप्पनिया अर्थात वि.सं. 1956 का दुष्काल) अपनी भीषणता के लिए भीली लोक गीतों में प्रसिद्ध है। राजस्थान के भीली-लोकगीतों में दुष्काल की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए एक विशिष्ट शब्दावली ही विकसित हो गई। इन गीतों में दुर्भिक्ष के लिए 'गोहल्ज्योकाल', 'ढुकाल' और 'कोडीकाल' शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन तीनों में 'कोडीकाल' सबसे अधिक विकराल दुर्भिक्ष माना गया है। राजस्थान के वागड़ भील लोकगीत के उक्त अंश में 'कोडीकाल' का ही वर्णन हुआ है।

इसी प्रकार निम्नलिखित वागड़ गीत[7] में जन-जागृति की पृष्ठ भूमि तैयार की गई है। 'सारे मेरे रोखड़ा' जैसे गीत में पर्यावरण चेतना को आंचलिक शब्दावली में जनजीवन से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है।

रोखड़ा ताप टारे।
रोखड़ा मेरे सोरा रमे।
रोखड़ा साटा पाड़े, सोपा पारे।
पेट पारे, पार पाड़े।

अर्थात वृक्ष गर्मी दूर करते हैं, उसकी शीतल छाया में बच्चे खेलते हैं, पेड़ों से ही बरसात होती है, वे पशुधन का पालन करते हैं, हमारा पेट भरते हैं तथा जीवन नौका पार लगाते है।

इसी प्रकार प्रस्तुत गीत [10] में नायिका का मन अपने मूल प्रदेश राजस्थान में अपने गांव तथा खेत पर जाने को मचलता है। शेखावाटी, जोधपुर, नागौर, बीकानेर क्षेत्र में लाखों परिवार, दूर कलकत्ता, बंगलौर तथा गौहाटी में व्यवसाय करते हैं। इस सन्दर्भ में यह गीत इस अभिव्यक्ति का परिचायक है कि कितना ही आराम तथा सुविधा बड़े शहर में प्राप्त होती हो तो अपने पर्यावरण ,गांव और खेत से प्राप्त सुख का मजा ही अलग है:-

काकड़ी, मतीरा खास्यां खूब डटके
देश में चालोनी, ढोला मन भटके,
काकड़ी, मतीरा खास्यां, खूब डटके।
काकड़ी, मतीरा खास्यां, नाडी हाला खेत में
आपां दोन्यू कुश्ती लड़स्यां, ठंडी बालू रेत में
कुण तो जीतेजी, देखां कुण पटके
गोरी-गौरी टीबडी पै टाटी बाँधला
आपां दोन्यू खेत की रुखवाली चालाला
ऊंटडा पर कूंची मांडो, चालो झटके
जैपुरिया की चूंदंडी, म्हारे चूड़ी अजमेर की
आगरा को घाघरो, जी चोली बीकानेर की
जोधपुर का आंटी डोरा, फूंदा लटके
बाजरा की रोटी ताती-ताती खावण ने
ग्वार फली को साग ढ़ोला, लूंदो ऊपर लेवण ने
टीबड़े पे आपां, जीमस्यां, खूब डटके।

इस गीत का भावार्थ है -

नायिका को नगरीय जीवन से उकताहट हो गई है। मुक्ति चाहने के लिए वह कहती है प्रियतम अपने गाँव चलो। अपने गांव तथा अपने खेत जाने को बहुत मन कर रहा है। वहाँ चल कर नाडी वाले अपने खेत में ककड़ी और तरबूज डटकर खायेंगे, खेत की रखवाली करने के बहाने अपन खेत पर रात्रि विश्राम करेंगे और ठंडी बालू रेत में कुश्ती लड़ेंगे। देखते हैं हम दोनों में से कौन जीतता है? प्रियतम शेखावाटी चलकर अपने खेत पर बाजरे की रोटी पर घी का लोन्दा रखकर धोरों पर बेठकर जीमण करेंगे। मुझे आप जयपुर की चूंदड़ी, आगरा का घाघरा, बीकानेर की चोली तथा जोधपुर के आंटी डोरे खरीद कर देना, जिसके नीचे फून्दे लटकते हों।

राजस्थान की मिट्टी सर्वदा तिलक योग्य है। मरु भूमि के धोरों (Sand Dunes) की अद्भुत शोभा है। राजस्थान में बर्फ तथा समुद्र के अलावा सभी पर्यटन आकर्षण उपलब्ध हैं। यहाँ के समर्थ प्रवासी पुत्रों ने, भारत के बड़े-बड़े नगरों में अपने डेरे जमा रखे हैं तथा उनकी साहूकारी तथा व्यवसाय की धाक है। श्री कन्हैयालाल सेठिया जो कि राजस्थानी साहित्य के सेवकों में अग्रणी स्थान रखते हैं की यह अमर कविता लोकगीत के रुप में बहुत लोकप्रिय है। 'मींझर' नामक पुस्तक में इस कविता के 13 पद दिये गये हैं।[11] मैं इस कविता के कुछ लोकप्रिय पद तथा वह भी क्रम के बन्धन से मुक्त होकर प्रस्तुत कर रहा हूँ-

धरती धोरां री,
आ तो सुरगां नै सरमावै,
इं पर देव रमण ने आवे,
इं रो जस नर नारी गावै,
धरती धोरां री।
सूरज कण-कण नै चमकावै,
चंदो इमरत रम बरसावै,
तारा निछरावल कर जावै
धरती धोरां री।
काला बादलिया घहरावै,
बिरखा घुंघरिया चमकावै,
बिजली धरती ओला खावै
पंछी मधरा मधरा बोलै,
मिसरी मीठे सुर स्यूं घोलै,
झीणू बायरियो पंपोले,
धरती धोरां री।
इं रो चितौड़ो गढ़ लूंठो,
और तो रण बीरां रो खूंटो।
इंरो जोधाणू नौ कूंटो।
धरती धोरां री।
इं रो बीकाणू गरबीलो
इंरो अलवर जबर हठीलो
इंरो अजमेर भड़कीलो,
धरती धोरां री।
जैपर नगर्यां री पटराणी,
कोटा, बूंदी कद अनजाणी,
चंबल के वे, आंरी कांणी
धरती धोरां री।

इस गीत का भावार्थ है -

राजस्थान की भूरी-भूरी रेत की टीबों की, यह धरती स्वर्ग को लज्जित करती है। इस पर देवता क्रीडा करने आते हैं, इसका यश सर्वत्र

गाया जाता है। सूर्य की प्रखरता, चाँदनी की अमृतमय शीतलता यहाँ उपलब्ध है। तारे इस मरुधरा पर न्योछावर हो जाते हैं। यहाँ का चितौड़गढ़ का दुर्ग शूरवीरों का केन्द्र रहा है। जोधाणा भी शौर्य में विकट रहा है। बीकानेर गर्वीला, हठीला अलवर, भड़कीला अजमेर ये सब इसी धरा के भू भाग हैं। जयपुर यहाँ की राजधानी है। कोटा, बूंदी भी अन्जानी नहीं हैं। चंबल नदी का सतत प्रवाह राजस्थान की इस वीरता की कहानी कहता रहता है अर्थात साक्षी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रांतीय एंव स्थानीय गीतों में पर्यावरण संबंधी चेतना के स्वर छिपे पड़े हैं। तकरीबन सभी प्रांतों के गीतों में, इस तरह के गीत हमें मिल जायेगें, बस आवश्यकता है तो उन्हें ढूंढ निकालने की। उन्हें ढूंढ निकालने की कोशिश एवम उनका नई दृष्टि से अध्ययन/मनन, इतिहास लेखन (विशेषकर पर्यावरण संबंधी चेतना) को, एक नई दिशा प्रदान करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *त्रिपाठी, सुरेश चंद्र, कनउजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब, रुपायन प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ. 87*
2. *वही*
3. *नाग, रवि प्रकाश, राजस्थानी गीतां रो गजरो, साहित्यागार, जयपुर, 1987, पृ. 24*
4. *वही , पृ. 26*
5. *वही , पृ. 28*
6. *डाबी, प्रेमचंद, जनजातीय लोक साहित्य, (वागड़ प्रदेश के विशेष संदर्भ में), अंकुर प्रकाशन, उदयपुर (राज.), 2007, पृ.सं. 9-12*
7. *डाबी, प्रेमचंद, वही , पृ.सं. 111-112*
8. *डाबी, प्रेमचंद, वही , पृ. 92-93*
9. *डाबी, प्रेमचंद, वही , पृ. 106*
10. *नाग, रवि प्रकाश , राजस्थानी गीतां रो गजरो, पृ. 86*
11. *नाग, रवि प्रकाश , राजस्थानी गीतां रो गजरो, पृ. 137*

बीसवीं शताब्दी के भारत में पर्यावरणीय विधानों का ऐतिहासिक परीक्षण

डॉ. शुक्ला ओझा
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण वर्तमान विश्व के निन्तन का प्रमुख विषय है जिसकी परिधि अत्यन्त व्यापक है जिसमें भू -मण्डल, जल मण्डल एवं वायु मण्डल सभी सम्मिलित होते है। आर्थिक विकास एवं पर्यावरण का गहन अंन्तर्सम्बन्ध होता है। आर्थिक विकास के आकांक्षी राष्ट्र को पर्यावरण संरक्षण की आरे ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक होता है यही कारण है कि पर्यावरणीय विधानों का निर्माण एवं उनका परिपालन शासन का प्रमुख दायित्व होता है । भारत में इस दृष्टिकोण से बीसवीं शताब्दी का अति महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस शती का पूर्वाद्ध भारत में अंग्रेजी शासन का तथा 1947 के पश्चात् का उत्तरार्ध भारतीय शासन का रहा है। यह हर्ष का विषय है कि अंग्रेजी शासन जैसे साम्राज्य शासन में भी पर्यावरण संरक्षण पर विदेशी सरकार ने ध्यान दिया एवं पर्यावरणीय विधान बनाने की परंपरा को स्थापित किया जो व्यापक रुप में आज भी यहां जीवंत है। बीसवीं शती के इस क्षेत्र में अंग्रेजी शासन ने आधारभूत कानूनों का निर्माण की एतिहासिक परंपरा को स्थापित किया एवं सती के उत्तरार्ध में विकास के पथ पर चलने वाले विकासशील भारत ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया तथा भारतवासियों को सुरक्षित पर्यावरण प्रदान करने के प्रयास जारी है।

पर्यावरण समस्या वैसे तो मूलत: औद्योगिक देशों की है । तदापि अनेक विकासशील देशों में तेजी से वनोमूलन, शहरीकरण, औद्योगीकरण उत्तरदायी है। पर्यावरण प्रदूषण का राष्ट्रीय आय पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। ये मानव स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है । प्रदूषित जल के उपयोग से व्यक्ति अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है। वायु प्रदूषण श्वसन तंत्र, गुर्दे , हृदय आदि को क्षति पहुंचाता है। पर्यावरण क्षति एवं उद्योगों द्वारा उत्सर्जित विषैले जल से पशु, मछली इत्यादि जीव जन्तु, विषैले जल की सिंचाई से कृषि उपज इत्यादि को जो हानि होती है, वह राष्ट्रीय हानि के रुप में राष्ट्र को उठानी पड़ती है। खराब स्वास्थ्य मानव उत्पादकता का हास करता है ।

कहा जाये तो पर्यावरण की क्षति कुल उत्पादन एवं उत्पादकता को कम कर देता है। अतएव पर्यावरण सुरक्षा राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न है। यही कारण है कि पर्यावरण विधानों के निर्माण की आवश्यकता अनुभव की गयी। आर्थिक विकास का लाभ दीर्घकाल तक हो, इसके लिये पर्यावरण की सुरक्षा पर ध्यान देना आवश्यक होता है। थोडे से तात्कालिक लाभ के लिए पर्यावरण को दीर्घकालीन नुकसान हो, इसका ध्यान रखने हेतु पर्यावरण विधान बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई है। पर्यावरण सरंक्षण की उपेक्षा न केवल वर्तमान जनसंख्या वरन् भावी पीढ़ी पर भी अपना दुष्प्रभाव छोडती है। उनकी उत्पादन करने व आवश्यकता पूरी करने की क्षमता का ह्रास आर्थिक संकट का कारक बन सकता है इसी कारण विधान बनाना सरकार का दायित्व बन गया है। पर्यावरण समस्या के निवारण में आदेश व नियंत्रण उपायों की महती भूमिका रहती है। साथ ही बाजार आधारित संयन्त्रों, जिनमें प्रमुख रुप से कर व अनुदान एवं सीमित मात्रा में व्यापार योग्य परमिट का भी प्रयोग होता है। प्राय: अल्पविकसित एवं विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि के साथ -साथ गरीबी एवं

 ISSN 2277-5587

अशिक्षा व्याप्त रहती है। वहां सामान्य जनता, कम शिक्षित तथा पर्यावरण के प्रति स्वयं जागरुक नहीं होती है। वहां पर्यावरणीय विधानों से ही इस संकट का समाधान खोजा जा सकता है। विकृत पर्यावरण को सुधारने एवं प्रदूषण को रोकने हेतु पर्यावरण कानून या विधान परम आवश्यक हो जाता है।

पर्यावरण विधान बनाने समय कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है यथा संपोष्य विकास दर पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इसके लिये पर्यावरणीय पहलुओं के विकास आकांक्षाओं के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। ऐसी नीतियों एवं विनियोगों का चुनाव किया जाये जिससे आर्थिक विकास में अवरोध न उत्पन्न हो। नीति निर्धारण में पर्यावरणीय विषयों के और आर्थिक समन्वय पर बल देना आवश्यक होता है। साथ ही पर्यावरणीय जाग्रति हेतु प्रभावकारी कदम उठाना भी अपेक्षित होता है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधित विधान बनाने की परंपरा अंग्रेजी शासन काल में हुई थी , यद्यपि इस संबंध में प्राचीन काल से ही भारत में नियम बनते रहे थे। विभिन्न नीतिकारों के बनाये धर्म के आवरण में इस प्रकार के अनेक नियम समाज में प्रचलित रहे है। तदापि इन्हें कानूनी रुप प्रदान कर विधान बनाने का श्रेय अंग्रेजी शासन को ही जाता है । सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग के निर्माण के पश्चात् ब्रिटिश शासन में औपनिवेशिक प्रशासन का विस्तार हुआ तथा विविध गवर्नर जनरल द्वारा विविध कानूनों का निर्माण करवाया गया । इस युग में देश में बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं सरकार की औद्योगिक क्षेत्र की ओर झुकाव की नीति ने अंग्रेजी सरकार का ध्यान पर्यावरण संबंधी समस्याओं की ओर आकर्षित किया तथा इस क्षेत्र में जनित समस्याओं की खोज कर उनके निवारणार्थ विधान बनाने का प्रारंभ किया गया। इस प्रकार देश में पर्यावरण विधानों के निर्माण की परंपरा का प्रारंभ हुआ । इस क्रम में दि ओरियण्टल गैस कम्पनी एक्ट 1857 , इण्डियन फैक्ट्रीज एक्ट (1897) द्वारा अंग्रेजी शासन ने क्रमश: वायु एवं जल प्रदूषण को कानून बनाकर रोकने के प्रयत्न प्रारंभ किये। इस दिशा में भारतीय दण्ड संहिता 1960 का विशेष योगदान है जिसके अन्तर्गत 268, 268, 290, 291, 426 तथा 430 के माध्यम से सामान्य पर्यावरण समस्याओं संबंधी विधान बनाये गये। वायु प्रदूषण रोकने हेतु विस्फोटक अधिनियम 1908, दि आन्ध्र प्रदेश एग्रीकल्चर पेस्ट एण्ड डिसीज एक्ट 1919,वन्य जीवों के संरक्षण हेतु फॉरेस्ट एक्ट 1927, कीटनाशक के प्रयोगों के नियमन हेतु पर्यावरणीय विधान के अन्तर्गत दि प्लाइजनिंग एक्ट 1919 के निर्माण के रुप में सरकार ने प्रभावी कदम उठाये। जल , जीव, जन्तु संरक्षण की प्रक्रिया के अन्तर्गत सन् 1897 में भारतीय मतस्य अधिनियम का पारित होना भी उत्तम प्रयास था। इस क्षेत्र के अन्य प्रमुख विधानों में भारतीय बॉयलर्स अधिनियम 1923, भारतीय बन्दरगाह बीमा अधिनियम 1901, मोटर गाडी अधिनियम 1938 एवं 1939 इत्यादि सम्मिलित है। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय दण्ड संहिता 1860 के अन्तर्गत धारा 277 में जल प्रदूषण एवं 278 में वायु प्रदूषण के प्रकरण स्पष्ट किये है। अंग्रेजी शासन की पर्यावरणीय विधान बनाने की यही परंपरा स्वतन्त्र भारत ने भी अपनायी एवं इस ओर गंभीर प्रयास करते हुये पर्यावरण समस्या के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विविध पर्यावरणीय विधानों की रचना की जो सराहनीय है।

वर्तमान समय तक समय -समय पर भारत सरकार ने इस प्रकार के विधान रचना की है। जिससे इस समस्या पर अंकुश लग सके। इसमें सुधार हेतु सरकार ने समय-समय पर अनेक नीतियों का निर्माण किया है । जैसे राष्ट्रीय संरक्षण कार्य नीति और पर्यावरण विकास के लिए नीति विवरण 1992, प्रदूषण उपशमन के लिए नीति विवरण 1992 और राष्ट्रीय वन नीति 1988 की घोषणा की है । परिवेशी और उद्योगों से संबंधित उत्सर्जन एवं निस्सारी मानकों (Fluent Standards) का निर्धारण एवं औद्योगिक क्षेत्रों में सामान्य निस्सारी उपचार संयत्रों, (CETPs) की स्थाना, लघु उद्योगों को बस्तियों में अवशिष्ट न्यूनीकरण सर्कलों (WMC) की स्थापना, अत्याधिक प्रदूषणकारी उद्योगों की 17 श्रेणियों में पर्यावरणीय संरक्षण के लिए कंपनी उत्तरदायित्व (CREP) के चार्टर की सिफारिशों का क्रियान्वयन, पर्यावरण अनुकूलन उत्पादों के उत्पादन या उपभोग को प्रोत्साहित करने के लिए एवं पारिस्थिति मार्क (Eco-mark) की स्कीम लागू करना आदि भी महत्वपूर्ण प्रयास रहे है।

किसी भी देश का संविधान वहां के प्रशासन, विधान एवं नियमन का आधार क्षेत्र है । वह देश की आत्मा माना जाता है। भारतीय संविधान द्वारा भी पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन में महती भूमिका निभायी गई है। सन् 1976 में किया गया संविधान का 42 वां संशोधन यह स्पष्ट करता है कि 'राज्य पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन का प्रयास करेगा तथा वनों एवं वन्य जीव जन्तुओं की सुरक्षा की व्यवस्था करेगा। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसका संवर्धन करे। इसके अन्तर्गत वनों, झीलों, नदियों , एवं वन्य जीवों के जीवन की सुरक्षा भी निहित है। 'इस 42वें अनुच्छेद में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत राज्य एवं नागरिकों को इस संबंध में विविध अधिकार प्रदान किये गये है। अनुच्छेद 48 (का) के अनुसार राज्य पर्यावरण की रक्षा करने, उसमें सुधार लाने का प्रयास करेगा और देश के वनों एवं वन्य जीव जन्तुओं के जीवन की रक्षा का प्रयास करेगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 51 (का) भी यह घोषित करता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वनों, झीलों, नदियों एवं वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें। इसी प्रकार अनुच्छेद 51 क (घ) के अन्तर्गत मौलिक कर्तव्यों को शीर्ष में रखा गया है जो संविधान में सर्वप्रथम सन् 1977 में जोड़ा गया था। यह प्रावधान न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराये जाते है किन्तु जनमानस में पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा करने के उद्देश्य से मौलिक कर्तव्यों को शिक्षा के एक अंग के रुप में लिया जाना चाहिए।

प्रदूषण अवरोध हेतु स्थापित राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड एवं प्रदूषण नियन्त्रण समितियों के कार्यों को समन्वित करने का दायित्व केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड सफलता पूर्वक संचालित कर रहा है। जिसकी स्थापना जल(प्रदूषण नियन्त्रण व रोकथाम) अधिनियम 1974 के प्रावधानों के अन्तर्गत सितम्बर 1974 में की गई थी ये वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अन्तर्गत एक स्वायत्त संस्था है तथा केन्द्र सरकार को भी समय समय पर सलाह देता है। केन्द्र तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं प्रदूषण नियंत्रण समितियां प्रदूषण की रोकथाम व नियंत्रण से संबंधित कानूनों एवं नियमों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। ये वायु, जल और ध्वनि के स्तर को निर्धारित करने वाले मानकों से संबंधित नियम और कानून भी बनाते है इस प्रकार पर्यावरण विधान के नियम एवं लागू करने में ये बोर्ड महति भूमिका का निर्वहन करता है।

स्वतन्त्रता के उपरांत भारत सरकार द्वारा पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर विचार हेतु अनेक समितियों, आयोगों का गठन किया गया एवं उनकी सिफारिशों के आधार पर जो कानून बनाये उनका प्रारंभ 1947 के पश्चात तुरन्त ही हो गया। इनमें दि माइन्स एण्ड मिनरल्स एक्ट 1947, दि फैक्ट्र एक्ट (प्रदूषण एवं कीटनाशक) 1948, राष्ट्रीय वन नीति 1952, दि इण्डस्ट्रज डेवलपमेन्ट एण्ड रेग्यूलेशन एक्ट 1951, खाद्य पदार्थो में मिलावट रोकने हेतु अधिनियम 1954, द नदी बोर्ड एक्ट 1965, मर्चेन्ट नेवी एक्ट 1958, कारखाना अधिनियम 1948 इत्यादि प्रारंभिक प्रयास थे। बीसवीं शताब्दी के छठवें से आठवें दशक के मध्य भी सरकार की यह सक्रियता बनी रही। पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन अधिसूचना 1964 पशू क्रूरता निवारण अधिनियम 1860, आणविक ऊर्जा अधिनियम (विकिरण रोकथाम नियम) 1969, जल उपकर अधिनियम 1977, कीटनाशक, अधिनियम 1968 आदि इन्हीं तीन दशकों में पारित किये गये। इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के अग्रिम दो दशकों की में और अधिक तेजी आयी । इन दो दशकों की विशिष्ट उपलब्धियां इस प्रकार है- लोक दायित्व अधिनियम 1991, राष्ट्रीय पर्यावरण प्राधिकरण अधिनियम 1995, पशू क्रूरता निवारण अधिनियम 1960, राष्ट्रीय वन्य जन्तु संरक्षण नीति 1992, भारतीय सशोधित वन नीति 1990, जैव विविधता विधेयक 2000 इत्यादि।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी की समाप्ति तक भारत में पर्यावरणीय विधानों के निर्माण की आवश्यकता पर गंभीरतापूर्वक कार्य हुआ तथा इन्हें लागू करने के साथ इनके उल्लंघन करने वालों को दण्डित करने का भी सतत प्रयास किया जाता रहा। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने वाले भारत का पर्यावरण अनेक विधानों एवं कानूनों के सुरक्षा घेरे में संरक्षण के पथ पर अग्रसर था। इस क्षेत्र की शेष कमियों एवं समयानुरुप उत्पन्न होने वाले संकटों के निवारणार्थ इस सदी में भी ये कानूनी प्रयास निरंतर जारी है। जिनके प्रभाव स्वरुप ही आज विकास की प्रक्रिया में भागीदार बन रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *विपिन चन्द्र - हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया*
2. *राव, एम.बी. - इनवायरमेन्टल लॉज एण्ड एग्रीमेन्ट्स*
3. *हुसैन , माजिद - पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी*
4. *वैंकट, अरुणा - इनवायरमेन्ट लॉ एण्ड पॉलिसी क*
5. *पी. लीला कृष्णन- इनवायरमेन्टल लॉ इन इण्डिया*
6. *बंसल, राजीव - पर्यावरण विज्ञान*
7. *रेड्डी, कृष्णा - इण्डियन हिस्ट्री*

शिक्षकों की जवाबदेही

डॉ. अनार सिंह चौधरी
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, भोपालगढ़

सुनील कुमार
शोध छात्र, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शिक्षा मानव जीवन की आधारशिला है। इसके द्वारा अन्तर्निहित शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार और विचार में परिवर्तन किया जा सकता है। शिक्षक राष्ट्र की शिक्षा का सच्चा सूत्रधार है। राष्ट्र की शैक्षिक आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रगति शिक्षक पर निर्भर होती है। शिक्षक एक ज्योतिपुंज है जो स्वयं जलकर राष्ट्र को प्रकाशित करता है। शिक्षकों के व्यक्तित्व का छात्रों के ऊपर अमिट प्रभाव पड़ता है और वह उनके भावी जीवन की नींव रखता है। शिक्षक वह नक्षत्र है जो सम्पूर्ण मानव जाति का पथ प्रदर्शित करता है। उसका किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति व अवनति में महत्वपूर्ण स्थान होता है। उसका किसी भी राष्ट्र या समाज में बहुत ऊँचा स्थान था। समाज उन्हे आदर की दृष्टि से देखता था। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और साक्षात परम ब्रह्म माना जाता था। आज शिक्षक की वह प्रतिमा नहीं रही। आज शिक्षक केवल वेतन भोगी नौकर मात्र बनकर रह गया है। वह अपनी गरिमा खो चुका है। आज शिक्षा का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। क्योंकि शिक्षक अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वाह नहीं करते हैं।

प्राचीनकालीन शिक्षा में आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया जाता था। शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास सुयोग्य, सच्चरित्र, सात्विक वृत्ति के शिक्षकों के माध्यम से ही सम्भव था। उन शिक्षकों के मूल में सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का दीपक प्रज्वलित था। फलस्वरुप समाज में शिक्षक का चयन उसके व्यवहार की प्रभावशीलता तथा समाज के विकास में उसके कार्यो की भूमिका विशिष्ट योगदान के रुप में होती थी। शिक्षक की सेवाएँ आराध्य एवं पवित्र मानी जाती थी तथा एक शिक्षक की सामाजिक प्रतिबद्धताएँ उच्च स्तरीय पाई जाती थी। आदिकाल से लेकर आज तक शिक्षक की भूमिका, उसके कार्य, उसकी जवाबदेही एवं समाज की उसके प्रति अपेक्षा आदि तथ्यों में समय के अनुसार परिवर्तन आ रहे हैं।

आज भी शिक्षक को उसकी मुख्य भूमिका के रुप में जाना जाता है। वर्तमान शिक्षक प्राचीन शिक्षक की भांति गुरुत्व नहीं रखता, हाँ वह एक अपनी सेवावृत्ति इकाई अवश्य बन गया है। समाज के बदलते नजरिये, बदलते जीवन मूल्यों, अपनी जवाबदेही का प्रभाव शिक्षा जगत पर भी पडा है। आज शिक्षा जगत एक व्यावसायिक तन्त्र का रुप लेता जा रहा है। साथ ही शिक्षा के बाजारीकरण ने शिक्षकों को एक व्यावसायिक तथा बिकाऊ वस्तु बना दिया है। इसके चलते विद्यालयों की स्थापना, विश्वविद्यालय की स्थापना, गुरु शिष्यों के सम्बन्धों में भी अर्थ ने अपनी अलख जगा दी तथा नाना प्रकार के अन्य प्रभाव यथा आधुनिकीकरण, पाश्चात्यीकरण, तकनीकीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण आदि का भी शैक्षिक जगत एवं शिक्षक के स्वरुप तथा भूमिका पर व्यापक प्रभाव पडा है। इस निमित्त आधुनिक अध्यापकों की व्यावसायिक सोच एवं वचनबद्धता उनके कार्य स्तम्भों में बदलाव तथा उनकी प्रभावशीलता आदि तथ्यों में भी बड़ा भारी बदलाव आया है।शिक्षा जगत में शिक्षक की आवश्यकता और महत्त्व सर्वविदित है क्योंकि कोई भी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकती। शिक्षण यदि

सेवावृत्ति है तो उस व्यवसाय की उपयुक्त दक्षताओं एवं कौशलों को प्रशिक्षण के द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है। आज विद्यालयों में शिक्षक शिक्षण कार्य को पूर्ण जिम्मेदारी से नहीं कर पा रहे हैं। केवल अपनी नौकरी ही पूरी कर पा रहे हैं।

जवाबदेही

संसार में मानव जाति पर सबसे अधिक जवाबदेही है। मनुष्य पर प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग जवाबदेही है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अपनी जवाबदेही निभाता है। जवाबदेही के अभाव में किसी भी कार्य को उचित रुप में सम्पन्न नहीं किया जा सकता है।

प्रो. एस.के. दुबे ने जवाबदेही के बारे में कहा है कि जवाबदेही का आशय उत्तरदायित्व की प्रक्रिया से है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य व्यवहार एवं कर्त्तव्य के प्रति समर्पण एवं जागरुकता के साथ कार्य करता है, जिससे वह अपने कार्य के वांछित उद्देश्यों एवं परिणामों को प्राप्त कर सके।

वर्तमान समय में जवाबदेही का प्रयोग उत्तरदायित्व, जिम्मेदारी, नैतिकता आदि प्रयोगों के रुप में काम में लिया जाता है।

जवाबदेही के प्रकार

ओमप्रकाश द्विवेदी और जोसफ जी. जाबरा ने जवाबदेही को निम्न भागों में विभाजित किया है।

1. सामाजिक जवाबदेही
2. शैक्षिक जवाबदेही
3. राजनैतिक जवाबदेही
4. न्यायिक जवाबदेही
5. व्यावसायिक जवाबदेही
6. प्रशासनिक जवाबदेही

सामान्य तौर पर जवाबदेही दो प्रकार की होती है-

(1) आन्तरिक जवाबदेही (2) बाह्य जवाबदेही

शिक्षक जवाबदेही

शिक्षक जवाबदेही से अभिप्राय यह है कि यदि शिक्षक को शिक्षण की जिम्मेदारी दी जाती है तो शिक्षक अपने शिक्षण कार्य को कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व समझकर पूरा करें। दूसरे अर्थो में शिक्षक की जवाबदेही स्वयं अपने आप से, छात्रों के प्रति, अपने शिक्षण के प्रति सही अनुदेशन से लिया जा सकता है। ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण रुप से निर्वाह कर सके।

अगर हमें शिक्षा व्यवस्था में सुधार करना है और शिक्षक को अपनी गरिमा बनानी है तो उसे अपना कार्य पूरी मेहनत लगन व ईमानदारी से करना चाहिए तथा शिक्षण के प्रति अपनी जवाबदेही बढ़ानी चाहिए।

इस अध्ययन से शिक्षकों की जवाबदेही का ज्ञान होगा। यदि उस स्वरुप में कोई नकारात्मक घटक है तो उन्हें दूर करके समाज के स्वरुप में बदलाव लाया जा सकेगा। इसी प्रकार किन्हीं कारणों से शिक्षक की प्रभावशीलता नकारात्मक है तो उसके कारणों की खोज कर उपचारात्मक आयोजना को बल मिलेगा।

साथ ही कार्य की जवाबदेही से उपचारात्मक प्रक्रिया के तहत शिक्षक की प्रभावशीलता में वृद्धि होगी। यदि शिक्षक की प्रभावशीलता उच्च स्तर की होगी तो जवाबदेही व सेवा शर्तो का स्वरुप स्वत: ही सम्यक व आवश्यकता के अनुकूल होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि शैक्षिक विकास के मार्ग में उक्त चरों का अध्ययन न केवल फलदायी है बल्कि भावी विकास का आधार स्तम्भ भी है। निष्कर्षत: सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की प्रभावशीलता, जवाबदेही व सेवा शर्तो के विश्लेषण तथा अध्ययन से साराशत: हमें निम्नलिखित फलादेश मिलने की सम्भावना है।

- हमें वर्तमान समाज के शिक्षक वर्ग की जवाबदेही व आशाओं के स्वरुप का ज्ञान होगा।
- इस अध्ययन से शिक्षक जाति की प्रभावशीलता व जवाबदेही की प्रकृति स्वरुप एवं न केवल मानकों की जानकारी होगी बल्कि आज उनकी स्थिति क्या है? इस तथ्य का भी ज्ञान होगा।
- शिक्षक की प्रभावशीलता के निर्धारक घटकों से उसकी वर्तमान स्थिति की जानकारी से हमें इस दिशा के आवश्यक मानकों का बोध होगा।
- शिक्षकों की सेवा शर्तो के अध्ययन से शिक्षकों की प्रभावशीलता के उन घटकों का उद्घाटन होगा जिसके कारण शिक्षकों ही प्रभावशीलता व जवाबदेही न्यून पाई जाती है।
- इस अध्ययन फलस्वरुप हम यह भी जान पायेंगे कि हमारे वर्तमान शिक्षकों का स्तर क्या है तथा अध्ययन के निष्कर्ष से उनकी स्थिति का मापन होगा। जिनके आधार पर हम उनकी रेंटिग स्केल दे सके।
- शिक्षक जवाबदेही की क्षमताओं की न केवल जानकारी होगी बल्कि शिक्षक जवाबदेही के कौशलों का विकास भी होगा।
- शिक्षक जवाबदेही, प्रभावशीलता एवं सेवा शर्तो के गुणात्मक अध्ययनों से शिक्षक के संतुष्टी स्तर के साथ-साथ सामाजिक मानकों की जानकारी भी मिलेगी। साथ ही यह तथ्य भी स्पष्ट होगा कि शिक्षक वर्ग को लेकर समाज की क्या अपेक्षाएँ है।
- इस अध्ययन से शिक्षकों के व्यवहार निर्धारक संगठनात्मक मापक, शिक्षकों के अतिरिक्त कार्य, शिक्षण कार्य में

गुणात्मक तथ्यों की कमी, कार्य की दशाओं समाज की आशाओं के अनुकूल कार्य, संस्थान व कार्य के परिवर्तन चक्रों की जानकारी होगी जिससे न केवल सुदृढ़ शिक्षा आयोजना बनेगी, बल्कि शिक्षकों के विकास का मार्ग अपने उच्च भाव में प्रशस्त होगा।

निष्कर्षत: इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाना है कि शिक्षण एक भरण पोषण की सेवावृत्ति ही नहीं है बल्कि समाज के प्रति जवाबदेही के दायित्व से भरी हुई प्रक्रिया है। समाज के मार्गदर्शन की जिम्मेदारी शिक्षकों की है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा जगत के सम्बन्ध में कोई भी कार्य व्यर्थ व निष्फल नहीं होता।

शिक्षक जवाबदेही बढ़ाने के लिए उठाये गये कदम :

- कक्षा का अच्छा परिणाम आने पर शिक्षक को नम्बर मिलेंगे और पांच नम्बर उनके सालाना एप्रेजल में जुड़ जायेंगे।
- अगर कक्षा का रिजल्ट खराब रहा तो शिक्षक की वेतन वृद्धि भी रुकेगी और अगले साल भी सुधार नहीं हुआ तो उनके पदोन्नति पर सीधा असर पड़ेगा।
- अगर अतिथि शिक्षकों का रिजल्ट खराब होता है तो उनकी जिम्मेदारी स्कूल के प्राचार्य या शिक्षा अधिकारी की होगी।
- आज शिक्षकों की सबसे बड़ी समस्या यही है कि बिना अधिकार के वह केवल कार्यपालिका के आदेशों का पालन करने वाले बने हुए हैं।
- आज दिन प्रतिदिन शिक्षक के पेशे की प्रतिष्ठा जड़ से खत्म हो रही है।
- शिक्षक जवाबदेही में राजनीति का भी हाथ बहुत अधिक बढ़ रहा है। अत: इस हस्तक्षेप को कम करना चाहिए।
- सरकारी स्कूलों का इंफ्रास्ट्रक्चर और कार्यपालन बेहद खराब है। इनमें सुधार अपेक्षित तरीके से होना चाहिए।
- दूसरी तरफ कुकुरमुत्तों की तरह खुल रहे गैर सरकारी विद्यालय बिना किसी नियम कानून के चलते है। बेरोजगारी के मारे हुए जो लोग इनमें टीचर बनने जाते हैं उनसे प्राय: बेहद कम पैसे में काफी ज्यादा काम कराया जाता है। ऐसे में उनसे बेहतर जवाबदेही से काम करने की उम्मीद कैसे की जाती है।

इस प्रकार से इन मुद्दों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

आज शिक्षा में जवाबदेही पर हम सभी को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। विभिन्न शिक्षा आयोगों में शिक्षा जवाबदेही पर बहुत बाते कर चुके हैं लेकिन जब तक एक शिक्षक स्वयं अपनी मनश्चेतना द्वारा जवाबदेही का जिम्मा नहीं उठायेगा तब तक इस मुद्दे पर सफलता नहीं मिल सकती है। आज सरकारी स्कूलों के परीक्षा-परिणाम संतोषजनक नहीं दिखाई दे रहे हैं।

गैर सरकारी विद्यालयों में भी साजो-सामान पर अधिक ध्यान दिया जाता है। भारी भरकम फीस वसूली जा रही है। लेकिन शिक्षा वैसे ही रटन्त रुप में ही दी जा रही है। इस प्रकार से शिक्षक जवाबदेही आज के शिक्षा दौर में काफी अच्छा उभरता हुआ मुद्दा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. *चौपड़ा गारटीया (2009) "एकाउन्टेबिलिटी ऑफ सैकेण्डरी स्कूल टीचर्स इन रिलेशन टू देयर ओक्यूपेशनल स्ट्रेस", एजूट्रैक्स, वोल्यूम 8, नं. 7*
2. *घोष, ए.के. (2001) "टीचर्स एकाउन्टेबिलिटी", यूनिवर्सिटी न्यूज मार्च-2001, पीपी-11-13*
3. *घोर, टी.एन. (1988) "एकाउन्टेबिलिटी इन टीचर एजूकेशन", जनरल ऑफ टीचर एजूकेशन, एन.सी.टी.ई. नई दिल्ली वोल्यूम 1, नं. 1, पी.पी. 37-42*
4. *जोशी, रजनी (1999) "कन्सेप्चुवल एन्डरस्टेंडिंग ऑफ प्रोफेशनल एकाउन्टेबिलिटी ऑफ टीचर्स एजूकेटर्स, एम.फिल डिजरटेशन, युनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली*
5. *ललित (2004) "राजकीय व निजी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कक्षा शिक्षण के प्रति जवाबदेही का अध्ययन", एम.एड. डैजरटेशन, सी.सी.एस. यूनि. मेरठ*

वेबसाइट :

1. *www.educational.unesco.org*
2. *www.education.nic.in*
3. *www.google.com*
4. *www.wikipedia.org*
5. *www.ugc.nic.in*

पश्चिमी राजस्थान ''सौर ऊर्जा की कुंजी''

सरोज गोस्वामी
व्याख्याता, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

shodhshree@gmail.com

मानव विकास के लिए ऊर्जा अति महत्त्वपूर्ण है। मानव जीवन की घरेलू आवश्यकताएँ, कृषि, अभिगमन और औद्योगिक जटिलताएँ आदि ऊर्जा पर निर्भर है। प्राचीन काल से मनुष्य जैसे-जैसे प्रगति की सीढ़िया चढ़ता गया वैसे-वैसे ऊर्जा का उपयोग भी बढ़ता गया। ऊर्जा उपयोग में अत्याधिक वृद्धि जीवन स्तर और राष्ट्रीय विकास में वृद्धि को प्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करती है। वर्तमान समय में शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति, आवश्यक साधनों तथा नयी उपभोक्ता वस्तुओं को जुटाने के लिए ऊर्जा की खपत में लगातार वृद्धि होती जा रही है, परन्तु ऊर्जा के परम्परागत संसाधन, जीवाश्म ईंधन के पृथ्वी पर सीमित भण्डार विद्यमान है।

पृथ्वी पर सीमित परम्परागत ऊर्जा संसाधन के भण्डार के कारण विश्व अर्थव्यवस्था में ऊर्जा असुरक्षा (ऊर्जा संकट) की समस्या को उत्पन्न कर दिया है। वर्तमान में वैश्विक स्तर पर ऊर्जा असुरक्षा के कारण एक तरफ ऊर्जा सरंक्षण की अवधारणा महत्वपूर्ण तत्व के रुप में देखी जा रही है। दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को भी विकराल रुप दे दिया गया है।

सारणी संख्या-2 के अनुसार भारत में विश्व के प्रतिव्यक्ति औसत कार्बन सी ओ 2 उत्सर्जन 4.5 टन का सिर्फ एक तिहाई 1.5 टन उत्सर्जित करते है, परन्तु वायुमण्डल प्रदूषित करने के मामले में हमारा देश पाँचवे स्थान पर है।

आर्थिक, सामाजिक तथा घरेलू स्तर पर परिवहन औद्योगिकी विकास, संचार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने में ऊर्जा की महत्ता को समझते हुए ऊर्जा की विश्वसनीय उपलब्धता और पर्याप्तता सुनिश्चित करने के लिए अपना ध्यान देने की आवश्यकता है। जीवाश्म संसाधनों के सीमित होने के कारण, दीर्घकालिक और अल्पकालिक ऊर्जा समस्याओं के समाधान के लिए ऊर्जा कुशलता महत्वपूर्ण तत्व है। दीर्घकालिक ऊर्जा भविष्य में नवीनीकरणीय ऊर्जा संसाधन महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते है।

नवीनीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों के रुप में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैव ईंधन, बायो गैस, लघु जल विद्युत इत्यादि प्रमुख ऊर्जा संसाधन है। भारत में सौर ऊर्जा की दृष्टि से राजस्थान सर्वाधिक उपर्युक्त स्थिति रखता है। राजस्थान में भौतिक परिस्थितियों के अनुसार वर्ष में औसतन 250-300 दिन सूर्य चमकता है। जिससे राजस्थान के विभिन्न भागों में प्रतिदिन प्रति वर्ग मीटर 5 से 7 किलोवॉट प्रति घण्टा विद्युत प्राप्त की जा सकती है। यह ऊर्जा प्रति वर्ग किलोमीटर भूमि क्षेत्र पर 20 मेगावाट सौर ऊर्जा संयंत्र लगाने के लिए पर्याप्त है। राजस्थान के 60 प्रतिशत भूमि पर शुष्क मरुस्थलीय भू-भाग फैला है। राजस्थान का यह पश्चिमी मरुस्थलीय क्षेत्र, पूरे प्रदेश में सौर उष्मा प्राप्ति में उच्च सम्भावना रखता है। यहाँ अत्याधिक सस्ती भूमि की भी बहुलता है। इस कारण 100000 मेगावॉट से भी अधिक संभावित विद्युत क्षमता स्थापना के कारण राजस्थान देश के विद्युत गृह के रुप में उभरकर आ सकता है। पश्चिमी राजस्थान में जैसलमेर बाड़मेर व

जोधपुर जिलों में सौर ऊर्जा की प्रबल सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए, इस क्षेत्र को सोलर एनर्जी एन्टरप्राइज जोन (एस.ई.ई. जेड या सेज) का नाम दिया गया है। इस प्रकार सौर ऊर्जा विद्युत और ताप दोनों ही उत्पन्न करने के लिए बेहतर विकल्प बन जाती है।

सारणी संख्या-3 के अनुसार पश्चिमी राजस्थान में सौर विकिरण, सौर दिवस व खुला आकाश सूचकांक पूर्व से पश्चिम की तरफ बढ़ते जाते है। इससे स्पष्ट होता है कि पश्चिमी राजस्थान में सौर ऊर्जा की सम्भावना अधिक है।

सौर ऊर्जा के माध्यम से पानी गर्म करने, खाना बनाने और छोटे उद्योगों के लिए बिजली उपलब्ध करवाने में सौर ऊर्जा की उपयोगिता महत्व रखती हैं। यद्यपि सौर ऊर्जा तकनीक खर्चीली है लेकिन इसकी प्रविधि में सुधार करते हुए, इसे भविष्य की ऊर्जा जरुरतों के आधार के फलस्वरुप ढाला जा सकता है।

राजस्थान में 2010-11 ई. 11वीं पंचवर्षीय योजना में 5 मेगावॉट की क्षमता का एक सौर ऊर्जा संयंत्र लगाया गया तथा 2011-12 ई. 11वीं पंचवर्षीय योजना में 193.5 मेगावॉट के 43 सौर ऊर्जा संयंत्र लगाये गये थे। सारणी संख्या-4 के अनुसार राजस्थान में सौर ऊर्जा की सम्भावित क्षमता मार्च 2012 में 175 मेगावॉट से बढ़कर 2022 तक 20 मेगावॉट होने की सम्भावना है।

भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रकोप से जूझने के लिए जिन आठ नये मिशनों की रुपरेखा तैयार की है। उन अभियानों में सौर ऊर्जा मिशन प्रमुख है। सन् 2020 तक सौर ऊर्जा के आधार पर 22000 मेगावॉट बिजली उत्पन्न करने का लक्ष्य है। राजस्थान के दूर दराज के क्षेत्रों में बिजली पहुंच नहीं पायी हैं, ऐसे में सिंचाई के लिए मोटर पंप के उपयोग में सौर ऊर्जा का व्यापक उपयोग किया जा सकता है। राजस्थान में सौर ऊर्जा की आवश्यकता को देखते हुए, 35 हजार वर्ग किलोमीटर जमीन चिन्हित की गयी है।

राजस्थान में ग्रामीण विद्युतीकरण, सौर ऊर्जा फोटोवाल्टाईक कार्यक्रम सुदूर गांव विद्युतीकरण कार्यक्रम एवं सौर ऊर्जा फोटोवाल्टेक विद्युत गृह कार्यक्रम के माध्यम से सौर ऊर्जा को बढ़ावा दिया जा रहा हैं। प्रदेश में सौर ऊर्जा के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए राज्य सरकार द्वारा दिनांक 19 अप्रैल 2011 को राजस्थान सौर ऊर्जा नीति 2011 जारी की गई थी, जिसके तहत 2013 तक 1500 मेगावॉट क्षमता के सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित होंगे। राजस्थान में अक्षय ऊर्जा निगम लिमिटेड के माध्यम से अक्षय ऊर्जा संसाधनों से सौर उत्पादन, संरक्षण क्षमता बढ़ाने के क्षेत्र में कार्य किया जा रहा है। भारतीय सौर ऋण योजना के तहत भी उपभोक्ताओं को ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं।

नवीनीकरणीय ऊर्जा की दिशा में सरकार स्वयंसेवी संस्थान, औद्योगिक इकाईयाँ और अन्य गैर लाभकारी संगठनों की मदद से आर्थिक सहायता और नवीन तकनीक की व्यवस्था, सांस्थानिक समर्थन, जमीनी स्तर पर गरीबों की जरुरतों को लक्ष्य कर बनाये गये कार्यक्रम और ग्रामीण समाज में जागरूकता का प्रसार कर सौर ऊर्जा के लिए बेहतर वातावरण तैयार कर सकते हैं।

राजस्थान में सौर ऊर्जा के माध्यम से विद्युत उत्पादित कर शक्ति क्षेत्र में सतत् पोषणीय विकास के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में विकास दर को बढ़ावा दिया जा सकता है। राजस्थान में विद्युतीकरण समस्या को हल करके संरचनात्मक ढाँचा और दृढ़ किया जा सकता है। राजस्थान में प्रादेशिक असमानताओं के कारण विकास की गति कम रही हैं। अत: क्षेत्र विशेष की अर्थव्यवस्था को संचालित करने वाले मूल कारक ऊर्जा की दृष्टि से अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने में सौर ऊर्जा के माध्यम से मार्ग, प्रशस्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *प्रसाद, एस. (1997) ऊर्जा संसाधन की खोज, बुक हाउस, नई दिल्ली*
2. *बक्शी, ए.के. (1995) ऊर्जा, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ 5*
3. *मिश्र, बी.के. (2007) सौर ऊर्जा, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ 28-32*
4. *साईवाल, डॉ. एस. (2012) राजस्थान भूगोल, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, पृष्ठ 10-11*
5. *सिंह, एम. (2009) ऊर्जा संसाधन और प्रबन्धन, बुक वर्ल्ड, जयपुर, 1-2*
6. *सिंह, एन. (2007) अपरम्परागत ऊर्जा संसाधन, सनमार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली*
7. *सिंह, डॉ. एन. (2009) अपरम्परागत ऊर्जा स्त्रोत, राजभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 22-23*
8. *सिंह, एस. एवं गुलाबचन्द (2009) सौर तापीय ऊर्जा, इण्डिया बुक सेन्टर, लखनऊ, पृष्ठ 1*

जीवाश्म ईंधन के भण्डार (2011-2081) अरब टन

सारणी संख्या 1

जीवाश्म ईंधन	वर्ष				
	2011	2041	2051	2061	2081
कोयला भंडार	900	500	400	300	80
गैस भंडार	315	60	15	0	0
तेल भंडार	190	90	0	0	0

स्त्रोत:- सी.आई.ए. वर्ल्ड फैक्ट बुक

अखिल भारतीय और ग्रिडवार सी ओ 2 उत्सर्जन का विवरण

सारणी संख्या 2

क्षेत्र	वर्ष				
	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13
दक्षिणी (एस आर ग्रिड)	117.9	126.8	129.1	145.4	156.8
न्यून (उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी ग्रिड)	430.7	453.2	468.6	491.9	539.5
भारत	548.6	580.0	597.7	637.3	696.3

स्त्रोत:- भारतीय विद्युत क्षेत्र के लिए सी ओ 2 बेस लाईन डाटाबेस, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, विद्युत मंत्रालय, भारत सरकार, जनवरी 2014

पश्चिमी राजस्थान में सौर विकिरण

सारणी संख्या 3

स्थान	मापक	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
बाड़मेर	जी	4.69	5.62	6.57	7.47	8.06	7.89	6.55	6.26	6.62	6.07	5.07	4.47
	एस	8.90	9.60	10.10	11.00	12.00	11.20	7.30	7.10	9.50	10.20	9.50	8.80
	के	0.72	0.72	0.72	0.72	0.73	0.70	0.59	0.59	0.69	0.73	0.73	0.72
बीकानेर	जी	4.46	5.37	6.38	7.49	8.12	8.13	7.29	6.83	6.79	5.96	4.80	4.21
	एस	8.80	9.40	10.00	11.30	12.00	12.00	9.60	8.90	10.40	10.40	9.30	8.70
	के	0.72	0.71	0.71	0.73	0.74	0.72	0.65	0.65	0.71	0.74	0.73	0.72
जैसलमेर	जी	4.61	5.56	6.49	7.48	8.11	8.24	7.44	7.08	6.81	6.06	5.00	4.36
	एस	9.00	9.70	10.10	11.10	12.20	12.30	10.00	9.60	10.30	10.50	9.60	8.80
	के	0.72	0.73	0.71	0.73	0.74	0.73	0.67	0.67	0.71	0.74	0.74	0.72
जोधपुर	जी	4.72	5.57	6.55	7.23	7.55	7.07	5.98	5.54	6.10	5.83	4.90	4.43
	एस	9.10	9.70	8.90	10.00	10.60	9.50	6.70	6.20	7.70	9.50	9.70	9.20
	के	0.72	0.72	0.68	0.69	0.68	0.64	0.56	0.57	0.65	0.72	0.74	0.73

विश्व सौर विकिरण (''जी'' किलोवॉट घण्टा/वर्गमीटर प्रतिदिन) सौर प्रकाश घण्टा प्रतिदिन ''एस'' और खुला आकाश सूंचकांक (के) पश्चिमी राजस्थान

राजस्थान में सौर ऊर्जा की संभावित क्षमता

सारणी संख्या 4

वर्ष	मार्च 2012	2013	2018	2022
सौर ऊर्जा	175 मेगावॉट	1.5 गेगावॉट	4 गेगावॉट	20 गेगावॉट

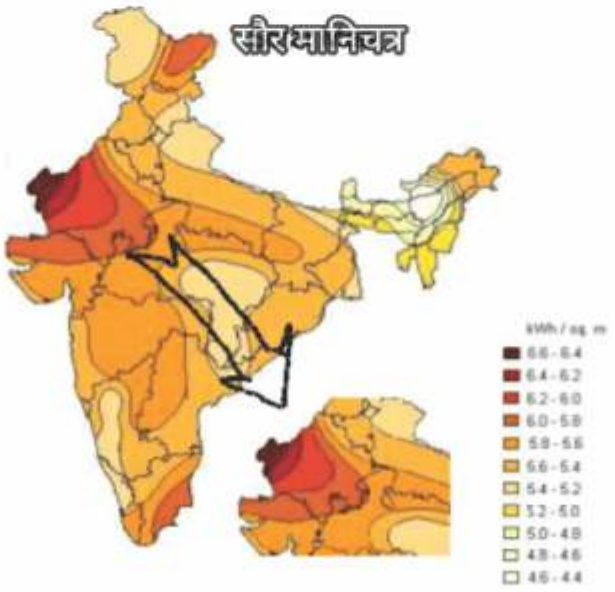

ISSN 2277-5587

21 वीं शती के कथा-साहित्य में स्त्री विमर्श

दर्शना जी. वैश्य
शोध छात्रा, गुजरात युनिवर्सिटी,अहमदाबाद (गुजरात)

shodhshree@gmail.com

इक्कीसवीं शती का कथा-साहित्य अपने पूर्ववर्ती काल से काफी अलग मालूम पड़ता है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, दृष्टि से यह समय बड़ा ही प्रभावशाली दिखाई देता है । दुनिया भर से संपर्क होने के कारण भारतीय संस्कृति पर हर क्षेत्र में बदलाव संभव हुआ है । जितने सकारात्मक प्रभाव भारतीय परिवेश में देखे जाते हैं वैसे ही नकारात्मक प्रभाव भी साफ तौर पर देखे जा सकते हैं । रोजगार के जितने साधन बढ़ते जा रहे हैं वहीं दूसरी तरफ बेरोजगारी, महंगाई और बेकारी भी बढ़ती जा रही है । नारी ने भी पुरुष के साथ ही इस परिस्थिति में प्रवेश किया है । इन परिस्थितियों में साहित्य ने भी नया मोड़ लिया है, जिसने साहित्य के विषयों को भी प्रभावित किया है । यही कारण भी है कि इक्कीसवीं शती का हिंदी कथा-साहित्य पिछले अन्य कालों से महत्वपूर्ण लगता है ।

इक्कीसवीं शती के प्रथम दशक में मुख्य रुप से परिवर्तित होने वाले मूल्य, स्त्री-पुरुष संबंध, स्त्री-संघर्ष, स्त्री-जागरण, आधुनिक इलेक्ट्रोनिक साधनों का प्रभाव, रोजगार के विभिन्न साधन, आर्थिक स्थिति, लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था, आधुनिक शिक्षा आदि कथा-साहित्य के विषयों के रुप में सामने आये हैं । इनमें स्त्री जीवन से जुड़ी अनेक समस्याएँ भी सामने आई हैं, जिन्हें अनेक साहित्यकारों ने अपने साहित्य में स्थान दिया है । संयुक्त परिवार की समस्याएँ, परिवार के सदस्यों के आपस में संवाद का अभाव, एक-दुसरे का अपमान करना, आपस के सम्बन्धों को महत्व न देना, परिवार के युवा-पुरुष बेरोजगारी की समस्या को सामना कर रहे हैं, शादी के क्षेत्र में पुरानी मान्यताएं तथा आधुनिक समय में शिक्षित लड़की के लिए भी दहेज की अनिवार्यता आदि समस्याएँ इसमें शामिल हैं । इन कृतियों में स्त्री जीवन ही नहीं बल्कि तत्कालीन समाज की विषम परिस्थितियों का चित्रण तथा ऐसा चिंतन प्रस्तुत है जो परिस्थिति पर सोचने को मजबूर करता है तथा दिशा-निर्देश भी करता है । साथ ही अनेकों समस्याओं का उल्लेख मिलता है ।इस भूमंडलीकरण के दौर में समाज में सतत हो रहे बदलाव को देखा जा सकता है । अब सवाल यह उठता है कि साहित्य में यह बदलाव आया कहाँ से आया? जब जब समाज में बलाव आता है तो यह बदलााव साहित्य में भी देखा जा सकता है । बदलाव किन परिस्थितियों में होते हैं इस सन्दर्भ में डॉ. सरिका दुबे के अनुसार -

''खुले तथा शिक्षित समाजों में जहाँ धार्मिक-सामजिक बंधन अतिजटिल तथा कठोर नहीं होते हैं वहाँ बाह्य अंत:क्रिया की गति तेज होने की संभावना बनी रहती है । ऐसे समाजों में सांस्कृतिक बदलाव तेजी से होते हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि बाह्य तत्व कहाँ से उत्पन्न होते हैं । कभी कभी तो यह सामाजिक सम्बन्धों, उनकी जटिलताओं के मध्य मानव हित समूहों के टकराव के फलस्वरुप उत्पन्न होते हैं, तो कभी समाज की अपनी विसंगतियाँ, आतंरिक अंत क्रियाओं के फलस्वरुप इन तत्वों को जन्म देती हैं । दूसरी ओर अन्य बाह्य (या वैदेशिक) संस्कृतियों से संपर्क भी किसी समाज के अपने सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव को प्रेरित करता है ।[1]''

इस प्रकार समाज और साहित्य में बदलाव आता है। मैत्रेयी पुष्पा का 'विजन' उपन्यास 'मेडिकल फील्ड' पर आधारित है। इस उपन्यास में नारी द्वन्द मुख्य है। आधुनिक एवं शिक्षित होने के बाद भी नारी होने के कारण आगे बढने में परेशानी होती है और अपने हुनर को कुंठित करना पड़ता है ।इस उपन्यास के सन्दर्भ में डॉ. देवकीनंदन महाजन कहते है कि-

''मैत्रेयी पुष्पा ने अपने नारी पात्रों द्वारा परंपरागत रुढियों का खंडन किया है। रुढ़िगत परम्पराओं का विरोध करने वाली नारी समाज की नजरों से हेय है। मैत्रेयीजी का मानना है कि समाज ने स्त्री को डराया है। दबाव में रखने के कारण वह खुलकर नहीं रह सकती। परन्तु जब उसे मौका मिलता है तो अपने इन निरर्थक बंधनों से मुक्त होने का रास्ता स्वयं ढूंढती है।[2]''

इस सन्दर्भ में स्त्री शक्ति के बारे में डॉ. एस.पी. सिंह और डॉ. सरोज सिंह लिखते है कि - भूमंडलीकरण ने शक्तिशाली महिला(पॉवर वूमेन) के रुप को आगे किया है। स्त्री आज आकर्षक वस्तु न होकर हर स्थिति का मुकाबला करने में सक्षम है, बदलते मूल्यों में वह अपनी भूमिका के जरिये समाज को एक नई दिशा दे सकती है।[3]''

अत आवश्यक है कि नारी अपनी ताकत को पहचाने तथा हर परिस्थिति का सामना वह निडरता के साथ करे ।कुसुम अंसल का उपन्यास 'तापसी'(2006) लेखिका स्वयं धार्मिक प्रवृति की आर्य समाजी महिला हैं फिर भी तापसी जैसी विधवा के माध्यम से उन्होंने मठों, मंदिरों और आश्रमों की असामाजिक प्रवृतियों का चित्रण किया है। तापसी के माध्यम से कुसुम अंसल ने अनेक प्रश्नों की ओर ध्यान खींचा है। आज जब इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किया जा चुका है तब भी समाज में विधवाओं की स्थिति में कुछ खास परिवर्तन नहीं आया। भगवा वस्त्र में लिपटे हुए साधू इन विधवाओं पर किस सीमा तक अत्याचार तथा कुकर्म करते हैं इसका चिट्ठा इस उपन्यास में खोला गया है। इस सन्दर्भ में डॉ. बीना रानी गुप्ता कहती हैं कि-

''संसार की ज्यादातर औरतें अब भी डरी हुई हैं, अब भी भूखी, अब भी गूंगी और धर्म द्वारा तमाम तरह की बेड़ियों से जकड़ी है, उनसे चेहरे पर नकाबें है , मुँह पर गुहारें नैतिकता का आवरण देकर पुरुष समाज स्त्री समाज को छलता रहा है। स्त्री की आत्मिक पीड़ा की छटपटाहट एवं प्रताड़ना की आवाज को लेखिका ने उठाने का प्रयास किया है।[4]'' इस भयावह स्थिति को देख कर डॉ. एस.पी. सिंह और डॉ. सरोज सिंह के लिखते हैं कि-

''वैश्वीकरण का प्रभाव हमारे जीवनमूल्यों, वरीयताओं और सरोकारों को झकझोर रहा है। इस सिलसिले में हम खो ज्यादा रहे हैं, पा कम रहे हैं, आयातित मूल्यों की मृगमारीचिका ने भारतीयों को सुख सुविधा और सम्पन्नता के बाजार में उलझा दिया है।[5]'' मनुष्य इस परिस्थिति में उलझ कर अपने नैतिक मूल्य और नैतिक धर्म को भी भूल गया है।

अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में कादम्बरी और रुबी दी के पात्र से यह देखा जा सकता है कि भूमण्डलीकरण के इस युग में जहाँ एक तरफ संसाधन, तरक्की, चकाचौंध, दिखावा नजर आ रहा है वहीं दूसरी तरफ संबंधो में दूरियाँ, जीवन के प्रति हताशा, एकांकीपन, ईष्या और पैसे के पीछे की अंधी दौड़ ने इंसान को आधुनिकता की आड़ में और अधिक पिछडा कर दिया हो ऐसा मालूम पड़ता है। इस उपन्यास में आधुनिक युग के महत्वपूर्ण साधन 'कम्प्यूटर' का चित्रण किया है, जिसने दुनिया को अपनी मुठ्ठी में कर लिया है। कादम्बरी अपनी नानी की चिठ्ठी का जवाब नहीं दे सकती वह अपनी नानी से फोन पर कहती है कि-

''सॉरी नानी, मैंने चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। असल में मैं चिट्ठी लिख नहीं सकती। ज्यादा से ज्यादा कम्प्यूटर पर ई-मेल भेज सकती हूँ। पर वह अंग्रेजी में होता है और तुम्हारे पास तो कम्प्यूटर भी नहीं।[6]''

कैसा आश्चर्य कि घर की महिला के लिए ही घर की महिला के पास समय नहीं है। रुबीदी इस परिस्थिति पर सतत चिंतन करने को मजबूर हो जाती है। इस ग्लोबलाइजेशन, प्राइवेटाइजेशन, लिब्रलाइजेशन के युग में विश्व 'विश्व ग्राम' या यूँ कहें कि मंडल बन कर रह गया है और इसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, जनसंचार के अनेक साधनों और मल्टीनेशनल कंपनियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

'आर्तनाद' उपन्यास में श्री धर्मपाल साहिल ने स्त्री की पीड़ा को उजागर किया है जिसमें एक ईसाई स्त्री है कि जिसके साथ बलात्कार हुआ है और इस घटना के बाद उसे अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। साथ ही न्याय प्राप्ति की राह में उसे क्या क्या खोना पड़ता है इसका भी चित्रण लेखक ने बड़े प्रभात्मक रुप से किया है। इस सन्दर्भ में डॉ. रमेश तिवारी का भी यह मानना कि-

''21वीं सदी के भारत में भी हम स्त्री के प्रति अपने .ष्टीकोण में बदलाव नहीं ला सके हैं। हम कहने को आधुनिक हुए हैं जबकि वास्तविकता यह है कि स्त्री स्वातंत्रय की दृष्टी से हम आज भी बर्बर और मध्यकालीन सोच वाले ही दिखाई पड़ते हैं।[7]''

इस तरह देखा जाये तो आधुनिक युग में समस्याओं का रूप बदला है परन्तु समस्याएँ पिछले समय से कम नहीं हैं संघर्ष आज भी जारी है। परन्तु देखने की बात यह है कि स्त्री स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागृत हुई है और अपने अस्तित्व को लेकर संभव प्रयास उसके द्वारा आज भी किये जा रहे हैं। शिक्षा का स्तर बढने से स्त्रियों में चिंतनशीलता की बढोतरी हुई है, जिन निर्णयों को लेने में वे सोचती थीं आज उन्हें उनका खयाल तक नहीं आता ।इस स्वतंत्रता को पाने के लिए उसने घर, परिवार तथा समाज की कई बंधन युक्त दहलीजों को पार किया है। डॉ. संतोष नामदेवराव तांदडे के अनुसार -

''वर्तमान स्त्री लेखन न केवल समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्मनीति और स्त्री के संबंध में बने मिथ को तोड़ रहा है, बल्कि वह आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के नाम पर फैलाये जा रहे अराजक संस्कृतिवाद को भी भली भांति समझता है।[8]''

इक्कीसवीं शती के साहित्य से यह बात तो स्पस्ट हो जाती है कि जिस तरह वैश्वीकरण के युग में समस्याओं का स्वरुप बदला है उसी तरह उससे जूझने के रास्तों में भी परिवर्तन आया है ।आज के आधुनिक युग में भी महिलाओं को और अधिक जागरुक होने की आवश्यकता है । परिस्थिति और समय सतत बदल रहे हैं लेकिन समस्या के समाधान आज भी उपलब्ध नहीं हैं । यह भूमंडलीकरण युग की आवश्यकता है कि जब संसाधनों के प्रयोग के क्षेत्रों में हम आधुनिकता दिखा रहे हैं तो विचारों के क्षेत्रों में भी आधुनिकता का प्रदर्शन करें न कि थोथी मान्यताओं और पूर्वधाराणाओं के सहारे ही जीवन व्यतीत करें । आधुनिकता का अर्थ है समाज के हर व्यक्ति को लिंग भेद के बिना सुविधा और सम्मान प्राप्त हो । जब तक मानसिक रुप से आधुनिक नहीं होंगे तब तक आचार-विचार में, समाज में और न ही देश में आधुनिकता के दर्शन होंगे ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *महिला साहित्यकारों का नवचिंतन, डॉ. बीना रानी गुप्ता, उत्कर्ष, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स, कानपुर-21, प्रथम संस्करण-2015*
2. *शेष कादम्बरी, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002, प्रथम सं.2001, दूसरी आवृति-2010.*
3. *प्रथम दशक के महिला लेखन में स्त्री विमर्श, डॉ. मृदुला वर्मा, विद्या प्रकाशन, कानपुर-22, प्रथम सं. 2012.*
4. *इक्कीसवीं सदी में हिंदी साहित्य की स्थिति एवं संभावनाएँ, सम्पादक-डॉ. रंजना चावड़ा, डॉ. विजय शिंदे, डॉ. सुलक्षण जाधवघुमारे, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-3020014, प्रथम सं. 2012.*
5. *भाषा(द्वैमासिक पत्रिका), वर्ष-55, अंक-3(264), जनवरी-फरवरी 2016, सम्पादक-डॉ. अर्चना त्रिपाठी, सह सम्पादक-डॉ. अनुपम माथुर, अर्चना श्रीवास्तव, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय भारत सरकार, नई दिल्ली-110066.*
6. *भूमंडलीकरण संस्कारप्रद मूल्य शिक्षा एवं महिलाएँ, संपादक- डॉ. मीना रानी अग्रवाल, डॉ. रंजना त्रिपाठी, डॉ. नीलिमा सिंह, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद-211006, प्रथम संस्करण 2012.*
7. *डॉ. रमेश तिवारी 'स्त्री-जीवन के अंर्तसंघर्ष की कथा 'आर्तनाद' एक पुरुष की दृष्टि में', भाषा(द्वैमासिक पत्रिका)(अंक-3), जनवरी-फरवरी 2016, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय भारत सरकार, पृ.225*
8. *इक्कीसवीं सदी में हिंदी साहित्य स्थिति एवं संभावनाएँ, सम्पादक-डॉ. रंजना चावड़ा, डॉ. विजय शिंदे, डॉ. सुलक्षण जाधवघुमारे, पृ.130.*

ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (तहसील हल्द्वानी के ऊँचापुल क्षेत्र के ग्राम भगवानपुर जैसिंह के विशेष संदर्भ में)

डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, एम.बी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी (नैनीताल)
गंगोत्री कुटियाल,
शोधार्थी, एम.बी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी (नैनीताल)

shodhshree@gmail.com

भारत में सम्पूर्ण समाज को चार वर्णो में विभाजित किया गया है। शीर्ष पर ब्राह्मण हैं और फिर क्षत्रिय एवं वैश्य हैं और सबसे निचले स्तर पर शूद्र आते हैं। अनुसूचित जातियां अतीत के उन समूहों के वंशज हैं जो वर्ण व्यवस्था या जाति व्यवस्था की परिधि के बाहर थे। समाज में शूद्रों की स्थिति सबसे निम्नतम थी। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इनके लिए दलित वर्ग शब्द का इस्तेमाल किया। यही वर्ग आगे चलकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों में परिवर्तित हो गया। इन्हें अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति नाम अंग्रेजों ने दिया था। अनुसूचित जाति एक राजनीतिक वैधानिक शब्द है। पहली बार इस शब्द का प्रयोग साइमन कमीशन ने किया। सन् 1931 की जनगणना के अध्यक्ष (**जे. के. हट्टर**) ने इन जातियों को '**बाहरी जाति**' के नाम से सम्बोधित किया। उनका मानना था कि हिन्दू समुदाय का अंग होने के बाद भी इन्हें हिन्दुओं की तरह कोई भी अधिकार न होने के कारण इन्हें हिन्दू समाज से बाहर मानना उचित है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इंग्लैण्ड मे होने वाले गोलमेज सम्मेलन मे इस बात पर जोर दिया कि अछूत जातियों को हिन्दू समाज से बाहर मानकर उन्हें मतदान का पृथक अधिकार दिया जाये।

स्वतंत्रता के बाद भारत में यह व्यवस्था की गई कि परंम्पागत रुप से जिन जातियों को अछूत माना जाता रहा है उन्हें कानूनी संरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण देकर ही उनकी दशा में सुधार किया जा सकता है। इसके लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 में राष्ट्रपति व विभिन्न प्रदेशों के राज्यपालों से सलाह करके उन जातियों की अनुसूची तैयार करने का अधिकार दिया गया। जिन्हें सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आधार पर सभी अधिकारों से वंचित किया जाता रहा था। इन अनुसूची में जिन जातियों को सम्मिलित किया गया। आज उन्हीं जातियों को 'अनुसूचित जातियाँ' कहा जाता है। आजादी के बाद भारत के संविधान में इस कोटि के लोगों को संवैधानिक सुरक्षा तथा अन्य विशेष सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से इस शब्द को बरकरार रखा गया है। अनुसूचित जाति न्याय और समानता के सिद्धान्त पर आधारित एक संवैधानिक शब्द है। इस शब्द का उपयोग सबसे पहले सन् 1935 में साइमन कमीशन द्वारा किया गया था। भारत के नये संविधान में अनुसूचित जातियों को एक ऐसे वर्ग के रुप में मान्यता दी गई जिन्हें 'क्षतिपूर्ति' की 'विभेदक नीति' के द्वारा विशेष सुविधाएँ दी जा सके। अनुसूचित जातियों के हितों की सुरक्षा के लिए एक कमीशन का गठन भी किया गया है। जिसका नाम ''नेशनल कमीशन फॉर षेडयूल्ड कास्ट्स एन्ड षेडयूल्ड ट्राइब्स''रखा गया है। ये अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास से सम्बन्धित विषयों और नीतियों के बारे में परामर्श संस्था की तरह कार्य करता है। ग्रामीण अनुसूचित जातियों के लिए कल्याण मंत्रालय और राष्ट्रीय आयोग''नशनल कमीशन फॉरशेडयूल्ड कास्ट्स एन्ड शेडयूल्ड ट्राइब्स'' के प्रतिवेदन निरन्तर अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अपराधों की संख्या मे वृद्धि, उनकी

 ISSN 2277-5587

समाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं का विवरण देते रहे है तथा उच्च जातियों द्वारा उनका शोषण किया जाना। इस प्रकार के शोषण को रोकने के लिए केन्द्र सरकार ने व्यापक दिशा-निर्देश बनाये है। जिनमें निवारक उपाय भी दिये गये है और आवश्यक कार्यवाही के लिए उन्हें राज्यों के पास भेज दिया जाता है तथा राज्यों द्वारा इस सम्बन्ध में किए गये कार्य है ,जो इस प्रकार से है :

➢ग्रामीण अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित जमीन व मजदूरी के झगड़ो के बारे में सरकार को अवगत कराना व सम्बन्धित कारवाई करना।

➢अनुसूचित जातियों को उनकी जमीन का या उस जमीन का जो उन्हें आवंटित हुई हो उस पर कब्जा दिलाने में सहायता करना।

➢पुलिस अधिकारियों को विशेष आदेश देना कि अनुसूचित जातियों की जमीनों पर अवैध कब्जा के मामलों में हस्तक्षेप करें । उनके विरुद्ध अपराधों को विशेष सूचित मामलों की तरह माना जायें और उनकी शीघ्र सुनवाई और सजा का प्रबन्ध किया जाये। जिसके कारण अनुसूचित जाति की स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है।

लेकिन उनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति में सुधार का प्रभाव आज भी है। जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्र कि अनुसूचित जाति के सामान्य लोगों की स्थिति में आर्थिक सुधार नहीं हो सका। भारत में ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति का लगभग 80 प्रतिशत भाग गाँव में निवास करता है, गाँव में उच्च जातियों के महाजन बड़े भू-स्वामी और प्रभुत्व जाति के लोग आज भी अनुसूचित जातियों के लोगों का शोषण कर रहें है। ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के अधिकांश लोग आज भी अत्यधिक अशिक्षित एवं निर्धन है, अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उच्च जातियों के लोगों से यदि कोई ऋण ले ले तो उसका पूरा जीवन ऋण चुकाने में लग जाता है। उनमें अज्ञानता के कारण उन्हें विकास योजनाओं का लाभ भी नहीं मिल पाता जिनकी सहायता से उनके जीवन में परिवर्तन हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की वर्तमान समस्याओं का मुख्य कारण जागरुकता का अभाव व अशिक्षा है जिसके कारण अनुसूचित जातियाँ आज भी अपने अधिकार का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग नहीं कर पाती है। भारत में अनुसूचित जाति की समस्याओं को सबसे पहले यहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान अनुभव किया गया। यह पहला आन्दोलन था जब डॉ.अम्बेडकर के प्रयत्नों से यह महसूस किया जाने लगा कि अनुसूचित जाति की स्थिति में सुधार किये बिना राष्ट्र की मुख्य धारा से नहीं जोड़ा जा सकता। उसके फलस्वरुप महात्मा गाँधी ने अस्पश्य जातियों को हरिजन अर्थात् **'ईश्वर की संतान'** कहकर उनके सामाजिक, आर्थिक शोषण दूर करने पर विशेष बल दिया। स्वतन्त्रता के बाद जब अस्पृश्य जातियों को अनुसूचित जातियों के रुप मे मान्यता देकर उन्हें संवैधानिक रुप से विभिन्न सुविधाएँ दी गयी तब यह समझा गया कि बहुत जल्दी अनुसूचित जातियों की समस्याएँ समाप्त हो जायेगी। यह सच है कि पहले की तुलना में अनुसूचित जाति की स्थिति में व्यापक सुधार आया है। लेकिन आज भी उनकी अधिकांश समस्याएँ किसी न किसी रुप में बनी हुई है जो निम्न प्रकार से है:

अनुसूचित जातियों की समस्याएं (निर्योग्यताएं) : निर्योग्यताओं का तात्पर्य है-किसी वर्ग अथवा समूह को कुछ अधिकारों या सुविधाओं को प्राप्त करने के अयोग्य मान लेना। भारत में अनुसूचित जातियों की कई निर्योग्यताएं रही हैं। इन निर्योग्यताएं के कारण इन्हें जीवन में आगे बढ़ने और अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं दिया गया। ये निर्योग्यताएं इनके लिए अभिशाप या बहुत बड़ी समस्या के रुप में सिद्ध हुई है। जो निम्न प्रकार से है-

(1) धार्मिक निर्योग्यताए : धार्मिक निर्योग्यताए के अन्तर्गत व्यक्ति वर्ग समूह को मन्दिर में प्रवेश करने तथा अन्य पवित्र स्थानों के उपयोग करने में प्रतिबन्ध था। धार्मिक सुख सुविधाओं से वंचित कर दिया गया। धार्मिक संस्कारों के सम्पादन पर प्रतिबन्ध किया गया तथा जन्म से ही अस्पृश्यों को अपवित्र माना गया है और इसी कारण इनके शुद्धिकरण के लिए संस्कारों की व्यवस्था नहीं की गई है।

(2) सामाजिक निर्योग्यताएं : अस्पृश्यों की अनेक समाजिक निर्योग्यताएं रही हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं:

1. **सामाजिक सम्पर्क पर रोक :** अस्पृश्यों को सवर्ण हिन्दुओं के साथ सामाजिक सम्पर्क रखने और उनके सम्मेलनों, गोष्ठियों, पंचायतों, उत्सवों एवं समारोहों में भाग लेने की आज्ञा नहीं दी गयी। उन्हें उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ खान-पान का सम्बन्ध रखने से वंचित रखा गया।
2. **सामाजिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबन्ध:**अस्पृश्यों को अन्य हिन्दुओं के द्वरा काम में लिए जाने वाले कुओं से पानी नहीं भरने दिया जाता था, स्कूलों में पढ़ने एवं छात्रावासों में रहने नहीं दिया जाता था। उच्च जाति द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं का प्रयोग इनको नहीं करने दिया जाता था।
3. **शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित-** न केवल अस्पृश्यों को बल्कि शूद्रों तक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। इन्हें चौपालों, मेलों तथा हाटों में शामिल होकर अपना मनोरंजन करने का अधिकार नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि समाज का एक बड़ा वर्ग निरक्षर रह गया।

(3) आर्थिक निर्योग्यताएं: अस्पृश्यों को वे कार्य सौंपे गये जो सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा नहीं किये जाते थे। अस्पृश्यों को मल-मूत्र उठाने, सफाई करने, मरे हुए पशुओं को उठाने और उनके चमड़े से वस्तुएं बनाने का कार्य सौंपा गया। इन्हें खेती करने, व्यापार चलाने या शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करने का अधिकार नहीं था। आर्थिक निर्योग्यताओं

के कारण अस्पृश्यों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि इन्हें विवश होकर सवर्णों के झूठे भोजन, फटे-पुराने वस्त्रों एवं त्याज्य वस्तुओं से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ी।

(4) राजनीतिक निर्योग्यताएं: अस्पश्यों को राजनीति के क्षेत्र में सब अधिकारों से वंचित रखा गया है। उन्हें शासन के कार्य में किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप करने, कोई सुझाव देने, सार्वजनिक सेवाओं के लिए नौकरी प्राप्त करने या राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया।

अनुसूचित जाति की उपर्युक्त निर्योग्यताएं मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से विशेष रुप से सम्बन्धित हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति की समस्या प्रमुखत: सामाजिक और आर्थिक है न कि धार्मिक और राजनीतिक। अनुसूचित जाति की निर्योग्यताएं नगरों में समाप्त-सी होती जा रही हैं, परन्तु ग्रामों में आज भी दिखलायी पड़ती हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि ग्रामों में सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी है, रुढ़िवादिता का अभी भी वहां बोलबाला है।

अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में संवैधानिक व्यवस्थाएं : संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए विशेष संरक्षण की व्यवस्था कि गयी है जो इस प्रकार है :

संवैधानिक प्रावधान- संविधान में अनेक ऐसे प्रावधान रखे गये हैं जिसके द्वारा अस्पृष्यता निवारण तथा पिछड़े वर्गो के कल्याण की ओर विशेष रुप से ध्यान दिया जाता है। संविधान के **अनुच्छेद 15(1)** में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इसमें से किसी एक के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। **अनुच्छेद 17** के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त तथा किसी भी रुप में उसका प्रचलन निषिद्ध कर दिया गया है। **अनुच्छेद 19** के आधार पर अस्पृश्यों की व्यवसायिक निर्योग्यता को समाप्त किया जा चुका है और उन्हें किसी भी व्यवसाय को करने का अधिकार है। **अनुच्छेद 25** के अनुसार सभी हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थानों के द्वार सभी जातियों के लिए खोल देने की व्यवस्था की गयी है। **अनुच्छेद 29** के अनुसार किसी भी शिक्षण स्थान में किसी भी नागरिक को धर्म,जाति, वंश अथवा भाषा के आधार पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता है। **अनुच्छेद 46** के अनुसार राज्य दुर्बलतर लोगों जिनमें अनुसूचित जातियां तथा आदिम जातियां आती हैं, की शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितों की रक्षा करेगा और सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण से उनको बचायेगा। **अनुच्छेद 330, 332, और 334** के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के लिए संविधान लागू होने के 20 वर्ष तक लोकसभा, विधान सभाओं, ग्राम पंचायतों और स्थानीय निकायों में स्थान सुरक्षित रहेंगे। बाद में यह अवधि 10-10 वर्ष के लिए तीन बार और बढ़ा दी गयी। **अनुच्छेद 335** के अनुसार संघ या राज्य के कार्यो से सम्बन्धित सेवाओं एवं पदो के लिए नियुक्तियां करने में अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के हितों का ध्यान रखा जायेगा। **अनुच्छेद 146** एवं **338** के अनुसार अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं हितों की रक्षा के लिए राज्य में सलाहकार परिषदों एवं पृथक-पृथक विभागों की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इन संवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गो के उत्थान का सरकार के द्वारा विशेष प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन तहसील हल्द्वानी के ऊँचापुल क्षेत्र के (भगवानपुर जैसिंह) ग्राम की अनुसूचित जाति के लोगों पर सामाजिक, आर्थिक स्थिति की समस्याओं के सम्बन्ध में है। यह क्षेत्र तहसील से लगभग 6 किमी. की दूरी पर है यह एक ग्रामीण क्षेत्र है उत्तर दिशा में स्थित है। जिसके आस-पास हरा-भरा खलियान है। यहाँ अनुसूचित जाति के लोग रहते है। जो आर्थिक, सामाजिक रुप से अपना जीवन यापन करते है। यह एक छोटा सा क्षेत्र है जिसमें अनुसूचित जाति के लोग ही रहते है। वर्तमान में ग्राम की कुल जनसंख्या लगभग 1,371 है।

शोध प्रारुप : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अनुसूचित जाति के लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करना है। अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिये उत्तराखण्ड राज्य के हल्द्वानी तहसील के ऊँचापुल क्षेत्र के भगवानपुर जैसिंह ग्राम के अनुसूचित जातियों के 50 परिवारों का प्रतिदर्श के रुप में चयन किया गया। प्रतिदर्श के चयन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन हेतु इस क्षेत्र का चयन करने का कारण यह रहा कि यहॉ की अधिकाश जनसंख्या अनुसूचित जाति के लोगों की है। तत्पश्चात् साक्षात्कार अनुसूची द्वारा लोगों से जानकारी प्राप्त की गई।

उद्देश्य :

1. अनुसूचित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. अनुसूचित जातियों की समस्याओं का पता लगाना।
3. अनुसूचित जातियों की समस्याओं के समाधान हेतु सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनो द्वारा किए गए कार्यो का अध्ययन करना।

   अनुसूचित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं के प्रभाव को जानने के लिए उत्तरदाताओं के शैक्षिक स्तर को निम्न सारणी द्वारा दर्शाया गया है-

तालिका संख्या : 1

उत्तरदाताओं का शैक्षिक स्तर

क्र. संख्या	शैक्षिक स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत्
1	अशिक्षा	15	30
2	प्राथमिक	10	20
3	हाईस्कूल	15	30
4	इण्टरमीडिएट	05	10
5	स्नातक	03	06
6	स्नात्कोत्तर	02	04
	योग	50	100

तालिका संख्या 1 द्वारा स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में 30 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या 20 प्रतिशत है, हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या 30 प्रतिशत है तथा इण्टरमीडिएट स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या 10 प्रतिशत है। स्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या 06 प्रतिशत है जबकि स्नात्कोत्तर स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या 04 प्रतिशत है।

शिक्षा मुख्य रुप से निरक्षरता से साक्षरता प्रदान करने का माध्यम है जिसको अक्षर ज्ञान हो, जो किसी भाषा को पढ़ व लिख सकता हो, एवं उस पर विचार कर सकता हो। परन्तु शिक्षा सीमित नहीं है यह व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास एवं रोजगार के अवसर प्रदान करने का साधन भी है।

तालिका संख्या : 2

उत्तरदाताओं का व्यवसाय

क्रम संख्या	व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत्
1.	सरकारी सेवा	05	10
2.	मजदूरी	10	20
3.	कृषि	25	50
4.	अन्य	10	20
	योग	50	100

तालिका संख्या 2 द्वारा स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में 10 प्रतिशत परिवारों के सदस्य सरकारी सेवाओं में कार्यरत् हैं। मजदूरी करने वालों की संख्या 20 प्रतिशत है, कृषि कार्य करने वालों की संख्या 50 प्रतिशत् है जबकि 25 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो कि कृषि और अन्य व्यवसाय करके अथवा लघु उद्योग इत्यादि करके आय प्राप्त करते हैं।

अनुसूचित जाति समाज आर्थिक रुप से पिछड़ा हुआ समाज है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वह कृषि व मजदूरी तथा लघु उद्योग करके पूरी करते है। लेकिन अब वह धीरे-धीरे जागरुक हो रहे है कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित अन्य कार्यो के साथ-साथ कलाकृतियों आदि के कार्यो को करने का प्रयास कर रहे है। उनके इन व्यवसायिक कार्यो को नये तकनीकी ज्ञान से जोड़ने की आवश्यकता है, जिससे उनके परिवार की व्यवसाय सम्बन्धित आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकें तथा समाज में उनकी स्थिती में सुधार हो सकें।

तालिका संख्या :3

उत्तरदाताओं का पारिवारिक स्वरुप

क्रम संख्या	परिवारिक स्वरुप	आवृत्ति	प्रतिशत्
1.	संयुक्त	19	38
2.	एकल	22	44
3.	मिश्रित	09	18
	योग	50	100

तालिका संख्या 3 द्वारा स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में 38 प्रतिशत परिवार वालों का पारिवारिक स्वरुप संयुक्त परिवार में रहना है, 44 प्रतिशत परिवारों का पारिवारिक स्वरुप एकल परिवार में रहना है, जबकि 09 प्रतिशत परिवारों का पारिवारिक स्वरुप मिश्रित परिवार में रहना है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने व अधिक सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाने के कारण 44 प्रतिशत् परिवारों का स्वरुप एकल है।

तालिका संख्या : 4

उत्तरदाताओं के खाना बनाने की व्यवस्था

क्रम संख्या	खाना बनाने की व्यवस्था	आवृत्ति	प्रतिशत्
1.	बायो गैस	10	20
2.	लकड़ी/कण्डे	15	30
3.	एल.पी.जी. गैस	25	50
	योग	50	100

तालिका संख्या 4 द्वारा स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में 20 प्रतिशत् परिवारों में खाना बनाने के लिए बायो गैस का प्रयोग किया जाता है, 30 प्रतिशत् परिवारों में खाना बनाने के लिए लकड़ी/कण्डे का प्रयोग किया जाता है तथा 50 प्रतिशत् परिवारों में खाना बनाने के लिए एल.पी.जी. गैस का प्रयोग किया जाता है, अधिकांश परिवारों में खाना पकाने हेतु एल.पी.जी. गैस का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त वे बायो गैस का भी प्रयोग करते है जो कि सरकारी योजनाओं द्वारा निशुल्क बनवाया गया है।

तालिका संख्या : 5

उत्तरदाताओं के बच्चों को स्कूल में मिलने वाली सुविधाएं

क्रम संख्या	बच्चों को स्कूल में मिलने वाली सुविधा	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	नि:शुल्क शिक्षा व भोजन की व्यवस्था	20	40
2.	छात्रवृत्ति की व्यवस्था	30	60
	योग	50	100

तालिका संख्या 5 द्वारा स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में 40 प्रतिशत् उत्तरदाताओं के बच्चों को स्कूल से नि:शुल्क शिक्षा व नि:शुल्क भोजन की व्यवस्था की सुविधा प्राप्त है जबकि उत्तरदाताओं में से 60 प्रतिशत् उत्तरदाताओं के बच्चों को स्कूल से छात्रवृत्ति की सुविधा प्राप्त है।

आज सरकार का प्रयास यह है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित बनाया जाए। प्रत्येक अनुसूचित जाति गांव में एक जूनियर-स्तर की पाठशाला अवश्य हो। यह जनशिक्षा कार्यक्रम, प्रौढ़-शिक्षा, टेलीविजन और रेडियो द्वारा अनौपचारिक शिक्षा इन समाजों को नए आदर्शों और सभ्यता से परिचित कराती है। इन्हें समाज के सुशिक्षित वर्ग तक लाने एवं प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने में सहायता के लिए सरकार द्वारा विशेष छात्रवृत्तियाँ एवं कहीं-कहीं निशुल्क शिक्षा प्रदान की जाति है, जिसके फलस्वरुप आज इन लोगों के शिक्षा के प्रतिशत में ही वृद्धि नहीं हुई है बल्कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति में परिवर्तन का एक अन्य रुप उनके आर्थिक जीवन में बदलाव के रुप में देखने को मिलता है। शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए अनुसूचित जाति क्षेत्रों में नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करना अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

तालिका संख्या : 6

उत्तरदाताओं की आवासीय व्यवस्था

क्रम संख्या	अनुसूचित जाति के परिवारों की आवासीय व्यवस्था	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	कच्चा मकान	40	80
2.	पक्का मकान	10	20
	योग	50	100

तालिका संख्या 6 द्वारा स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में 80 प्रतिशत् परिवारों के कच्चे मकान है जबकि उत्तरदाताओं में से 10 प्रतिशत् परिवारों के पक्के मकान है। अनुसूचित जाति के लोग अधिकतर कच्चे मकानों में रहते हैं। परन्तु सरकार द्वारा चलायी जा रही आवासीय योजनाओं में अब उनको मकान बनाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है जिससे उनके जीवन स्तर को सुधारा जा सकें।

तालिका संख्या : 7

सरकारी चिकित्सा सुविधाओं को प्रदर्शित करने वाली तालिका

क्रम संख्या	चिकित्सा सुविधा	आवृत्ति	प्रतिशत्
1.	लाभ उठाते हैं	25	50
2.	कभी-कभी	15	30
3.	नहीं	10	20
	योग	50	100

तालिका संख्या 7 द्वारा स्पष्ट होता है कि 50 प्रतिशत् उत्तरदाता सरकारी चिकित्सा सुविधाओं का लाभ उठाते हैं, 30 प्रतिशत् उत्तरदाता कभी-कभी सरकारी चिकित्सा सुविधाओं का लाभ उठाते हैं जबकि 20 प्रतिशत् उत्तरदाता ऐसे हैं जो सरकारी चिकित्सा सुविधाओं का लाभ नहीं लेते हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में सचल चिकित्सालयों की व्यवस्था करना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। बसों के अन्दर बने हुए यह चिकित्सालय 10-15 वर्ग किमी. के अन्दर आने वाले सभी गांवों में पहुँचकर प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा प्रदान कर सकते हैं।

तालिका संख्या : 8

सरकारी योजनाओं के लाभ को प्रदर्शित करने वाली तालिका

क्रम संख्या	योजनाओं का लाभ	आवृत्ति	प्रतिशत्
1.	लाभ प्राप्त किया है	20	40
2.	कभी-कभी	25	50
3.	कभी नहीं	05	10
	योग	50	100

तालिका संख्या 8 द्वारा स्पष्ट होता है कि 40 प्रतिशत् उत्तरदाताओं ने सरकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त किया है, 50 प्रतिशत् उत्तरदाताओं को कभी-कभी सरकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त हुआ है जबकि 10 प्रतिशत् उत्तरदाता ऐसे हैं जिनमें कि सरकारी योजनाओं का कभी भी कोई लाभ प्राप्त नहीं किया है।

भारत के संवैधानिक व्यवस्थाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित कर इनमें राजनैतिक चेतना का निरन्तर विकास किया गया। केन्द्र एवं राज्यों में इनके कल्याण हेतु अलग-अलग विभागों की व्यवस्था की गयी है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने, अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार करने तथा उच्च जाति के लोगों के सम्पर्क में आने को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी नौकरियों में स्थान सुरक्षित रखें गये हैं।

निष्कर्ष :

अनुसूचित जातियों को सदैव से समाज के निम्नतम स्तर में रखा गया तथा अछूत मान कर सदियों से उनका शोषण किया जाता रहा

है। शताब्दियों के भेदभाव और शोषण के शिकार अनुसूचित जाति की स्थिती सुधारने के लिए संविधान ने छुआ-छूत को समाप्त किया तथा संवैधानिक प्रावधानों के जरिये समय-समय पर भारत में इन शोषित वर्गों की स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयास किये जाते रहें हैं और आज भी प्रयास किये जा रहें हैं।

क्षेत्र भगवानपुर जैसिंह में एक पिछड़ा हुआ गांव है। इस क्षेत्र में अधिकांशत: अनुसूचित जाति के लोग निवास करते हैं। कुछ समय पहले तक अनुसूचित जाति के लोग इतने अधिक जागरुक नहीं थे, जिस कारण उनका शोषण साहूकारों और महाजनों द्वारा होता था। उनके पास रोजगार भी नहीं था और आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वे अपने बच्चों को स्कूल तक नहीं भेजते थे। परन्तु अब ऐसा नहीं है, अनुसूचित जाति क्षेत्र में स्वास्थ्य, शिक्षा व सरकार द्वारा उपलब्ध अन्य आर्थिक सुविधाओं व कार्यक्रमों के कारण अनुसूचित जाति के लोगों में पहले की अपेक्षा काफी जागरुकता आई है। इस क्षेत्र में शिक्षा के साधनों के अभाव में अधिकांश लोग उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये हैं। नि:शुल्क शिक्षा, पुस्तक, नि:शुल्क भोजन तथा छात्रवृत्ति का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त होने के कारण इस क्षेत्र के लोगों में बच्चों को स्कूल भेजने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। रोजगार गारन्टी योजना द्वारा बहुत से लोगों को रोजगार उपलब्ध हुए हैं जिससे उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में काफी सुधार भी हुआ है। अधिकांश परिवारों में खाना पकाने हेतु एल.पी.जी. गैस का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त वे बायो गैस का भी प्रयोग करते है जो कि सरकारी योजनाओं द्वारा निशुल्क बनवाया गया है। अटल आवास योजना, इन्दिरा आवास योजना आदि के तहत लोगों के कच्चे मकानों के स्थान पर पक्के मकान बन चुके हैं। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए बी.पी.एल. कार्ड बनाये गए हैं, इससे उन्हें अनेक सरकारी लाभ मिल रहे हैं। संविधान की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर अनेक कानून बनाए जाते रहे हैं, अनुसूचित जाति को संरक्षण देने के साथ ही उनका आर्थिक और सामाजिक विकास किया जा सके। विभिन्न राज्यों में इस तरह के कानून बनाए गये हैं, जिससे कोई भी व्यक्ति अनुसूचित जाति की भूमि पर कब्जा न कर सके। आज अनुसूचित जाति एवं जनजाति के व्यक्ति संवैधानिक अनुच्छेदों, नियमों, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं, केन्द्र एवं राज्य सरकार के कल्याण एवं सलाहकर संगठन, विधानमण्डलों एवं पंचायतों में प्रतिनिधित्व तथा आर्थिक उन्नति के अवसर प्राप्त कर अपने सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आरक्षण एवं संवैधानिक प्रावधानों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के परिणामस्वरुप इनमें एक नवीन चेतना का विकास हुआ है तथा उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है। परन्तु यह सिक्के का केवल एक पहलू है, इन प्रावधानों का लाभ केवल शिक्षित-वर्ग ही उठा रहे हैं। इसका दूसरा पहलू यह है कि अधिकांश जरुरतमंद लोग अज्ञानता वश व जागरुकता में कमी के कारण आज भी इन प्रावधानों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं, अत: उन्हें जागरुक करने की आवश्यकता है। एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते भारत सरकार ने समाज के उपेक्षित और कमजोर लोगों के कल्याण के लिए योजना बनाई गयी हैं। आज सरकार को उन कार्यक्रमों पर ध्यान देना चाहिए जो अनुसूचित जाति एवं जनजातीय समुदाय को बाहरी तत्वों द्वारा शोषण से मुक्ति दिलवा सके। शिक्षा, यातायात, उनकी आवश्यकतानुसार साधन, चिकित्सा सुविधाएँ उन्हें उपलब्ध कराई जानी चाहिए। जिससे अनुसूचित जाति का विकास अपनी चरम सीमा पर होगा और उनकी आर्थिक स्थिति और उनके जीवन स्तर में सुधार होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार, मनोज. 2013. 'अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता'. राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 15, अंक 1, जनवरी-जून, पृष्ठ संख्या 140
2. खरे, भावना. 2013.'दलित समाज और शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन'. राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 15, अंक 1, जनवरी-जून, पृष्ठ संख्या 144
3. महाजन, कमलेश और महाजन, धर्मवीर. 'जनजातीय समाज का समाजशास्त्र'
4. गुप्ता, एम. एल.एवं शर्मा, डी.डी.,'समाजशात्र' वर्ष 2013 पृष्ठ संख्या 423
5. मजूमदार एवं मदान : इण्ट्रोडक्शन टू सोशियल एन्थ्रोपोलॉजी
6. घुर्ये, जी.एस. :जाति, वर्ग और व्यवसाय
7. अग्रवाल, जी. के. 2003. 'भारतीय सामाजिक संस्थाएँ'. एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ संख्या 234
8. सागर, भारती. 2013.'धर्मान्तरण और दलित'. राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 15, अंक 1, जनवरी-जून, पृष्ठ संख्या 51
9. घुर्ये, जी.एस.:कास्ट एवं रेस इन इंडिया
10. सच्चिदानन्द : प्रोफाइल्स ऑफ ट्राइबल कल्चर इन बिहार
11. शर्मा, राम शरण : शूद्रों का प्राचीन इतिहास
12. मुकर्जी रवीन्द्रनाथ, :'भारतीय सामाजिक संस्थाएं', 2009
13. संस एण्ड प्रसाद राम, : 'समाजशास्त्र' 1905

राजस्थान की राजनीति में युवाओं का मतदान व्यवहार (16वीं लोक सभा के सन्दर्भ में जयपुर एवं जालौर का तुलनात्मक अध्ययन)

विष्णु कुमार खटुमरा
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

राजस्थान हमारे देश का क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है, जो देश के उत्तर-पश्चिम दिशा में स्थित है। यह भू-भाग प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक कई मानव सभ्यताओं के विकास एंव पतन की स्थली रहा है। एक और वाल्मिकि ने जहाँ राजस्थान को **'मरुकान्तार'** कहा है, वहीं प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने इसे **'रायथान' नाम दिया।** भारत के इतिहास में यह स्थान राजपूताना के नाम से जाना जाता है। जो कि राजपूतो के शौर्य और बलिदान के लिये इतिहास प्रसिद्ध है। राजस्थान प्रशासनिक दृष्टि से 33 जिलों एंव 7 संभागों में विभक्त है।

राजस्थान संसद या लोकसभा के निचले सदन के 25 सदस्यों को भेजता है। राज्य में 25 संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों जिनमें गंगानगर, बीकानेर, भरतपुर और करौली धौलपुर अनुसूचित जाति के लिये आरक्षित हो गया है। उदयपुर और बांसवाडा अनुसूचित जनजाति के लिये आरक्षित है। बाड़मेर राजस्थान में सबसे बड़ा संसदीय क्षेत्र और भारत में दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र है। राज्य में कुछ महत्वपूर्ण संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों में दौसा, जयपुर, अजमेर, जोधपुर और कोटा रहे है। राज्य राज्यसभा के दस सदस्यों को भेजता है। राज्य विधान सभा एक सदनीय है। 1952 में सदस्यों की कुल संख्या 160 थी, वर्तमान में यह 200 है।

राजस्थान का राजनीतिक इतिहास: देशी रियासतों की समस्या को सुलझाने एंव उनके एकीकरण का दुष्कर कार्य सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रभावशाली व्यक्तित्व का परिणाम है। वे आधुनिक भारत के बिस्मार्क हैं। उनकी सूझ-बूझ से भारत का नवनीकरण एकीकरण में बदल गया।लार्ड माउन्ट बेटन की व्यवहारिकता देशी रियासतों के शासकों की देशभक्ति एंव राजनीतिक विभाग के संवैधानिक परामर्शदाता एंव सचिव वी.पी.मेनन का भी अद्भुत योगदान से ही देशी रियासतों का एकीकरण सम्भव हो सका।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर स्वतंत्र के अरुणोंदय तक कई दशकों में राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम कई मोड से गुजरा है।सशस्त्र क्रांति की योजनायें भी इसी राजस्थान की भूमि पर बनी। शोषण और अत्याचार के विरुद्ध जनाक्रोश की ज्वालामुखी भी इसी धरा पर विस्फुटित हुई। अन्नदाता किसानों ने शोषण के खिलाफ बिजौलिया में विद्रोह कर दिया। दिसम्बर 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस के नेतृत्व में अनेक जनआन्दोलन राजस्थान में हुए। राजस्थान में प्रजामंडलों एंव लोक परिषदों ने भरसक प्रयास किये, कि राजस्थान की जनता को शोषण से मुक्ति मिले। प्रखर ध्येय, निष्ठा, अतुलनीय,त्याग, असीम प्रयासों से और लम्बे संघर्ष के परिणाम स्वरुप हुए 15 अगस्त 1947 को पवित्र स्वाधीनता का भास्कर देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस स्वाधीनता के लिये देश के नौजवानों ने उग्र साधना की, धधकती हुई ज्वाला को गले लगाया तथा क्रांति की वेदी पर युवाओं ने स्वंय को अर्पित कर दिया।

सन् 1954 में गठित बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर अक्टूबर 1959 में राजस्थान के

 ISSN 2277-5587

नागौर जिले में त्रि-स्तरीय पंचायत व्यवस्था का प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु द्वारा शुभारम्भ किया गया। राजस्थान पंचायतीराज अधिनियम 1953 की और राजस्थान पंचायत समिति एंव जिला परिषद अधिनियम 1959 के अन्तर्गत राज्य में स्थानीय स्वशासन की रुपरेखा तय की गई। राजस्थान की राजनीति धीरे-धीरे बहुदलीय व्यवस्था के स्थान पर द्विदलीय व्यवस्था में बदलती जा रही है। पिछले डेढ दशक में मतदाताओं का ध्रुवीकरण इस तेजी से हुआ है कि सारे स्थान दो दलों में बंट कर रह गये है। राजस्थान की राजनीति में पारम्परिक जाति एंव वर्ग संगठनों का महत्व है। राजस्थान सरकार का स्वरुप भारतीय संघ की केन्द्र सरकार के स्वरुप के समान ही है। संगठित बीमा एंव बैंक व्यवसाय राजस्थान में स्वतन्त्रता के पूर्व में ही अल्पकाल में विकसित हुआ था। सन् 1940 के बाद राजस्थान में आधुनिक बैंकों की स्थापना आरम्भ हुई। सन् 1953 में राजस्थान राज्य सहकारी समितियां अधिनियम पारित किया गया।

स्वतन्त्रता पश्चात राजस्थान की राजनीति स्थिति: 1956 से राजस्थान राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। राजस्थान के चुनावी इतिहास में कांग्रेस और भा.ज.पा. का वचर्स्व रहा है। 1949 से 1977 तक कांग्रेस सत्ता में थी। 1977 में आपातकाल के बाद कांग्रेस विरोधी भावना के कारण जनता पार्टी भैरोंसिंह शेखावत के नेतृत्व में सत्ता सम्भाली। उसके बाद 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या होने से 1985 में कांग्रेस की विजय हुई।1990 में फिर भा.ज.पा. सत्ता में आई, 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के कारण फिर कांग्रेस सत्ता में आई। लेकिन राष्ट्रपति शासन घोषित किया गया 1993 के बाद से भा.ज.पा. और कांग्रेस बारी-बारी सरकार बना रहे है।

2014 में 16 वीं लोकसभा के आम चुनाव में राजस्थान: राजस्थान की राजनीति का चेहरा बदलेंगे डेढ करोड युवा मतदाता इसलिये भारत के सबसे बडे ओर सबसे पुराने राजनीतिक दल कांग्रेस ने 17 अप्रेल 2014 को होने वाले लोकसभा चुनाव में 40 वर्ष से कम आयु के 32 युवाओं को टिकट दिया है। इनमें 2 राजस्थान मे है। इसी प्रकार देश के दूसरे सबसे बडे दल भाजपा ने 40 वर्ष से कम आयु के 38 युवाओं को टिकट दिया है। जिनमें से 5 प्रत्याशी राजस्थान के है। किसी लोक सभा चुनाव में यह पहला अवसर है। जब इतनी बडी तादाद में युवा मतदाता वोट डालने जा रहे है। राजस्थान में 4.25 करोड मतदाता है।जिनमें इनमें 25 लोकसभा सीटों पर 18 से 19 साल के युवा मतदाता ही 22 लाख से ज्यादा है। 25 साल से कम उम्र के मतदाता 81 लाख है। तो 29 साल से कम उम्र के मतदाताओं की तादाद 1 करोड 42 लाख से अधिक हो चुकी है। अगर 30 साल की उम्र तक के मतदाताओं को देखें तो यह संख्या डे करोड को पार कर जाती है। अगर हम 40 साल तक के मतदाताओं को भी जोड लें तो यह तादाद 2 करोड 33 लाख को पार कर जाती है। जो प्रदेश के कुल मतदाताओं की आधी है। युवा मतदाता दिसम्बर 2013 में प्रदेश की सियासत का चेहरा बदल चुके है।आमतौर पर जातिगत आधार पर प्रदेश का चुनावी परिदृश्य बनता है। लेकिन प्रदेश की सियासत में पहली बार मतदाताओं ने जातिगत आधार पर सोशल इंजीनियरिंग करने वाली कांग्रेस को इस तरह 200 में से 179 सीटों पर रिजेक्ट किया। लेकिन अब प्रदेश में कांग्रेस ने अपनी कमान केन्द्रीय मंत्री सचिन पायलट जैसे युवाओं को सौंपी है। पायलट को प्रदेशाध्यक्ष बनाया गया है। देश में ऐसे युवाओं (18 से 35वर्ष)की संख्या 47 प्रतिशत हो गई हैं इसलिये इनकी राजनीतिक भूमिका भी बढ गई है। राजस्थान में 4.25 करोड मतदाता है। इनमें ऐसे युवाओं का प्रतिशत 50 है, जो 18 से 35 वर्ष की है। 16 वीं लोकसभा में राजस्थान से करीब 22 लाख मतदाता पहली बार वोट डालेंगें जिनकी उम्र 18 से 19 वर्ष के है। 25 साल से कम उम्र के मतदाता 81 लाख है, तो 29 साल से कम उम्र के मतदाताओं की संख्या 1 करोड 42 लाख से अधिक है 30 साल की उम्र तक के मतदाता लगभग डेढ करोड को पार कर जाती हैं। अगर 40 साल तक की उम्र के मतदाताओं की संख्या करीब 2 करोड 33 लाख को पार कर जाती हैं। यही कारण है कि नगरीय निकायों के चुनावों में कांग्रेस ने 40 प्रतिशत सीटों पर टिकट युवाओं को देने का निर्णय लिया था।

संसदीय सीट : 25, मतदान दिवस संख्या-2, मतदान की तिथियां-17 अप्रेल 2014 और 24 अप्रेल, मतदान केन्द्रों की संख्या-47223, मतदान केन्द्र स्थानों की संख्या-34711, कुल मतदाता-4,07,26,177, महिला मतदाता 47.33 प्रतिशत (6 जनवरी 2014), प्रति उम्मीदवार चुनाव खर्च की सीमा 70 लाख रुपये, राजस्थान में 63 प्रतिशत मतदान हुआ। (**"18 जून 2014 में प्रकाशित रिपोर्ट।"**)

जयपुर चुनाव : जयपुर राजस्थान की राजधानी है। तथा गुलाबी नगर के नाम से प्रसिद्ध है। जयपुर देश में 10 दंसवा सबसे अधिक आबादी वाला जिला है। राज्य के उत्तर पूर्वी भाग में स्थित है। जयपुर की कुल जनसंख्या 3,073,000 करोड है। जयपुर का लिगांनुपात 1000 पुरुषों पर 898 महिला है। जिसमें 74 प्रतिशत हिन्दु है। जयपुर में कुल साक्षरता दर 76.44 प्रतिशत है। जिसमें पुरुष साक्षरता दर 65 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 88 प्रतिशत है। जयपुर की लोकसभा सीट में 8 विधानसभा क्षेत्र शामिल हैं। जयपुर के कुल मतदाताओं की संख्या 16,84,541 है। जिसमें से 7,65,100 पुरुष मतदाता एंव 9,19,441 लाख महिला मतदाता के है।

जयपुर की शहरी सीट : कई मायनों में खास रही, यहां विद्याधर नगर से 1लाख 59 हजार मत मिले भा.ज.पा. प्रत्याशी को जो लोकसभा चुनाव में विधान सभा सीट पर किसी एक पार्टी को मिले वोटों में

सर्वाधिक हैं। रामचरण बोहरा 5 पांच लाख 39 हजार 345 के अन्तर से जीते, रामचरण बोहरा जितने बडे अन्तर से चुनाव जीते है, पांच प्रत्याशी उससे कम वोट पाकर जीत गए। 1952 से अब तक जयपुर में जीत का सबसे बडा अन्तर है। जयपुर से जीते रामचरण बोहरा को नरेन्द्र मोदी से भी ज्यादा वोट प्राप्त हुए। बोहरा को मिले 8,63,358 वोट मिले है। जबकि मोदी को बडोदरा से 8,45,464 वोट तथा 5,81,022 वोट प्राप्त हुए। जयपुर लोकसभा सीट पर डाले गये 5 पांच हजार 794 पोस्टल वोटों में से भा.ज.पा. प्रत्याशी रामचरण बोहरा को 3 तीन हजार 385 वोट मिलें।

जयपुर की ग्रामीण लोकसभा सीट: पर भा.ज.पा. प्रत्याशी कर्नल राज्यवर्द्धन सिंह ने कांग्रेस से दुगने से ज्यादा वोट लिये तथा कांग्रेस के प्रत्याशी सी.पी. जोशी को 3,32,896 वोटों से हराया है। हर विधानसभा सीट पर जीत का अन्तर 2 से 3 गुणा बढा है। जयपुर में सांगानेर विधानसभा सीट के लोगों ने सबसे ज्यादा 1346 ने नोटा के बटन को दबाया। सबसे कम 783 बार नोटा का बटन हवामहल सीट पर दबाया गया। सांगानेर की 3 तीन तथा 1 एक मालवीय नगर की ई.वी.एम.का डाटा नही खुला था। इनमें से दो मशीनों का डाटा तो इंजीनियरों की सहायता से खोल लिया गया था, किन्तु दो मशीनें तो अन्त तक भी नही खुल पाई।

जालौर चुनाव: जालौर निर्वाचन क्षेत्र वर्ष 1952 में बनाई गई थी। जालौर का क्षेत्रफल 10640 वर्ग किलोमीटर है। 2011 की जनगणना के अनुसार जालौर की कुल जनसंख्या 18,28,730 लाख है, इसमें पुरुष जनसंख्या 9,36,634 लाख है, तथा 8,92,096 महिला जनसंख्या है। जनसंख्या वृद्धि दर 26.21 प्रतिशत है। जनसंख्या घनत्व 172 है। जालौर की जनसंख्या राजस्थान की जनसंख्या का अनुपात 2.67 प्रतिशत है। जालौर में पांच उपइकाईयां अथवा तहसील है। बादरजंन उपतहसील है। सात 7 पंचायत समितियां है।जसवन्तपुरा और छीटलवना वित्तिय वर्ष 2012-2013 में तहसीलों की घाषणा की गई। जिले में 264 गांव और ग्राम पंचायत है। 672 राजस्व गांव है। तीन नगर पालिका जालौर, भीनमाल और सांचौर है।

16वीं लोकसभा का चुनाव भारतीय चुनाव प्रगति/विकास का परिचायक है। मई 2014 में 16वीं लोकसभा में भारतीय जनता पार्टी को 282 लोकसभा सीटों का एक बडा हिस्सा प्राप्त हुआ। तथा भाजपा नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठन्धन को लोकसभा की कुल 543 सीटों में से 334 सीटें मिली थी। दूसरी ओर सयुंक्त प्रगतिशील गठबन्धन को 60 सीटें ही मिली। इन चुनावों का केन्द्र बिन्दु बने मतदाता का व्यवहार और भारतीय राजनीति की बदलती प्रवृति। मतदान व्यवहार मुख्य रुप से एक देश में मतदाताओं के बहुमत की राजनीतिक व्यवहार का एक प्रकार है। मतदाता के व्यवहार की समझ के स्पष्ट समझना कि क्यों और कैसे सार्वजनिक निर्णय निर्माताओं के लिये अपने निर्णय लेने के लिये आसान है। राजनीतिक नेता और उनके आदेश भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करते है। या भविष्यवाणियों से भी मतदाता के व्यवहार के बारे में अनुमान लगाया जाता हैं। इन कारकों के अतिरिक्त धर्म, नस्ल, जाति और लिंग भी विचार में शामिल होते है। 16 वीं लोकसभा चुनावों का केन्द्र बिन्दु बने मतदाता के व्यवहार और भारतीय राजनीति की प्रवृत्ति बदलने का सकेंत था।

युवा शक्ति किसी भी देश के लिये वरदान भी हो सकती है, और अभिशाप भी। निर्भर करता है, कि हम इस शक्ति का उपयोग किस प्रकार करते है। सुकरात ने ठीक ही कहा था, कि "वही देश उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता हैं, जिसके मार्गदर्शक, शिक्षक और अभिभावक युवाओं में देश, समाज और मानवता के संस्कारों का निर्माण करता है।" प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी जब देश की कमान संम्भाली थी, तो युवा-शक्ति में विश्वास व्यक्त करते हुए, उस पर गर्व महसूस किया था। साथ ही देश की उन्नति के लिये युवा-शक्ति का आव्हान भी किया था। आज देश की कुल आबादी 125 करोड के आस-पास पहुंच चुकी है। उल्लेखनीय हे, कि कुल आबादी का 50 प्रतिशत 25 वर्ष से कम आयु वर्ग का है। 65 प्रतिशत लोग 35 वर्ष से कम उम्र के है। इस तरह हमारे देश में 15 से लेकर 35 वर्ष के युवाओं की जनसंख्या 51 करोड के आस-पास है। देखा जाय तो आज आधी से ज्यादा जनसंख्या युवा वर्ग की है। अगले आने वाले 10 वर्षो में युवा जनसंख्या 60 करोड के आस-पास तक पहुंच जायेगी। ये आंकडे हमें सचेत करते है, कि हम युवा-शक्ति की अनदेखी न करें। उनके विचारों को समझें और उन्हें उचित मार्गदर्शन भी दें। उनके लिये उचित शिक्षा, रोजगारों और सुविधाओं का प्रबंध करें। उन्हें देश की स्थिति से विवेकपूर्ण ढंग से अवगत कराते हुए, देश की उन्नति में भागीदार बनाएं।

लोकसभा चुनाव 2014 के आम चुनाव में युवा मतदाताओं (18-25 वर्ष आयु) की संख्या बहुत ज्यादा है। हॉल के अनुमानों के मुताबिक युवा मतदाताओं की संख्या 2009 में हुए पिछलें लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को मिले कुल वोंटो की तुलना में बहुत ज्यादा है। यह वाकई बहुत बडा फर्क है। युवा मतदाताओं की संख्या को ध्यान में रखते हुए इस चुनाव में लगभग सभी राजनीतिक दल इन्हे अपने पक्ष में करने के लिये पसीना बहा रहे है। सोशल मीडिया से लेकर हर उस मंच का इस्तेमाल कर रहे है। जो युवाओं को आकर्षित कर सकते हैं।उन्हे लगता है,कि चुनाव में हार या जीत में इन्ही मतदाताओं के वोट निर्णायक साबित होंगे। इसलिये राजनीतिक पार्टियाँ अपनी जीत के लिये युवा मतदाताओं या पहली बार वोट देने वालों पर बहुत ज्यादा निर्भर है। अपने प्रचार को उन्ही पर केन्द्रित किये है। भारतीय वोटर की जाति व वर्ग की पहचान अन्य पहचानों से बहुत ज्यादा मजबूत है। कुछ हद तक धर्म ओर क्षैत्र की पहचान भी असर डालती

है। इसलिये भारतीय युवा भी एक वर्ग के रुप में मतदान नहीं करता है। अपितु जाति, धर्म और क्षेत्र में अन्य मतदाताओं की तरह विभाजित होकर मतदान करता है। बेरोजगारी, महगांई या महगी होती उच्च शिक्षा जैसे अन्य मुद्दों पर एक जूट होकर मतदान नहीं करता है। सेटंर फॉर स्टडी ऑफ डवलपिंग सोसाइटीज (C.S.D.S.) द्वारा पिछलें कई वर्षो में कराये गये अध्ययन से प्राप्त आकंडे यही बतातें हैं कि पिछले पांच लोकसभा चुनावों(1996,1998,1999,2004, और 2009)में युवाओं ने कभी भी किसी राजनीतिक दल कके पक्ष में थोक बंद मतदान नहीं किया है। अन्य मतदाताओं की तरह यह भी विभिन्न राजनीतिक दलों में बटॉ हुआ ही पाया है।

परिवर्तन की लहर: इस निर्वाचन में भारतीय मतदाताओं की यथा-स्थिति को समाप्त करने तथा सत्ता में परिवर्तन करने की प्रबल आकांक्षा ने काग्रेंस को भारी क्षति पंहुचाई। इससे समाजवादी तथा साम्यवादी तथा गैर साम्यवादी विपक्षी दलों को भारी लाभ हुआ। सभी विपक्षी दलों ने अपनी शक्ति में वृद्धि की। सारे देश के मतदाताओं की यही मानसिकता थी और विपक्षी दलों ने जहां भी काग्रेंस का सशक्त विकल्प खडा किया, उसे मतदाताओं का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। ऐसी परिवर्तन की लहर पहलें कभी नही देखी गई। विपक्षी दलों की स्थिति का पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है। देश की राजनीति में 30 साल के बाद किसी राजनीतिक दल अर्थात भाजपा को पूर्ण बहुमत मिला और देश को स्थिर सरकार।

आजाद भारत में जन्में पहले प्रधान् मंत्री और कोई मां अपने बेटे को पहली बार प्रधान मंत्री बनते देखेगी। 16वीं लोकसभा में 125 युवा चुनाव जीते इनमें से 55 भाजपा से है। सबसे कम आयु की युवा सांसद वो भी महिला हिना गावित है,यह भाजपा के टिकट पर नंदूरबार महाराष्ट्र,से चुनी गई है। महिलायें 54 जीती इनमें से भी 25 भाजपा से है। 16वीं लोकसभा में 315 लोग पहली बार सांसद बने है।कांग्रेस का अपने इतिहास में पहली बार इतना बुरा प्रदर्शन। देश भर में कुल 44 सीटें ही मिलीं।किसी भी राज्य में दहाई अंक को नहीं छू पाई। कांग्रेस के 94 मंत्री चुनाव हारे। मुस्लिम प्रभाव वाली 92 सीटो में से 41 सीटें भाजपा कसे मिली। यूपी से पहली बार किसी भी दल का मुस्लिम नहीं जीता। 196 सीटे जीतने के बाद भी 07 राज्य ऐसे हैं जिनमें भाजपा खाता नहीं खोल पाई और 12 राज्य ऐसे है जिनमें में कांग्रेस खाता नहीं खोल पाई। एनडीए ने कुल 336 सीटें जीती इनमें से 282 भाजपा की है। गत चुनावों में एनडीए ने 176 सीटे जीती थी, जिनमें से 160 भाजपा की थी। 2009 में भाजपा का वोट शेयर 18.8 प्रतिशत 2014 में वोट शेयर बढकर 33.7 प्रतिशत पर पहुंच गया। 13 राज्यों से बढकर 21राज्यों तक फैली भाजपा। मध्यप्रदेश,राजस्थान, छत्तीसगढ, गुजरात, पंजाब, गोवा 6 राज्यों में राज्य सरकार भी भाजपा की है। मोदी को बडोदरा से 8,45,464 वोट ओर वाराणसी से 5,81,022 वोट मिलें। देश में मोदी सर्वाधिक अंतर से जीतने वाले पहले पीएम प्रत्याशी बने।जयपुर के चुनावी इतिहास में 1952 के प्रथम चुनाव से अब तक यह सबसे बडा अंतर है रामचरण बोहरा का।जयपुर में आठों विधानसभा क्षेत्रों में सांगानेर विधानसभा सीट के 1346 लोगों ने सबसे ज्यादा नोटा का बटन दबाया। देश में कुल 81.5 करोड वोटरों में से 12 करोड वोटर 18-23 वर्ष की आयु वाले।देश में पहली बार वोट देने वाले 20 प्रतिशत, टीनएज 18-19 वर्ष की आयु के वोटर 2.6 करोड है। पहली बार वोट देने वालों के कारण झारखंड में मतदान 55.28 प्रतिशत से बढकर 62.62 प्रतिशत रहा। इसी प्रकार राजस्थान में 2009 में 48.40 प्रतिशत वोटिंग हुई जो इस बार 2014 में बढकर 62.90 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार दिल्ली, महाराष्ट्र, ओर केरल में भी 16वीं लोकसभा में गत चुनावों की तुलना में वोटिंग वृद्धि नोट की गई। भाजपा को देश में मिलें 33 फीसदी वोट। तथा 18-23 वर्ष की आयु वाले युवाओं ने दिये 39 फीसदी वोट एनडीए को मिले 45 फीसदी वोट। सबसे ज्यादा युवा वोटरों वाली 15 सीटों में से 10 भाजपा को मिलीं, इस तरह युवा इस बार गेम चेंजर के रुप में साबित हुए। युवाओं को राहुल से दस गुना भरोंसा मोदी पर आमतौर पर चुनाव और राजनीति से बेरुखी रखने वाले वही युवा न सिर्फ वोट देने पहुंचे, अपितु भाजपा को पूर्ण बहुमत तक पहुचाने में अहम भूमिका भी निभाई। मोदी को भाजपा के लिये जितने वोट देशभर से मिलें, उस औसत से 6 प्रतिशत ज्यादा सर्मथन युवाओं का मिला।देश के अधिकांश राज्यों में युवाओं ने बढ चढकर खुद को वोटर के तौर पर रजिस्टर कराया और मतदान किया तथा उत्तरप्रदेश, बिहार, और महाराष्ट्र, जैसे राज्यों में पहली बार पार्टी, जातिय और समुदायों से जुडकर वोट देने की परंपरा को तोडा। देश में चार फीसदी वोटों के अतंर से सरकारें बनती और गिरती रही है। वहां युवाओं ने कांग्रेस को 19 फीसदी और भाजपा को 39 फीसदी वोट देनेा निर्णायक हो गया। 66 प्रतिशत सीटि भाजपा को एक लाख से अधिक वोंटो के अतंर से मिली, ये युवा वोट का असर था। काग्रेंस की यह ऐतिहासिक हार हैं। यह स्थिति देश की राजनीति में बदलाव लाएगी।

राजस्थान में 43 हजार ऐसे युवा वोटर हर लोकसभा सीट पर जुडे इस चुनाव में जिनकी उम्र18-19 वर्ष है।यह जहां-जहां भी जुडे वहां-वहां इसका लाभ सिर्फ भाजपा को ही मिला है। देश भर में 1.80 लाख वोटर हर सीट पर जुडे है, जिनकी उम्र 18-23 वर्ष के बीच है। यानि पहली बार वोट देने वाले युवा। इनमें सं 66 प्रतिशत युवा गांवों में तथा 34 प्रतिशत युवा शहरों में है। शहरी युवाओं ने तो सोशल मीडिया पर पूरे चुनावों के दौरान खुद को प्रकट किया। नरेन्द्र मोदी ने इस जीत के लिये रोजाना 13 घंटे प्रचार किया 3 लाख कि. मी की यात्राएं कि और 477 रैलियां निकाली। 38.8 करोड महिला वोटर है। इस समय देश में इनमें से 65 प्रतिशत महिलाओं ने मत का प्रयोग किया। युवा वोटरों कि भांति महिला वोटरों की संख्या भी जिन राज्यों

में बढी वहां भी इसका फायदा भी भाजपा को ही हुआ। क्योंकि महिलाओं को मोदी लगे ज्यादा भरोसेमंद। इस बार 54 महिला सांसद है। 1 लाख से ज्यादा मतों से जीतें भाजपा के 206 उम्मीदवार और 5 लाख से बडे अंतर से जीते 5 भाजपाई। युवा और महिलाओं के साथ-साथ दलितों के वोट भी भाजपा की जीत में महत्वपूर्ण रहें। मुस्लिम बहुल 92 सीटों में से 38 पर भाजपा और 3 पर शिवसेना ने जीत दर्ज कि। राजस्थान में भाजपा को मिलें 55.61 प्रतिशत वोट ओर पूरी की पूरी 25 सीटे भी। 21 प्रतिशत 3,27,911 वोट पडे नोटा को। राजस्थान में चली मोदी की आंधी के पीछे सबसे बढा हाथ युवाओं का रहा,युवा मतदाताओं ने आगे बढकर वोटिंग की और पूरे माहौल को बदल दिया। मोदी सरकार में 10 दस मंत्री ऐसे है, जिनकी उम्र 50 से कम हैं।

16वीं लोकसभा के लिये चुनाव अप्रेल मई 2014 में रिकार्ड 9 नौ चरणों में सम्पन्न हुआ। ये चुनाव कुल 545 सीटों में से 543 सीटों के लिये सम्पन्न हुए, 2 सीटों पर नामांकित किये गये। सभी निर्वाचन क्षेत्रों में मतगणना 16 मई 2014 को हुई। इन चुनावों में पहली बार नोटा दबाने (None of the Above) का विकल्प मतदाताओं को उपलब्ध कराया गया। इन चुनावों में पंजीकृत मतदाताओं की कुल संख्या 81.46 करोड थी। इसमें 42.67 करोड पुरुष और 38.79 करोड महिला मतदाता थी जो विश्व में सर्वाधिक है। जबकि पिछले चुनावों में यह संख्या 71.30 करोड थी। अकेले भा.ज.पा. को पूर्ण बहुमत, अर्थात 30 साल बाद स्थिर सरकार को मतदाता ने मतदान किया। एन.डी.ए. को 336 सीटें प्राप्त हुई जिनमें से 282 भा.ज.पा. की है।

युवाओं ने बदल दी सोच: परमरागत वोटर व वंशवाद राजनीति ही अब तक चुनावों में जीत का आधार मानी जाती रही है। लेकिन इस बार युवाओं ने इससे ऊपर उठते हुए स्वतंत्र रुप से मतदान किया। राजनैतिक पार्टियों के आकाओं द्वारा अब तक प्रत्याशियों की जाति के साथ परम्रागत वोट की स्थिति को देखते हुए टिकट दिया जाता रहा है। इस बार सोशल मीडिया ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज का युवा संचार साधनों के माध्यम से हर मुद्दे से जुडता,समझता और उस पर अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करता है। यही कारण रहा कि युवाओं ने पारिवारिक सोच को छोड कर देश के विकास, भ्रष्टाचार, महंगाई, आर्थिक विकास, स्वतंत्रता के मुद्दों पर हर पार्टी को नापा और तोला है। फिर अपने सोच व समझ के साथ मतदान को बेकार की औपचारिकता मानने वाला युवा इन चुनावों में सबसे पहले मतदान केन्द्रों तक पहुंचा और चुनावी रण में युवा ने कदमताल मिला ली है। इसलिये राजनीतिक पार्टियों ने 25 से 35 वर्ष के युवाओ पर भरोसा किया है, तथा टिकट में उन्हें प्राथमिकता दी है। फिर चाहें वह नेता पुत्र, पुत्री, अथवा बहु हो। 16वीं लाकसभा चुनावों के परिणामों के बाद अब शायद पार्टियों की सोच में भी बदलाव आयेगा क्योंकि 2014 के लोकसभा चुनाव में 125 युवा चुनाव जीते, जिनमें से 25 भा.ज.पा. से है।

जिम्मेदार समझे जाने वाले प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तो नकारात्मक दिखाने की जैसे होड ही मच गई हो हमारी युवा-शक्ति को मालूम होना चाहिये कि जापान, यूरोप की औसत आयु 48 वर्ष, अमरीका की 45 और चीन की 37 वर्ष हो गई है। हमारे देश के युवाओं की औसत आयु 28 से 30 वर्ष के आस-पास है। अवसर खूब है। देश में बाहरी निवेश से उद्योग-धन्धे और रोजगार के अवसर बढेगें। ऐसे में निराशा के बादल छंटने ही चाहिये।

16वीं लोकसभा के बाद होने वाले हर चुनावों में सोशल साइट्स प्रचार-प्रसार का प्रमुख माध्यम बन गया है। एक और जहां फेसबुक, वाट्स एप सहित अन्य सोशल साइट्स पर प्रमुख पार्टियां अपनी-अपनी उपलब्धियां गिनाकर समर्थन की अपील कर रहे है, वही दूसरी और बागी उम्मीदवार व उनके समर्थक एक दूसरे पर अरोप-प्रत्यारोप लगाकर भडास भी निकाल रहे है। यद्यपि परम्रागत प्रचार के तरीके यानी घर-घर जाकर जनसम्पर्क करना और बैनर पोस्टर लगाकर प्रचार करना भी जारी है। लेकिन इन चुनावों में प्रचार सामग्री पर सोशल साइट्स भारी है। मोबाइल फोन पर मैसेज भेजकर समर्थन मांगा जा रहा है।

साराशं: देश के विराट लोकतन्त्र की समझदार जनमत को सलाम, कोटि-कोटि नमन, जिसने सारे जाति, धर्म जैसे मुद्दों को छोडकर विकास के लिये उम्मीदों को, उज्जवल भविष्य को अपना मत दिया। साथ ही कमजोर, लंगडी सरकार की जगह स्पष्ट बहुमत से सक्षम सरकार दी। उपरोक्त शोध में विशेष रुप से यह जानने का प्रयास किया जायेगा की 16वीं लोकसभा में युवाओं की जो महत्वपूर्ण भूमिका रही उसके लिये कौन-कौन से कारण उत्तरदायी है तथा युवा भविष्य में होने वाले चुनावों में भी क्या इसी प्रकार अपनी जागरुकता का परिचय देगें। इसी प्रकार चुनावों में रुचि लेकर मतदान करेगें।अपनी सवेंदनशीलता देश के प्रति इसी प्रकार बनायें रखेगें, या यह मात्र एक सयोंग है। लेकिन एक आशा तो बन्धी है, कि युवाओं से युक्त यह डिजीटल भारत अब अपनी जिम्मेदारियों को समझ गया है और अब यह रुकने वाला नहीं है। यह सकेंत सकारात्मक है। वर्तमान भारत अब पीछे मुड कर नहीं देखेगा। तथा लोकतान्त्रिक क्षेत्र में भारत अपनी एक नई पहचान स्थापित करेगा। आने वाले समय में भारत न केवल आर्थिक क्षेत्र में बल्कि लोकतान्त्रिक क्षेत्र में भी भारत विश्व का प्रेरणा स्त्रोत बनेगा और इस आधार पर हम कह सकते है, कि भारत का भविष्य उज्जवल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कर्नल टॉड : एकात्मक राजस्थान, पृष्ठ सं. 297*
2. *सुखवीर गहलोत : राजस्थान के इतिहास का चित्रण, पृष्ठ सं. 3*
3. *डॉ.वी.एस.भार्गव : राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ सं. 30*
4. *डॉ.जी.एन.शर्मा : राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ सं. 92*

5. डॉ.वी.एस.भार्गव : राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ सं. 33.
6. व्यास एंव डॉ गोयल : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण सिग्नेचर बुक्स इन्टरनेशनल, दिल्ली 2013, पृ.192.
7. डॉ. उम्मेद सिंह इन्द्रा : ''राजस्थान में स्वाधीनता संघर्ष,राज्य शासन एंव राजनीति, राजस्थानी ग्रन्थावार जोधपुर, पृष्ठ.सं. 81,82,85.
8. सिंह, डॉ. निशांत और सारस्वत, स्वप्निल,(2008) : लोकतन्त्र और चुनाव सुधार, राधा पब्लिकेशन नईदिल्ली, पृष्ठ सं. 32व36
9. सिंह, डॉ. इन्द्रा उम्मेद(2007) : भारतीय लोकतन्त्र दशा एंव दिशा, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, पृष्ठ सं.22,23,
10. आर्तिमा वाजपेयी : भारतीय निर्वाचन पद्धति'' एक समीक्षा, नार्दन बुक सेन्टर दिल्ली 1992, पृष्ठ. सं.-111
11. आर. पी. जोशी : भारत सरकार एंव राजनीति

ब्रिटिश कालीन अजमेर प्रांत की आर्थिक स्थिति

बनवारी लाल यादव,
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद राजस्थानी रियासतों व ब्रिटिश प्रशासित अजमेर प्रान्त की प्रशासन व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। इन परिवर्तनों के पूर्व सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित रहती थी, किन्तु ब्रिटिश सत्ता द्वारा लाये गये परिवर्तन के फलस्वरुप आंशिक रुप से सत्ता का विकेन्द्रीकरण दिखाई देता है। प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा में कार्यान्वित किये गये नये नियमों का सर्वाधिक प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में पड़ा, क्योंकि अजमेर प्रांत की प्रशासनिक व्यवस्था के साथ ब्रिटिश सरकार के आर्थिक हित जुड़े हुये थे। कुल मिलाकर ब्रिटिश सरकार के प्रशासनिक व आर्थिक नियमावली से अजमेर प्रांत की आम जनता के आर्थिक हित बुरी तरह से प्रभावित हुए।[1] परवर्ती मुगलकाल में लेकर सन् 1818 तक अजमेर सूबें पर मराठों का शासन रहा। उन्होने किसानों से लगान वसूली की इस्तमरारदारी व्यवस्था लागू की। इस व्यवस्था से किसानों की हालत खराब होने लगी, क्योंकि इस्तमरारदार से मराठा जितना अधिकतम कर ले सके, उतना कर लेने का दबाव डालते थे। इस्तमरारदार भी बढे हुए लगान का अधिकतम भार किसानों पर डालकर अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री कर लेते थे। वे स्वयं के लगान का भाग भी किसानों के लगान में जोड देते थे। ऐसा करने से किसानों के आर्थिक हितों को भारी क्षति पहुंचती थी। मराठा शासन के अन्तर्गत किसानों से लगभग 40 प्रकार की लागबाग मेरवाडा के किसानों से वसूल की जाती थी। इसके अलावा इस्तमरारदार अपनी तरफ से स्थायी लागबाग अलग से लागू करते थे।[2]

मुगलकाल में अजमेर सूबा में सूबेदार या नाजिम समय समय पर बदलते रहते थे। मराठों ने इस्तमरारदारो को राजस्व गावों का स्थायी मालिक बनाकर उनके पद को वंशानुगत कर दिया बशर्ते वे समय पर लगान जमा कराते रहें। इस प्रकार की व्यवस्था में किसानों को इस्तमरारदार की दया पर पूर्णत छोड दिया गया।[3]

अंग्रेजी शासन में भी मराठों की चलायी गयी भू राजस्व व्यवस्था को अपनाया गया। मेरवाडा प्रदेश की जमीन अरावली पर्वतमाला के कारण पथरीली व उबड खाबड होती है। जिसमें अधिकांशत खेती वर्षा पर निर्भर करती है। वर्षा आधारित फसल से अंग्रेजों को लगान देना असंभव कार्य था। कर्नल डिक्सन नामक अंग्रेज अफसर ने भले ही राजस्व आय बढाने के मकसद से ही सही, सिंचाई के आधुनिक व परंपरागत साधनों को पुर्नजीवित व नये निर्माण करने का इस प्रदेश में बीडा उठाया। अंग्रेजी सरकार यह कार्य मे आदिवासियों के अपराध में भूमिका कम करने व उनके आय के स्त्रोत बढाकर स्वयं के कानून व्यवस्था बनाने में होने वाले व्यय में कमी करना चाहती थी। ऐसा करने में अंग्रेजी सरकार सामान्यत: सफल भी रही।[4] मेजर डिक्सन की 1841 की रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी सरकार ने कर्नल डिक्सन की अनुशंसा पर 6 नये जलाशयों को स्वीकृति दी। इन 6 जलाशयों की क्रियांविति के परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे। मेजर डिक्सन के बनायें जलाशयों से पिछले 6 वर्ष के दौरान 80,597 रुपये के राजस्व की वृद्धि अजमेर मेरवाडा प्रांत के खाते में दर्ज की गयी। आमजन को भी 282.816 रुपये की राजस्व की प्राप्ति हुई।[5] मेजर डिक्सन के इन उत्कृष्ट कार्यो का गर्वनर जनरल इंडिया पर इतना सकारात्मक प्रभाव पडा कि सन् 1842 में 20526

 ISSN 2277-5587

रुपये द्वारा 5 नये जलाशयों की वित्तिय स्वीकृति प्रदान की गयी। लेफ्टिनेंट कर्नल सदरलैण्ड के अनुसार इन जलाशयों के निर्माण से आमजन की वास्तविक, आर्थिक उन्नति हुई है, अकाल का भय दूर किया गया व पडौसी रियासतों के सामने एक अच्छे कार्यो की नजीर पेश की गयी। इससे आमजन हेतु रोजगार का विस्तार भी हुआ व सरकारी राजस्व को सुरक्षित बनाया गया।[6] सन् 1842 में मेजर डिक्सन के नेतृत्व में अजमेर प्रांत में 60 नए कुंए खोदे गए। वर्षा अपर्याप्त होने की स्थिति में जलाशयों से सिंचाई की गई। 15 सितम्बर 1842 के मेजर डिक्सन को सदरलैण्ड के पत्र से ज्ञात होता है कि सन् 1842 में मेजर डिक्सन द्वारा अजमेर मेरवाडा प्रांत के आठ पुराने तालाबों की मरम्मत करवायी गयी।[7]

नये कृषि सुधार बिल लाने से पूर्व विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों की इस संबध में राय ली जाती थी। एक राजस्व अधिकारी मिस्टर सुंदर के अनुसार नया कुंआ निर्माण करने पर 20 वर्ष तक उस पर कोई सिंचाई कर नही लिया जाना चाहिए। केप्टन रेप्सन ने इस हेतु 12 वर्ष ही पर्याप्त माने थे। कर्नल ब्रुक के अनुसार एक पूर्ण सेटलेमन्ट के समय तक सरकारी आदेश के द्वारा सिंचाई कर से मुक्त किया जाना चाहिए।

अंत में गर्वनर जनरल भारत सरकार के द्वारा इसे ही स्वीकृति प्रदान की गयी।[8] एक पुरानी प्रशासनिक परंपरा के अनुसार जिस व्यक्ति के पास व्यक्तिगत कुआं जलाशय आगोर में हो, उसे जलाशय पानी के उपयोग पर रोक लगा दी जाती थी, इस बात की ब्रिटिश अधिकारियों ने पालना की। कुंआ सिंचित भूमि से भूराजस्व दर भी उत्पादन का 1/6 रखी गयी, जो काफी उदार थी। इस प्रकार के प्रयासों द्वारा ब्रिटिश सरकार द्वारा कुंआ खुदवाने व निर्माण को प्रोत्साहन दिया गया।[9] सेटलमेन्ट ऑफिसर लाइस ने सन् 1872 में किसानों के हेतु कुंए खुदवाने की अनुशंषा की। अंग्रेज मेरवाडा प्रांत के किसान फसल के मूल्य व स्वयं के सामान्य व्यय जोडनें के पश्चात् प्राप्त योग व लगान के बीच अन्तर को पाटने के लिए साहूकारों से उंची ब्याज पर ऋण लिया करते थे। साहूकार का ग्रामीण समाज में घनाढय वर्ग होने के कारण इनका सामाजिक रुतबा भी उंचा था। ये किसान की लगान के अलावा अन्य दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते थे।

साहूकार बनिया फसल पकने के पश्चात् खेत पर पहुंचकर थोडे अन्न के अलावा सम्पूर्ण अनाज बैलगाडियों में भरवाकर गोदाम पर लाता तथा मामूली मूल्यों पर फसल खरीदकर सूद जमा करता था। हमेशा सूद फसल मूल्य पर भारी पडने से ब्याज लगातार बढता रहता। इस प्रकार यह सूद खोरी पीढी दर पीढी चलती जिससे किसान फसल ऋणग्रस्ता के चंगुल में फस जाता। उस समय साक्षरता केवल शासक वर्ग व वणिक वर्ग तक ही सीमित थी, जिससे किसान ब्याज की दरों के बारे में नही समझ पाने से वणिक ब्याज की उंची दर लगाने का हमशा प्रयत्न करता था।[10] किसानों के पास कृषि के अलावा आय का जरिया दुधारु पशु व यातायात के पशु थे, जिन्हे वे मामूली दामों में बेचकर अपनी आय बढाने का प्रयत्न करते थे। इन सभी प्रकार के पशुओं की बिक्री एक निर्धारित स्थान पर ही हुआ करती थी, जिसने धीरे धीरे एक बडे पशु मेले का रुप ले लिया, ऐसा ही अजमेर प्रांत के नसीराबाद कस्बे के पास मेला भरता था।[11] सरकार भी अपनी अपनी आय बढानें हेतु ऐसे पशु मेलों को प्रोत्साहन देती थी। पुश्कर मेले में सांस्कृतिक आयोजन व प्रशासनिक व्यवस्था के वित्तीय वहन हेतु पुष्कर मेला फण्ड की स्थापना की गई थी।[12] ब्रिटिश शासन काल में अजमेर मेरवाडा प्रांत में विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना हुई।

ब्रिटिश सरकार द्वारा एकाधिकृत नमक उद्योग हेतु निर्मित नमक नीति के मुख्य रूप से तीन उद्धेश्य थे-(1) प्रत्येक प्रकार के नमक तथा खारे नमक के उत्पादन पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करना, (2) किसी भी ऐसे नमक को जिस पर ब्रिटिश नमक कर नही चुकाया हो, व्यापार का माध्यम न बनने देना, और (3) किसी भी राज्य में जितना भी नमक हो, उस नमक पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त करना। इसलिए ब्रिटिश सरकार राजस्थानी राज्यों के समक्ष या तो उनके राज्य के नमक स्त्रोतों को खरीदने का प्रस्ताव करती या फिर उस पर ब्रिटिश नमक कर वसूल करना चाहती थी। नमक संधियों से राजस्थान में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधीन नई शोषणात्मक नीति का श्रीगणेश हुआ। जोधपुर राज्य से हुई नमक संधियो के बाद जोधपुर को भीषण आर्थिक परेशानी उठानी पडी। वस्तुतः इन शासको ने संधियों और समझौतों के दूरगामी परिणामों को नही समझा तथा उन्होने एक गुलाम भावना का प्रदर्शन करते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता के समक्ष घुटने टेक दिये। राजस्थानी शासकों ने राज्य के आर्थिक हितों की बलि चढानें तक में भी जरा संकोच नही किया।[13] अफीम की खेती को प्रोत्साहित कर उससे मुनाफा कमाने की नीति, साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण का ही एक अंग थी। इससे अफीम की खेती करने वाले किसानों को कोई लाभ नही हुआ। किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य कभी नही मिला, जबकि बाजार में अफीम की कीमत प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही थी। अफीम की खेती को प्रोत्साहित करने का एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि अन्न उत्पादन के क्षेत्र कम होते गये। इससे राज्यों के अन्न भण्डार कम होते गये और अकाल के दिनों में हजारो लोग और मवशी मारे गये। अफीम की खेती के कारण मवेशियों के लिए चारे की भी कमी हो गई। राज्य सरकारों तथा ब्रिटिश सरकार ने अपने आर्थिक हितों के लिए किसानों के हितों की बलि चढ़ा दी।

यूनाइटेड प्रेसबीटेरियन चर्च के डॉ. मेकगिल ने भारत के सचिव के नाम एक पत्र में लिखा कि राजपूताना में अन्नाभाव का एक मुख्य कारण यह है कि दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान के जो उपजाऊ मैदान कुछ वर्षो तक अन्न उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे, अब अफीम की खेती के केन्द्र बन गये है।[14] अंग्रेजो के समय से पूर्व भूमि से माता का सम्बन्ध मानकर बेचने का सख्त परहेज था, परन्तु अंग्रेजों के भारी भरकम लगाने की चुकाना किसान के कृषि फसलों के बेचान से असम्भव

था। अत: अंग्रेजों के शासनकाल में अजमेर सूबे में भूमि का नकद हस्तान्तरण प्रारंभ हुआ। एक बार जमीन बेचान के पश्चात् उसके पास आय का स्थायी स्त्रोत भी खत्म हो गया। धीरे धीरे सारी भूमि जमींदारों व किसानों के हाथों से निकलकर सूदखोर साहुकारों के पास पहुंचने लगी। इस भंयकर दयनीय घृणा व स्त्रोतहीन मजदूरी का अंत सन् 1857 की क्रांति के रुप में विस्फोट हुआ जिसमें किसानों की विद्रोहियों के साथ गहरी सहानुभूति थी।

15 सन् 1836 के पश्चात् अजमेर सूबे के दीवानी फौजदारी व न्यायिक प्रशासन का भार मराठों व राजपूतों से अंग्रेजी सरकार पर हस्तान्तरित हो गया। चाहे शासन वर्ग किसी भी धर्म को मानने वाला हो उसे अपने अजमेर सूबे की विभिन्न धर्मावलम्बी जनता को निष्पक्ष न्याय प्रदान करने की व्यवस्था करनी पडती थी। अजमेर की गरीब नवाज दरगाह व ब्रह्मा मंन्दिर की व्यवस्था भी अंग्रेजों ने अपने हाथ में कमान संभाली। इन दोनों स्थानों पर नाम मात्र के व्यय के पश्चात् असीमित आय सरकार को होती थी, जो राजस्व प्राप्ति का महत्वपूर्ण स्त्रोत बन गया। कम्पनी सरकार को ब्रिटेन में धार्मिक नीति में कोई परिवर्तन नही के निर्देश के चलते इन व्यवस्थाओं से पांव वापस खींचने पडे। तत्कालीन समय के किसान को ग्रामीण समाज का सदस्य होने के चलते विभिन्न सामाजिक धार्मिक रस्म जैसे मानव जन्म पर जडुला, वयस्क होने पर विवाह व मृत्यु संस्कार बाद मौसर या गंगोज कर परम्परा निभानी पडती थी। इनका पालन करना प्रत्येक गरीब से गरीब व्यक्ति के लिए अनिवार्य था, जिसके कारण किसान एकदम से आये आर्थिक भार के नीचे दब जाता था।[16]

1857 ई. में ए.जी.जी. ब्रेडफोर्ड के इंगलैण्ड चले जाने के बाद कर्नल वाल्टर को, जो 1879-87 ई. के मध्य मेवाड़ में रेजीडेण्ड रहा, कार्यवाहक ए.जी.जी. बना दिया। उसने राजपूत समाज में प्रचलित कुरीतियों की तरफ यहां के शासकों का ध्यान आकर्षित करने का निश्चय किया। उसने राजपूत समाज में व्याप्त कुरीतियों को स्पष्ट करते हुए कहा कि इस जाति में टीका, नुकता, चारणों-भाटों को त्याग, विवाह आदि के अवसरों पर अनावश्यक अधिक धन खर्च किया जाता है, जिससे धनी तो निर्धन होते ही है, निर्धन भी ऋण के बोझ से दब जाते है। धनाभाव के कारण कई बार जमीन गिरवी रखनी पडती है। अत: फिजूल खर्च और ब्राह्म आडम्बरों से बचना चाहिए। जिस जाति की आर्थिक स्थिति खराब होती है, वह उत्तरोतर पतन की ओर अग्रसर होती है। इसलिए कुरितियों में सुधार करना आवश्यक है। इन विचारों को व्यक्त करते हुए अक्टूम्बर 1857 ई. में उसने राजस्थान के सभी राज्यों के पोलिटिकल अधिकारियों को एक पत्र भेजकर प्रत्येक राज्य से एक अधिकारी, एक चारण और एक जागीरदार को मार्च, 1888 ई. में अजमेर भेजने के लिए लिखा। 9 मार्च, 1888 तक भरतपुर, धौलपुर और बाँसवाड़ा को छोडकर सभी राज्यों के प्रतिनिधि अजमेर में एकत्र हुए। सभी ने मृत्युभोज (नुकता) सम्बन्धी खर्च को कम करने तथा लडके-लडकियों की विवाह योग्य आयु निश्चित करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये। अगले वर्श 22 फरवरी, 1889 ई. को अजमेर में पुन: राज्यों के प्रतिनिधि एकति हुए, जिसमें कुछ नियम पारित करने के अलावा इस सभा का नाम 'वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा' रखा गया।[17]

ब्रिटिश सरकार द्वारा नया सार्वजनिक निर्माण करते समय अर्थिक कारणो यथा ग्रामीण विधालय खोलते समय प्रस्तावित जगह के चारों ओर आबादी, जनसंख्या के अनुपात के अनुसार तात्कालिक तथा लागत कम करने हेतु अस्थायी आवासो को स्थाई ग्रामीण आवास में बदलने को प्राथमिकता दी।[18]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासनकाल में अजमेर प्रांत के किसानों, आमजन व जमींदारों की आर्थिक स्थिति खराब थी, तथा विभिन्न सामाजिक कुरूतियों, कृषि ऋणग्रस्ता, अंग्रेजों के आर्थिक हितों को शोषित करने वाली नई कृषि नीति के कारण अपनी आर्थिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय सुधार नही कर पाये। वे ब्रिटिश सरकार की औद्योगिक क्रांति, रेल्वे का विस्तार व अंग्रेजी सरकार के विश्वव्यापी नेटवर्क से कोई फायदा नही उठा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा कालूराम, राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2016, पृ0 369*
2. *केवेडिश का राजपूताना रेजीडेंट व गर्वनर जनरल को पत्र, 10 जुलाई 1828*
3. *भूमिका राजपूताना गजेटियर्स, लायल, 1876*
4. *जोशी, राजेन्द्र, उन्नीसवी शताब्दी का अजमेर, पेज 218, 1972 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर*
5. *पत्र क्रमाक 1413, 3 नवम्बर 1842, एजीजी सदरलैण्ड का भारत सरकार सचिव मेडार्क अरस्युन को पत्र भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली*
6. *फॉरेन डिपार्ट, 21 जून 1843, क्रम स.72 भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली*
7. *फारेन डिपार्ट - अक्टूम्बर 1872, क्रम स0 3/15 भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली*
8. *पत्र क्रमांक 106, दिनाक 24 अप्रेल 1872, सेटलमेन्ट ऑफिसर अजमेर लाटूस का कमिश्नर को पत्र, भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली*
9. *पत्र क्रमांक 2421, अजमेर, 20 मई, 1872 रेप्सन डिप्टी कमिश्नर अजमेर का कमिश्नर को पत्र भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली*
10. *शर्मा कालूराम, राजस्थान का इतिहास, पृ. 219*
11. *फाईल्स, 2 (3)34 1869, RSA बीकानेर*
12. *फाईल्स, 2 (3)23 1882, RSA बीकानेर*
13. *शर्मा कालूराम, राजस्थान का इतिहास, पृ. 386-389*
14. *शर्मा कालूराम, राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2016, पृ0 393*
15. *लाटूरा बंदोबस्त रिपॉर्ट 1874, पृष्ठ 99*
16. *लाटूरा बंदोबस्त रिपॉर्ट, 1874, पृष्ठ 86, अनुच्छेद 204,*
17. *शर्मा, व्यास राज. का इतिहास पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2016 पेज 359-60*
18. *फाईनेन्स डिपार्टमेन्ट चीफ कमिश्नर अजमेर के नाम पत्र, 13 अक्टूम्बर 1874, अंक 32, भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली*

दो विभीषिकाओं के मध्य उत्तर भारत में भाग्यवाद, ज्योतिष और उसका प्रभाव (1030 ई.-1192 ई.)

डॉ. देशराज वर्मा
डॉ. वी.पी.एस. कॉलेज, फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

प्राचीन काल से ही भारत की अतुल्य धन सम्पदा विदेशियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है। भारत पर बाह्य विदेशी आक्रान्ताओं का प्रारम्भ छठी शताब्दी ई.पू. में हखमनी आक्रमण से हुआ और यह सिकन्दर हिन्द-यवन, शक, पहलव, हूण, अरब, तुर्क एवं मुगलों तक जारी रहा। आरम्भ में बाह्य विदेशी आक्रमणों के समय राष्ट्र के शासकों एवं जनता ने राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया, इस कारण विदेशी आक्रमणकारी यहाँ से धन सम्पदा को लूट ले गये लेकिन स्थायी साम्राज्य की स्थापना नहीं कर पाये। दो विभीषिकाओं के मध्य (1030-1192ई.) का काल, 1030 ई. में तुर्क महमूद गजनवी की मृत्यु से आरम्भ होता है और यह मुहम्मद गोरी के तरायन के द्वितीय युद्ध (1192ई.) तक का अध्ययन है। इस काल में महमूद गजनवी की मृत्यु 1030ई. के बाद मुहम्मद गौरी के 1175 ई. के आक्रमण तक भारतीयों को 145 वर्षों तक बाह्य विदेशी आक्रमणों से राहत मिली लेकिन इस शान्तिकाल का भारतीय शासक कोई लाभ नहीं उठा सके, बल्कि भारतीय शासकों ने आपस में छोटी-छोटी बातों पर लड़कर इस स्वर्णिम अवसर को गँवा दिया। परिणाम स्वरुप 1192ई. में मुहम्मद गोरी ने तरायन के द्वितीय युद्ध में दिल्ली के शासक पृथ्वीराज तृतीय को पराजित कर दिया। तुर्कों से भारतीय शासकों की असफलता के लिए राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कारण उत्तरदायी थे। इन कारणों में भाग्यवाद और ज्योतिष में अटूट विश्वास ने भारतीय शासकों की पराजय में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतीय शासक युद्ध अभियान के लिए शुभ महूर्त की प्रतिक्षा करते थे, चाहे विदेशी आक्रमणकारी उन पर अचानक ही आक्रमण कर दे। भाग्यवाद एवं ज्योतिष में अटूट विश्वास के कारण वे अपनी असफलताओं को ईश्वर की इच्छा या भाग्य का फैसला मानकर स्वीकार कर लेते थे। भारतीयों पर भाग्यवाद एवं ज्योतिष के इस प्रभाव के कारण ही असफल होने पर वे बाह्य विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध एकजुट नहीं हो पाये। उन्होंने अपनी पराजय को भाग्य फल मानकर स्वीकार कर लिया।

भारत की आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक और बौद्धिक श्रेष्ठता प्राचीन काल से ही विदेशियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है। छठी शताब्दी ई.पू. में हखमनी या पारसीक राजा डेरियस प्रथम के आक्रमण से भारत पर बाह्य आक्रमणों का क्रम प्रारम्भ हुआ, वह सिकन्दर, हिन्द-यवन, शक, पहलव, हूण, अरब, तुर्क व मुगलों तक जारी रहा। विवेच्य काल का आरम्भ 1030ई. में तुर्क महमूद गजनवी की मृत्यु से होता है, महमूद की मृत्यु के बाद भारतीयों को 145 वर्षों तक (1030-1175ई.) भारतीयों को विदेशी आक्रमणों से राहत मिली। इस शान्ति ने भारतीयों को अपनी सामाजिक एवं राजनैतिक संरचना को पुनर्गठित करने, राजपूत एवं क्षेत्रीय राजाओं को विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने हेतु संगठित होने और पारस्परिक द्वेषों को मिटाने का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। इस प्रकार भारतीयों को पर्याप्त समय मिला ताकि वे अपने क्षेत्रीय दृष्टिकोण को छोड़कर राष्ट्रहित में अपने घर को सुव्यवस्थित कर सकें, लेकिन भारतीय

शासकों ने इस अवसर का कोई लाभ नहीं उठाया। वे राष्ट्रीय सुरक्षा समस्या को पुन: रचनात्मक रुप देने में असफल रहे। इस समय क्षेत्रीय शासक आपस में छोटी-छोटी बातों पर लड़ते झगड़ते रहते थे। इस कारण भारतीय जनता का इन शासकों के प्रति कोई लगाव नहीं था। सन् 1175 में जब तुर्क मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किया तो भारतीयों ने पूर्व की भाँति निराशाजनक चित्र प्रस्तुत किया। परिणामस्वरुप मुहम्मद गौरी ने सन 1192 ई. में उत्तर भारत के सबसे शक्तिशाली दिल्ली अजमेर के राजपूत शासक को पृथ्वीराज तृतीय को पराजित कर दिया। विदेशी तुर्कों से भारतीयों की असफलता के लिए राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि अनेक कारण उत्तरदायी थे। भाग्यवाद और ज्योतिष भी भारतीय शासकों की असफलता का एक प्रमुख कारण था जिसने दो विदेशी आक्रमणों के मध्य भारतीय शासकों को प्रभावित किया।

साहित्य और ज्ञान की उन्नति के बाद भी लोगों का भाग्यवाद ज्योतिष, जादू टोना आदि में विश्वास था। प्राचीन भारतीय अर्थवेद में अभिचार, सम्मोहन, पीडन, वशीकरण, मारण आदि का वर्णन है जिसने इस विश्वास को और दृढ़ किया। परिणामस्वरुप विवेच्यकाल में भी लोगों का जादू टोना, भाग्यवाद और ज्योतिष में विश्वास था। कुमारपाल प्रबन्ध से पता चलता है कि पूर्व शाप के कारण राजा को कुष्ठ हो गया था। हेमचन्द ने इस रोग को जटिल बताया था, क्योंकि यह पूर्व पाप के कारण उत्पन्न हुआ था। इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि साधारण जनता ही नहीं अपितु राजा एवं उच्च समाज में उपर्युक्त विश्वास प्रचलन में था।

लक्ष्मीधर तथा शुक्रनीतिसार के रचयिता शुक्र ने भी भारतीय समाज में भाग्य के प्रभाव को स्वीकार किया था। दोनों का ही विश्वास था कि किसी भी व्यक्ति के जीवन में सफलता या विफलता उसके पूर्व जन्मों में किये गये कर्मो के फलस्वरुप[1] ही प्राप्त होती है। जब एक बार भाग्यवाद को स्वीकार कर लिया गया तो फिर उसे हटाया नहीं जा सका। समाज में सभी वर्गो के लोग शुभ और अशुभ शकुनों तथा भाग्यशाली तथा भाग्यहीन ग्रहों में विश्वास करते थे। क्षेमेन्द्र ने कला विलास के नवें सर्ग में ज्योतिषियों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली दुष्टतापूर्ण क्रियाओं की ओर प्रबुद्ध नागरिकों का ध्यान आकृष्ट किया है। परन्तु प्रबुद्ध नागरिकों की प्रतिक्रिया इस प्रकरण में क्षीण रही। इस काल में शकुनों पर आधारित ग्रन्थ समुद्र तिलक का प्रारम्भ सत्र 1160ई. में शासक दुर्लभराज द्वारा किया गया तथा उसका समापन उसके पुत्र जगदेव द्वारा किया गया। इसी समय जगदेव ने स्वप्नों पर आधारित एक अन्य ग्रन्थ स्वप्न चिन्तामणि की रचना की। भाग्य, ज्योतिष, शुभ अशुभ शकुनों में विश्वास के कारण लोगों का सामान्य ज्ञान और बुद्धिमता अपने निम्नतम बिन्दु पर पहुँच गयी थी। रामायण, मत्स्य पुराण तथा मनुस्मृति आदि साहित्यिक कृतियों में वर्णित उद्धरणों के आधार पर लक्ष्मीधर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भाग्यवाद, कायर तथा अकर्मण लोगों का धर्म है। शुक्रनीति सार का लेखक भी ऐसे लोगों की प्रशंसा करता है जो भाग्य पर विश्वास न करके अपने परिश्रम पर विश्वास करते हैं।

राजदरबार में ज्योतिषियों की स्थिति स्पृहणीय (ईष्यालू) रहती थी। डॉ. डी.सी. सरकार ने राजाओं[2] द्वारा ज्योतिषियों की नियुक्ति पर स्मृतियों तथा नीतिशास्त्र की संस्तुतियों का उल्लेख किया है। अरब तथा पश्चिमी देशों[3] की भाँति गहडवाल[4] नरेशों ने भी अपने दरबार में ज्योतिषियों की नियुक्ति की थी।

प्राचीन काल से ही भारत आर्थिक रुप से सम्पन्न था। भारतीयों की यही सम्पन्नता विदेशियों के लिए आकर्षक का केन्द्र रही। प्राचीन काल से ही भारत पर विभिन्न विदेशी आक्रमण हुए लेकिन उन आक्रमणों के समय भारतीय शासक एवं जनता ने राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। भारत में तुर्क आक्रमणों के समय यह स्थिति बदल गयी। भारत पर प्रथम तुर्क आक्रमण महमूद गजनवी ने किया। वह यहाँ से धन सम्पदा लूट कर चला गया। 1030ई. में गजनवी की मृत्यु के बाद भारतीयों को पर्याप्त समय मिला कि वे अपनी आपसी द्वेष ईष्या को समाप्त कर संगठित हो सके, अपनी उत्तर पश्चिमी सीमा का सुदृढ़ कर सकें लेकिन इस स्वर्णिम अवसर का भारतीयों ने कोई लाभ नहीं उठाया। महमूद गजनवी की मृत्यु के बाद 145 वर्षो तक भारतीय शासक केवल अपने क्षेत्रीय स्वार्थो के लिए लड़ते-झगड़ते रहे। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय भी भारतीयों शासकों ने निराशाजनक चित्र प्रस्तुत किया। परिणाम स्वरुप गोरी ने पृथ्वीराज चौहान तृतीय को पराजित कर दिया।

भारतीय शासकों की इस असफलता में भाग्यवाद, ज्योतिष, शुभ-अशुभ शकुनों में विश्वास ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भाग्यवाद शुभ अशुभ शकुनों में विश्ववास से समाज के सभी वर्गो में एक निषेधात्मक विचारधारा विकसित हो गयी थी। बाह्य आक्रमणों के समय भारतीय शासक तथा सेनापति अभियान पर जब तक नहीं जाते थे, जब तक शुभ मर्हूत का समय न हो जाये। चाहे इस शुभ मर्हूत के कारण कितनी भी क्षति क्यों न हो जाये। इस प्रकार भारतीय शासक ज्योतिष, भाग्यवाद, शुभ अशुभ शकुनों के विचारों के कारण पराजित हुए, लेकिन इसके बावजूद भी, उन्होंने कोई सबक नहीं लिया। जबकि ज्योतिषियों के कथन तथा देश के भविष्य के लिए उनकी सलाह व्यर्थ साबित हो रही थी। ज्योतिष और भाग्यवादी प्रभाव के कारण भारतीयों की धारणा ऐसी हो गयी कि वे जो कठिन और कष्टकारी जीवन व्यतीत कर रहे थे, उसे उन्होंने ग्रहों का दुष्प्रभाव तथा पूर्व जन्म के कर्मो का फल माना। इसी भाग्यववादी विचारधारा ने बाह्य विदेशी आक्रमणों के समय भारतीय शासकों एवं जनता में आत्मसंतुष्टी की भावना विकसित कर दी।

भारतीय शासक और जनता युद्ध में विफलता को भाग्य का फैसला,

ईश्वर की ईच्छा, गृह-नक्षत्रों का दुष्प्रभाव मानकर सन्तुष्ट होने लगे थे। इसलिए वे देश की रक्षा के लिए कोई भी महत्वाकांक्षी योजना न बना सके और न ही त्वरित या दीर्घकालिक सैनिक अभियान के लिए स्वयं को तैयार कर सके। इस प्रकार भारतीय शासकों एवं जनता के भाग्यवाद, ज्योतिष एवं शुभ-अशुभ शकुनों में अटूट विश्वास ने उन्हें तुर्क आक्रमणकारियों का सामना करने में हतोत्साहित किया। परिणामस्वरुप भारत में तुर्कों का स्थायी साम्राज्य स्थापित हो गया।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. *राज. पृ. 171, शुक्रनीतिसार (सं. कलकत्ता) I, 47 तथा 49 I. सरकार ख 97-104*
2. *इण्डियन हिस्टोरिकल कार्टरली, कलकत्ता XXVIII पृ. 346-47*
3. *हसकिन्स दी रिनेसन्स ऑफ ट्वेल्क्थ सेंचुरी पृ. 54, हित्ती- हिस्ट्री ऑफ अरब*
4. *इपिग्राफिका इण्डिका खख II 362; XI-24: XIV 194; XXIV 294; XXVI 73, 271 आदि।*

बीकानेर की हवेलियों का अनुपम स्थापत्य

डॉ. ऋतुराज
पोस्ट डॉक्टोरल फैलो, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

राजस्थान का इतिहास चिरकाल से उज्वल और गौरवमय रहा है। यह वीरता एवं शौर्य की क्रीड़ास्थली रहा है। लेकिन जिन गुणों ने इसके इतिहास को गौरवान्वित किया है तथा इसे अमरत्व प्रदान किया है, वे मात्र शौर्य और वीरत्व ही नहीं हैं, अपितु उनके प्रेरक वे आदर्श और जीवनमूल्य हैं, जिन्होंने उनकी वीरता को एक अनूठी गरिमा और महिमा से मंडित कर दिया है। यहाँ वीरता की जो अपनी निराली परम्परायें रही हैं, उनके पीछे इन्हीं उत्कृष्ट आदर्शों एवं जीवन-मूल्यों की प्रेरणा रही है, जिन्होंने राजपूत जाति को एक उच्च सांस्कृतिक पीठिका पर प्रतिष्ठित कर दिया है। त्याग और उत्सर्गमूलक इन वीरोचित परम्पराओं के प्रेरक आदर्शों में मातृभूमि प्रेम, स्वतन्त्रता, स्वामिभक्ति, स्वाभिमान, शरणागत-वत्सलता, वचन-निर्वाह, स्वधर्म-निष्ठा तथा नारी के शील एवं सतीत्व की रक्षा आदि प्रमुख हैं, जिनके लिए इस धरती के बेटों ने बड़े त्याग को भी तुच्छ समझा है। राजस्थान का इतिहास वस्तुत: उपर्युक्त ऐसे ही आदर्शों की रक्षार्थ उत्सर्ग होने वाले वीरों का अमिट आख्यान है।[1]

मानव मात्र की अमृत प्राप्ति की इच्छा ही विभिन्न प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृतियों के विभिन्न रुपों में रुपायित हुयी है। किलें, भवन, हवेलियां, मकबरे, समाधि, छतरियां आदि इस महत्वाकांक्षा के विविध रुप है।

बीकानेर एक ओर तो अपने प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की धरोहरो को समेटे हुआ है तो दूसरी ओर आधुनिक मारवाड़ी सेठों के आकर्षक हवेलियों के लिये पर्यटन का मार्ग प्रशस्त करता है। बीकानेर राजस्थान के उत्तर पश्चिम में है। यह रियासत जांगल देश या रातीघाटी के नाम से भी जानी जाती है। यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक की जन्मभूमि है और यह अनुमान भी सहज किया जा सकता है कि यह संस्कृति 'नाली' संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से सर्व शक्तिमयी थी।[2] इस क्षेत्र का अन्वेषण सबसे पहले इटली के पुरातत्वविज्ञ एल.पी. तैस्सीतोरी द्वारा सन् 1916-17 में किया गया।[3]

यह जिला थार के रेगिस्तान में स्थित है। बीकानेर के स्थापना 1488 में जोधपुर नरेश राव जोधा के पुत्र राव बीकाजी ने की थी। 1485 ईस्वी में बीकाजी ने वर्तमान बीकानेर के रातीघाटी में दुर्ग बनवाना आरम्भ किया तथा अपनी सत्ता की विधिवत् स्थापना की। जोधपुर के बाद बीकानेर ही राठौड़ो की सत्ता का केन्द्र रहा है। राठौड़ वंश के शासकों को शासन यहां 1455-1943 तक रहा। बीकानेर में किलों के साथ-साथ भवन और हवेलियां बनाने की परम्परा का विकास इसके निर्माण काल से ही हुआ है। जो उंची उंची पहाड़ियों के उपर बनायी जाने लगी। जिनकों मध्ययुगीन युद्धशैली को ध्यान में रखकर बनाया गया।[4] राजपूतों से मुगलों के संबंध स्थापित हो जाने के बाद राजभवनों, हवेलियों को भव्य रोचक तथा क्रमबद्ध बनाने की प्रक्रिया आरम्भ हुयी। इन हवेलियों को पारिवारीक स्थापत्य का स्वरुप समन्वय के माध्यम से परखा जा सकता है।[5]

बीकानेर में लाल पत्थर से बनी कलात्मक हवेलियों का अपना एक अलग ही मुकाम है। मरुभूमि में सीना ताने खड़ी इन हवेलियों की शान बने भारी भरकम उभारदार झरोखे, नक्काशीदार दरवाजें, बारीक कोरणी

 ISSN 2277-5587

युक्त जालियां विशेष प्रकार से बने तहखाने कला सृष्टि में महलों को एक तरफ बैठाते दीवानखानें, सुनहरी आर्ट व फूल पत्तियां आदि सभी मिलकर एक ऐसा खूबसूरत वातावरण प्रस्तुत करते है कि जिससे बीकानेर की विश्व में एक अलग ही शान और पहचान बनती है।

बीकानेर की हवेलियां 100 से 400 वर्ष पुरानी है लेकिन इनकी शान और वकार आज तक कायम है। हवेलियों के बाहरी पथरीले चेहरे पर की गयी शानदार कोरणी इनके सौन्दर्य को चार चांद लगा देती है। झरोखे, बारीक छज्जवाल आदि सभी देखने लायक है।6 बीकानेर पर्यटन केन्द्र हवेलियों के बाहरी दृश्यों में सर्वाधिक आकर्षित करने वाली चीज है झरोखे। झरोखों पर गुलाब और अन्य फूल पत्तियों के समूह उकेरे जाते हैं। जो नजाकत और नफासत प्रस्तुत करते हैं।

किसी भी हवेली व उसके स्वामी के वैभव व ऐश्वर्य को देखना हो तो उसके दीवानखाने या मॉल (हॉल) के दर्शन कर लीजिए दीवानखाने बैठक हेतु प्रयुक्त होते हैं। यदि स्थान हो तो महिलाओं के लिये अलग व पुरुषों के लिय अलग। वरना एक ही दीवानखाने में थोड़ा-सा भाग महिलाओं के लिए रख दिया जाता है।

हवेली की दीवारों पर भी गुलाब की बेलें, लताएं आदि बनी हुयी देखी जा सकती है। कई हवेलियों के दीवानखानों की दीवारों के प्राकृतिक सौन्दर्य को परिलक्षित करती सिनहरियों व लक्ष्मी जी, रिद्धी-सिद्धी, गणेशजी आदि देवताओं के चित्र भी बने हुये होते है। राधा कृष्ण के युगल चित्र तो सभी हवेलियों में अवश्य ही देखने को मिलते है। जो इन हवेलियों की एक बड़ी विशेषता है।

रामपुरिया परिवार की हवेलियां :

बीकानेर की प्रमुख हवेलियों में रामपुरिया परिवार की हवेलियां, जिसमें *भंवरलाल जी रामपुरिया की हवेली* प्रमुख है। यह इस मामले में अनूठी है कि चाहे हवेली का बाहरी चेहरा हो चाहे अन्दरुनी भाग सभी कुछ विशेष है। इस हवेली का बाहरी चेहरा लाल पत्थर से बना है जिस पर शानदार झरोखे, दिल लुभाती जालियां और उन पर की गई शानदार नक्काशी देखते ही बनती हे। इसका बरामदा 4 गुणा 200 फीट है तथा उंचाई 15 से 16 फीट है।

हीरालाल रामपुरिया की हवेली : यह हवेली बारीक नक्काशी के लिये जानी जाती है और अपनी विशालता के लिये ज्यादा। लंबा चौड़ा आंगन, एक आनन्ददायक खुलापन, आयताकार आंगन, चारो ओर बने हुये बरामदे जिनमें 30-40 धार्मिक चित्र इसकी मनोरम छटा बिखेरते है।

माणकचन्द रामपुरिया की हवेली : इनकी कला पत्थर से बनी नक्काशी युक्त दीवारे, कलात्मक झरोखे, सुन्दर कलाकृतियां अपनी खामोशी से कई इतिहास कई कहानियां कई रंगीनियां बयान करती है।[7]

डागा परिवार की हवेलियां :

महेश्वरी डागा की अनेक हवेलियां अपने चारो तरफ संजोये हुये चौक, पिछली दो शताब्दियों से बीकानेर के सामाजिक कार्यकलापों, राजनीतिक उठापटक और शानदार निवास स्थानों का केन्द्र रहा है। कुछ हवेलियों की कारीगरी उनका शिल्प, उनकी उत्कृट परंपरा को आज भी उजागर करता है। इनमें से एक सुन्दर सी हवेली है लक्ष्मीनारायण डागा की हवेली। बीकानेर के राजदरबार में भी इस हवेली का बड़ा उंचा स्थान था।

मोहता परिवार की हवेलियां :

तेलीबाड़ा से बांठियों के चौक की तरफ बढते हुये सकड़ाई को सुवासित करती यह हवेलियां उस व्यक्तित्व और परिवार की कला प्रियता को प्रमाणित करती है जो बीकानेर के जीवन में पिछले 125 वर्ष से महत्वपूर्ण रहा है। इनमें रामगोपाल मोहता की हवेली एवं सुन्दर लाला जी बांठिया की हवेली बेमिसाल है। हालांकि जगन्नाथजी भागीरथ जी मोहता की हवेली भी कला की दृष्टि से अनुपम और बेजोड़ है।

ढड्ढ़ा चौक व चाँदमल ढड्ढा की हवेली :

यह चौक अपनी सुव्यस्थित बनावट, समतल मैदान और इसके चारो तरफ बनी हवेलियां हर तरफ शान्ति, खामोशी और सुकून के कारण ज्यादा प्रसिद्ध है।[4] इस हवेली की विशालता, तड़क भड़क और आकर्षण सहज ही अपनी ओर ध्यान खींच लेती है।

रिखजी बागड़ी की हवेली :

तेलीपाड़ा से मोहतो के चौक की तरफ जाने वाली सडक पर स्थित यह हवेली पत्थर की पोरणी में पैदा सौन्दर्य और कला की पराकाष्ठा है। यह तीन मंजिला हवेली है। जिसके नीचे दो घुम्हारिये बने हैं, हर घुम्हारिये के दो दरवाजे है और दोनो घुम्हारियो के बीच है मुख्य दरवाजे तक पहुंचने का रास्ता। इसका मुख्य द्वार भी ज्यादा उंचा नहीं है पर कम उंचाई होने से दरवाजा अधिक ही भारी भरकम लगता है। दो झरोखे बरामदे के और दो झरोखे बैठक के है। बरामदे की छत शीशम की है जिस पर फिर अष्ट कोण खुदे हुये है। बैठक की छत लाल रंग की है उस पर छोटे छोटे फूल खिले हुये है। इस हवेली के चेहरे की खुदाई बेमिसाल है।

पूनमचन्द जी कोठारी की हवेली

यह हवेली श्री पूनमचन्द कोठारी जीवट जीवन परिश्रम, सूझ बूझ और उच्च आदर्शों का प्रतिबिम्ब है। इस हवेली में पत्थर के साथ साथ लकडी की कोरणी खुदाई और जड़ाई काफी प्रचुर मात्रा में है। इस हवेली के दीवानखानों में लकड़ी का काम सबसे दर्शनीय है। लकड़ी के सैकड़ों टुकड़ों को आपस में फंसाकर जोड़कर सारी छत जमीन पर कसकर तैयार की गयी है।

बैदों के चौक की दो हवेलियां :

ये दोनों हवेलियां करीब 150 वर्षो से अपनी छटा बिखेर रही है और जिनका सौन्दर्य तथा चमक आज भी कायम है। जो श्रेष्ठता और स्थायित्व दोनों के सामंजस्य से ही प्राप्त हो सकता है। इन हवेलियों के झरोखे एक अद्‌भुत मोहकता युक्त हैं। झरोखों और दरवाजों पर की गयी नक्काशी दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देती है।

बिनानी चौक की हवेलियां :

यह हवेली करीब 125 साल पुंरानी है। यह आज शान शौकत को तरसती हुयी पर कभी मौज मस्ती से भरा होली समारोह इस हवेली का यशोगान करता है। इसमें प्रकृति के सौन्दर्य को याद दिलाती सुन्दर फूल पत्तियां है।[9]

इसके अलावा लखोटिया चौक की हवेलियां, आसाणियों नाहटा चौक की हवेलियां, कोठारी बांठियां चौक की हवेलियां, उदयलाल जोशी की हवेली, बारह गुवाड़ व आस पास की हवेलियां, भीनासर की हवेलियां, कला और स्थापत्य की दृष्टि से अनुपम और बेजोड़ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राघवेन्द्र मनोहर सिंह, राजस्थान के रजवाड़ो का सांस्कृतिक वैभव, पृ.1*
2. *डॉ. सत्यप्रकाश, राजस्थान भारती, भाग 3, अंक 3-4, जुलाई, 1953, पृ. 12*
3. *एच. गोएट्ज, द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट, पृ. 9*
4. *गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 144*
5. *वही, पृ. 145*
6. *श्री उपध्यान चन्द्र कोचर एवं हसन काजरी, हवेलियों का शहर बीकानेर, पृ. 6*
7. *वही, पृ. 14*
8. *वही, पृ. 25*
9. *वही, पृ. 46*

पर्यावरण चेतना और संरक्षण : सन्दर्भ एवं प्रवृत्तियां (जैन पुराण एवं ग्रन्थों के सन्दर्भ में)

डिम्पल शेखावत
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

यदि किसी भी धर्म की तह में जाकर उसके मूल सिद्धान्तों पर विचार करें तो हम पायेंगे कि सभी धर्म समान रुप से मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग दिखलाते हैं और यह कल्याण के मार्ग की संकल्पना बहुत की व्यापक है। मानव कल्याण की इस संकल्पना में पर्यावरण अवबोध एवं उसका संरक्षण भी सम्मिलित है। जैन पुराणों और ग्रन्थों में पर्यावरण की संकल्पना काफी व्यापकता लिए हुए है चाहे फिर वो चेतना की बात हो या फिर संरक्षण की।

वर्तमान में मानव सभ्यता प्रदूषण, विशेषकर पर्यावरण प्रदूषण से आक्रान्त है और विज्ञान के ज्ञाता इस प्रदूषण से बचने और सावधान रहने का संकेत कर रहे हैं। लेकिन जब हम जैन व अन्य पुराणों का अध्ययन करते हैं तो पाते है कि जैनाचार्यो, तीर्थंकरों, वैदिक ऋषियों तथा बौद्ध दार्शनिकों ने प्राचीन काल से ही उपर्युक्त विषय पर गहन चिन्तन व मनन किया है। इस चिन्तन और मनन को उन्होंने लिखित रुप में हमारे समक्ष पेश किया जो कि आज पुराणों के रुप में हमारी अमूल्य निधि है।

मनुष्य के चारों ओर विद्यमान वायुमण्डल में भूमि, जल, नदी, पर्वत, समुद्र, वन, वनस्पतियां, अग्नि, अन्तरिक्ष आदि विद्यमान है। इस वायुमण्डल में असन्तुलन होते ही पर्यावरण प्रदूषण का प्रार्दुभाव होता है। पर्यावरण चेतना का अर्थ है कि मनुष्य ऐसा कोई कार्य नहीं करे, जिससे प्राकृतिक सन्तुलन गड़बड़ाये या इसमें कोई विकार उत्पन्न हो और यदि कोई विकार उत्पन्न हो भी गया है तो उसे सुधारने का अथक प्रयास पर्यावरण संरक्षण कहलाता है। जल की शुद्धता, वायुमण्डल की शुद्धता, पृथ्वी, वन, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि की शुद्धता एवं सुरक्षा तथा बलवर्धन हेतु अनेक प्रार्थनाएं शान्ति पाठों के माध्यम से प्राप्त होती है। विशेषत: समग्र भारतीय दर्शन में सम्पूर्ण विश्व के अभ्युदय एवं शान्ति की उदात भावना, लोकोपाकार की, आदर्श दृष्टि प्रधानत: प्राचीन साहित्य में सहज दृष्टिगोचर होती है। पर्यावरण चिन्तन में सभी भारतीय दार्शनिकों का एकमत है ऐसा स्वीकार करने में कोई आपत्ति दिखलाई पड़ती।

पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण विषयक चिन्तन में प्रधान तत्व 'अहिंसा परमो धर्म:' का मूल मंत्र है। जैन धर्म में अहिंसा की प्रमुखता को स्थापित करते हुए राजवार्तिक में स्पष्ट कहा गया है कि 'अहिंसादि लक्षणो धर्म:'[1]। केवल अहिंसा की यह अवधारणा जो सर्व स्वीकृत, समग्र जगत् से हमें मित्रभाव में जोड़ती है तथा शत्रुभाव का विनाश करती है। समग्र जीव मात्र में अद्रोह ही अहिंसा की उत्कृष्ट व्याख्या है।

जैन दर्शन अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह पांच महाव्रतों में अहिंसा का पर्यावरण से संबंध प्रधान है तथा आंशिक या गौण रुप में सभी महाव्रत पर्यावरण की रक्षा हेतु प्रदूषण से मुक्ति प्रधानतया चाहते हैं। जगत तथा जीव से वैर-भाव का त्याग कर मित्र दृष्टि हो, उनकी सुरक्षा एवं संरक्षा का प्रधान आधार है यह जैन दृष्टि।

जैन पुराणों व साहित्य में उल्लिखित नैतिक सिद्धान्तों में प्रतीकात्मक पर्यावरण चेतना का सम्यक् अनुशीलन

करना आवश्यक है। अचौर्य या लोभी की प्रवृत्ति के सन्दर्भ में उत्तराध्ययन, प्रश्नव्याकरण सूत्र, भगवती अराधना, कार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा सावय पण्णति में कुछ दृष्टांत इस प्रकार मिलते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र, हरिवंशपुराण एवं आदिपुराण के अनुसार मनुष्य लोभ से व्याकुल अथवा प्रेरित होकर चोरी करता है।[2] प्रश्नव्याकरण सूत्र के अनुसार चोरी अपयश करने वाला एक अनार्य कर्म है। यह सभी सज्जनों द्वारा सदा निन्दनीय है।[3] भगवती अराधना के अनुसार परद्रव्य हरण करना पाप का आगमन द्वार है। सूअर की हत्या करने वाले, मृग आदि को पकड़ने वाले तथा परस्त्रीगमन करने वाले से भी चोर अधिक पापी गिना जाता है।[4] कार्तिकेयानुप्रेक्षा के अनुसार जो व्यक्ति किसी भी बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य में नहीं लेता, दूसरे की गिरी हुई वस्तु को उठाकर नहीं लेता और थोड़े से लाभ से संतुष्ट रहता है एवं क्रोध, लोभ, माया तथा मान से दूसरे के द्रव्य का हरण नहीं करता, वह शुद्ध विचार वाला दृढ़ निश्चयी अचौर्य अणुव्रती है।[5] सावय पण्णत्ति के अनुसार चोरी का माल खरीदना, तस्करी करना, राजाज्ञा का उल्लंघन करना, नाप-तोल में गड़बड़ करना तथा मिलावट करना यह सब चोरी के समान वर्जनीय है।[6] मनुष्य लालच की प्रवृत्ति से ही प्रेरित होकर पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है। अद्वेष के बारे में कहा गया है कि - 'न विरुज्झेज्ज केणवि'[7]। किसी के साथ भी वैर विरोध न करें। मैत्री भाव पर्यावरण की शुद्धि के लिए आवश्यक है।

रविषेण एवं जिनसेन द्वारा कृत पद्मपुराण और हरिवंशपुराण में अहिंसा के बारे में अनेक सन्दर्भ प्राप्त हैं। इन पुराणों के अनुसार अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है-

धम्ममहिंसासमं नत्थि।[8]

पद्मपुरण एवं हरविंशपुराण के अनुसार किसी भी दूसरे जीव की हत्या वास्तव में स्वयं का वध है और दूसरे जीव पर दया, अपने पर दया है। इसलिए किसी भी प्राणी की घात-हिंसा नहीं करनी चाहिए। स्वयं के समान ही बाहर से दूसरों को भी देखें - 'आयओ बहिया पास।'[9] अत: अहिंसाव्रत पर्यावरण के जैविक व अजैविक घटकों में पर्याप्त सामंजस्य व तालमेल रखता है जिससे पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता है।

आचार्य रविषेण द्वारा कृत पद्मपुराण में आचरण सम्बंधी अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। प्ररुपणा (उपदेश) का सार आचरण है जिससे निर्वाण होता है।[10] जो केवल बोलते हैं, करते कुछ नहीं, वे बन्धन और मोक्ष की बातें करने वाले व्यक्ति केवल वाणी की वीरता से अपने आपको आश्वासन देने वाले हैं।

भणन्ता अकरेन्ता य, बन्धमोक्खो पइण्णिणो।
वायाविरियमेत्ते ण समासासेन्ति अप्पयं।।[11]

अर्थात् सदाचरण से पर्यावरण की रक्षा होती है और दुराचरण से पर्यावरण प्रदूषण होता है। आत्मौपम्य के सन्दर्भ में भक्त परिज्ञा तथा दशवैकालिक सूत्र में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। भक्त परिज्ञा के अनुसार पूर्ण आदर और सावधानीपूर्वक आत्मौपम्य की भावना से सब जीवों पर दया करनी चाहिए। दशवैकालिक सूत्र के अनुसार जो समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता है, उसे पाप कर्म का बन्धन नहीं होता। प्राणिमात्र के प्रति दया, मैत्रीभाव से पर्यावरण में सामंजस्य बना रहता है। आहार-विवेक के सन्दर्भ में ओघनिर्युक्ति तथा निशीथभाष्य में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। ओघनिर्युक्ति के अनुसार जो व्यक्ति हितकारी, मिताहारी और अल्पाहारी है, उसे किसी वैद्य से चिकित्सा कराने की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं ही अपना वैद्य है। हितकारी, मितहारी और अल्पाहारी प्रकृति से कम मात्रा में वस्तुओं का संग्रह कर प्रकृति संतुलन को बनाये रखता है। निशीथभाष्य के अनुसार ज्ञान आदि मोक्ष के साधन हैं और ज्ञानादि का साधन शरीर है तथा शरीर का साधन आहार है। इसीलिए व्यक्ति को समय के अनुसार भोजन करना चाहिए।[12] इन्द्रिय-दमन के सम्बन्ध में आदिपुराण में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। जिस व्यक्ति की इन्द्रियां कुमार्ग गामिनी हो गई हैं, वह दुष्ट घोड़ों के वश में पड़े सारथी के समान कुमार्ग में भटक जाता है।[13] अत: इन्द्रियों को वश में करके उनका निग्रह करना चाहिए। इन्द्रिय निग्रह भी पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने का एक उपाय है।

सन्तोष वृति के बारे में आचारांगचूर्णि तथा सूत्रकृतांग में अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। आचारांगचूर्णि के अनुसार असन्तोषी व्यक्ति को यहां-वहां सर्वत्र भय लगा रहता है। पदमपुराण एवं सूत्रकृतांग के अनुसार सन्तोषी व्यक्ति पाप नहीं करते। संतोषी प्रवृति संग्रह की प्रवृति से बचाती है। संग्रह प्रवृति का त्याग व संतोष की प्रवृति को अपनाना ही पर्यावरण संरक्षण को बल प्रदान करना है।[14] सुख-दुख के सन्दर्भ में संबोध सत्तरि में बताया गया है कि जिसका चित्त विरक्त होता है उसे सदा सुख ही सुख है और राग में रंगे हुए चित्त वाले प्राणी को अत्यधिक दुख है। इस परम तत्व पर मनन करके वीतराग मार्ग में चित्त को स्थिर करना चाहिए -

विरत्त चित्तस्स सयाऽवि सुक्खं।
रागाणुरत्तस्स अईव दुक्खं।।
एवं मुणित्ता परमं हि ततं।
नीरागमग्गम्मि धरेह चित्तं।।[15]

अत: चित्त की चंचलता पर्यावरण को प्रदूषित तथा चित्त की स्थिरता पर्यावरण को शुद्ध रखती है।

जैन धर्म व पुराणों की आचार मीमांसा या नैतिक मान्यताएं पर्यावरण चेतना और संरक्षण के सन्दर्भ में संकल्पनाएं प्रस्तुत करती हैं। जैन पुराणों में नैतिक मान्यताओं में अचौर्य, अद्वेष, अनासक्ति, अनुकम्पा, अनुशासन, अपरिग्रह, अप्रमाद, अभय, अविनीत, अहंकार, अहिंसा, आचरण, आत्म दर्शन, आत्म प्रशंसा, आत्म विजय, आत्म साक्षी, आत्मा आत्मौपम्य, आपत्तिकाल, आलस्य, आहार-विचार, आहार-विवके, इन्द्रिय दमन, उन्माग्र, करुणा, कर्म, कषाय, कामना, काम भोग, कामासक्त, कार्य सिद्धि, कुसंगति, क्रोध, गुण दर्शन, गुणानुराग, चरित्र, तितिक्षा, दान, दुख,

ISSN 2277-5587

दुर्जन, दुर्लभ, दुष्कर, दुष्ट आचार, धर्म, निन्दा, निराभिमान, परोपजीवी, पाप पुण्य, पुरुषार्थ, प्रेम, ब्रह्मचर्य, भाग्य, भाव, मद्यपान, मन, मानव स्वभाव, माया, मैत्रीभाव, लोभ, वाणी विवेक, विनय, शील, श्रमण धर्म, सज्जनता, सन्तोषवृति, सद्गुण, सफलता, सम्यकत्व, सुख दुख, हित अहित, क्षमादान, अभयदान आदि के सन्दर्भ में विचार प्रकट किये गये हैं।

उपर्युक्त नैतिक मान्यताओं से जैन धर्म के पुराणों व ग्रन्थों में पर्यावरणीय सिद्धान्तों को प्रतीकात्मक रुप से प्रस्तुत किया गया है। अत: पर्यावरणीय विषयक सिद्धान्तों के बारे में जैन पुराणों अनेक उल्लेखनीय सन्दर्भ देखने को मिलते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जैन, पन्नालाल (सं.), रामकथा, पृ. 306*
2. *हरिवंशपुराण, सर्ग 2, श्लोक 119; जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 20, श्लोक 163; उत्तराध्ययन, 32/29*
3. *प्रश्नव्याकरण सूत्र, 1/3*
4. *भगवती अराधना, 865/984*
5. *कर्तिकियानुप्रेक्षा, 335/336*
6. *सावय पण्णत्ति, 268*
7. *सूत्रकृतांग, 1/11/12*
8. *रविषेण, पद्मपुराण, पर्व 4, श्लोक 118-120; जिनसेन, हरिवंशपुराण, सर्ग 2, श्लोक 116-117*
9. *आचारांग, 1/3/3*
10. *रविषेण, पद्मपुराण, पर्व 14, श्लोक 53-56*
11. *उत्तराध्ययन, 6/9*
12. *निशीथभाष्य, 4159*
13. *जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 20, श्लोक 6-7*
14. *रविषेण, पद्मपुराण, पर्व 5, श्लोक 342*
15. *संबोध सत्तरि, 6*

तोरावाटी क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति

डॉ. रामसिंह गुर्जर
वरिष्ठ अध्यापक, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, सालवाड़ी, कठूमर, अलवर

shodhshree@gmail.com

तोरावाटी एक क्षेत्र मूलक शब्द है, जो भारत देश के राजस्थान प्रान्त का एक प्रमुख भू-भाग है। इस क्षेत्र का भावार्थ उस क्षेत्र से है, जिस पर तोमर निवास करते थे। तोरावाटी क्षेत्र का नाम संस्कृत भाषा के 'तोमर' शब्द से व्युत्पन्न 'तँवर' या तुँवर' (देशज शब्द) से अस्तित्त्व में आया। मध्ययुग में इस क्षेत्र पर राजपूतों की एक प्रमुख शाखा तोमर (तँवर) ने शासन संचालित किया था, अत: तोमरों के आधिपत्य के कारण यह क्षेत्र तोमरवाटी कहा गया।[1] जो धीरे-धीरे लोकभाषा में प्रचलित होकर तोरावाटी, तुँवरावाटी, अथवा तँवरी कहा जाने लगा। कई मुगल कालीन-फरसी तवारिखों (ग्रंथो) में तोमर शब्द को 'तौंर' या 'तुनूर' भी लिखा गया है। अत: इस क्षेत्र के लिए तुनरवाटी (तुनूरवाटी) शब्द का प्रयोग भी किया गया है।[2]

तोरावाटी क्षेत्र वर्तमान राजस्थान प्राप्त के कुछ भू-भाग का संयुक्त रुप है, जो कि राजस्थान के सीकर, जयपुर एवं अलवर जिलों का मिला-जुला भाग है। यह क्षेत्र राजस्थान प्रान्त के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र में आता है। इसका केन्द्र 27°42' अक्षांश एंव 75°59' देशान्तर पर स्थित है। यह प्रदेश पश्चिम में 27°47' अक्षांश तथा 76° 9' देशान्तर तथा पूर्व में 27 °44' अक्षांश एवं 76°16' देशान्तर तक विस्तृत।11

राजस्थान में तोरावाटी प्रदेश के भू-भाग का प्राचीन काल से ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जिसके सीमा विस्तार के अन्तर्गत उत्तर में अलवर जिले की तहसील बहरोड़, पूर्व में अलवर जिले की तहसील बानसूर, दक्षिण पूर्वी भाग में जयपुर जिले की तहसील कोटपूतली, विराटनगर, शाहपुरा तथा पश्चिम में सीकर जिले की तहसील नीमकाथाना तक विस्तृत है। ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से इसकी सीमाएँ सीकर, जयपुर एवं अलवर जिलों तक ही सीमित रही है। जहाँ तोमरवंशी राजपूतों के अधिवासन व आधिपत्य होने के कारण यह क्षेत्र तोरावाटी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तोरावाटी ठिकानों में स्त्री की स्थिति पारिवारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण कही जा सकती है, लेकिन तुलनात्मक रुप से उसकी स्थिति पुरुष की बजाय अति निम्न एव पुरुष अधीनस्थ रही है। जहाँ बालक के जन्म पर अनेक रस्म-रिवाज व संस्कारो की प्रतिस्थापना कर खुशी जाहिर की जाती थी, वहाँ बालिका के जन्म पर दु:ख व निराशा उद्घाटित होती थी। **'पैंडो भलो ना कोश को बेटी भली ना एक। देणो भलो ना बाप को साहिब राखि टेक।।'** जैसी समाज मे प्रचलित कहावतों से यह सहज ही अनुमान हो जाता है कि पुत्री का जन्म एक अभिशाप बन गया था। पुत्र जन्म की कामना के प्रति उनका प्रमुख आकर्षण था। इस भावना के पीछे वैदिक कालीन धारणा काम करती थी। दूसरी तरफ पुत्री के लालन पालन में भी पुत्र की तरह ध्यान नही दिया जाता था। **'कन्या पितृत्वंखलु नाम कष्टम'** की भावना इस भू-भाग में प्रचलित थी। राजपूत कुल मे कन्या वध तो आम बात थी, इसका कारण विवाह खर्च व त्याग प्रथा थी। यद्यपि बाद में जयपुर राज्य ने अंग्रेजों की प्रेरणा से इस अमानुषिक प्रथा को समाप्त करने हेतु सख्त कदम उठाये। कन्या वध व त्याग मांगना

 ISSN 2277-5587

अपराध घोषित किया गया तथा त्याग की निश्चित रकम बांधी गई।

इस काल में तथाकथित मुगल प्रभाव के कारण बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा की शुरुआत हो गई थी वस्तुत: मुस्लिम आक्रन्ताओं के पश्चात परदे के रुप में हिन्दू समाज की स्त्रियों में घूँघट प्रथा का प्रचलन हो गया था। जिसके अन्तर्गत स्त्रियों को बडे-बुर्जुगों से घूँघट करना पड़ता था। इसी कारण वे शिक्षा के लिए बाहर भी नही जा सकती थी। मुस्लिम स्त्रियाँ बुर्का नामक वस्त्र का प्रयोग पर्दे के रुप मे करती थीं। समाज में विधवाओं की दशा अच्छी नही थी। विशेषत: राजपूत समाज में जो स्त्री अपने पति के साथ सती नही होती थी, उसे अभिशप्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था। वह दूसरा विवाह भी नही कर सकती थी। लेकिन दूसरी तरफ यहाँ की अन्य निम्न जातियों तथा जाट, अहीर, गुर्जर आदि कृषक जातियों में विधवा विवाह का प्रचलन था। यह विधवा पुनर्विवाह 'नाता', 'पल्लै लगाना' व 'घरवासा' आदि नामो से अभिहित किया जाता रहा है।

यद्यपि ठिकाना कालीन समाज में स्त्री दशा शोचनीय ही थी, लेकिन उसका उज्वल पक्ष भी था। कुलीनवर्गीय समाज की स्त्रियाँ ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। वह धार्मिक व सामाजिक क्रिया-कलापों में पति के साथ पूर्ण रुप से भाग लेती थी। इस क्षेत्र के ठिकानों की रानियों के द्वारा कुँआ, बावड़ियों व मंदिरों के निमार्ण के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राय: ज्येष्ठ पुत्र की अल्पायु में रानियाँ राजकार्य भी सम्भालती थी। इस दृष्टि से खेतड़ी के राजा फतेहसिंह बहादुर की अल्पावस्था के समय मांजी राणावत व दादी भटियानी के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। कभी-कभी उत्तराधिकारी के चयन मे भी ठिकानों की रानियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी, जैसे कि उल्लेखित है कि पाटन नरेश वँवलराज की दूसरी रानी (पदमावती) ने अपने दुष्प्रयासों से पाटवी पुत्र उधोजी को पाटन छोडने के लिए मजबूर कर दिया और अपने पुत्र आसल के पक्ष में पाटन का राव पद प्राप्त करने में सफल रही थी।

न केवल तोरावाटी में बल्कि सम्पूर्ण राजपूताने में राजपूतों द्वारा औरतों को अत्यधिक आदर देने की परम्परा रही, अनेक बार अनेक राजपूतों ने औरतों की आनबान व सम्मान को बचाने के लिए अपने प्राणों को तक की आहुति दी है। तोरावाटी के सन्दर्भ में देखा जाये तो राव शेखा का झूँथरी के गौड़ों के विरुद्ध युद्ध का कारण एक स्त्री के अपमान का बदला लेना ही था, जिसके पति की हत्या बेगार न देने के कारण गौड़राव कोलराज ने कर दी थी। अन्तत: गौड़ों के विरुद्ध युद्ध में ही महाराव शेखा मारे गये थे। इस प्रकार तत्कालीन समाज मे नारी जीवन से संबद्ध अनेक कुरीतियाँ होने के बावजूद भी समाज में उनका महत्वपूर्ण स्थान था।

दूसरी तरफ सामान्य वर्ग विशेषकर कृषक, पशुपालक, शिल्प-दस्तकारों एवं पिछड़ी जातियों की महिलाएँ अपने पति के आर्थिक कार्यो में सहयोग प्रदान करने वाली थी तथा जीविका चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के धन्धे करती थी।

बहु विवाह:- तोरावाटी के अभिजात्य वर्ग अर्थात ठिकानों के राव-राजा तथा जागीरदारों में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। उदाहरणार्थ - पाटन राव बहादुरसिंह के चौदह रानियाँ थी। इसी प्रकार अमरसर के राव शेखा के छ: और उसके पुत्र राव रायमल के सात रानियां थीं। राजपूतों में बहु विवाह का प्रचलन इतना बढ़ा हुआ था कि छोटे-छोटे जागीरदार व आम राजपूतों के भी एकाधिक पत्नियां होती थीं। बहु विवाह के कारण कई प्रकार के झगडें, षडयंत्र आदि होते रहते थे, यथा -पाटन राव जवाहरसिंह का उसके ज्येष्ठ पुत्र राव लक्ष्मणसिंह द्वारा वध किया जाने के कारण उसके पिता (जवाहरसिंह) द्वारा उसकी छोटी रानी नरुकी जी को अतिरिक्त स्नेह दिया जाना था, जिसके प्रभाव में आकर जवाहरसिंह उसके कनिष्ठ पुत्र बिशनसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे।

सती प्रथा:- भारत में सती प्रथा का उदय ऋग्वैदिक कालीन समाज से होता प्रतीत होता है क्योंकि ऋग्वेद (10.18.7) में एक मंत्र में 'अग्रे' अथवा 'अग्रे' शब्द का प्रयोग मिलता है। मंत्र में कहा गया है कि स्त्री अपने मृत पति के साथ चिता पर लेट जाती है तत्पश्चात परिजन उसे संबोधित करते है कि 'हे विधवा स्त्री' चिता से उठो और इस संसार में पुन: लौट आओ। इसके साथ ही महाकाव्य रामायण एवं महाभारत में सती प्रथा के साक्ष्य मिलते हैं। रामायण के अनुसार वेदवती सती हो गयी थी। महाभारत के अनुसार पाण्डु की मृत्यु के उपरान्त रानी माद्री सती हो गई थी। भारत में सती प्रथा के प्रचलन का प्रथम पुरातात्विक प्रमाण 510 ई. का एरण का अभिलेख है।

राजस्थान में सती प्रथा के कुछ उल्लेख प्राचीनकाल से प्राप्त होते हैं, लेकिन मध्यकाल से यह प्रथा अत्यधिक विस्तार पा गई थी। वस्तुत: सम्पूर्ण राजपूताने प्रान्त में ही यह प्रथा प्रचलित थी, फलस्वरुप तोरावाटी भी उसका अपवाद नही था। पति के मरने पर उसका शव या उसके किसी अवशेष चिता के साथ शोकग्रस्त पत्नी जलकर भस्म हो जाती थी, उसे 'सती' या 'महासती' होना कहा जाता था। सामान्यत: राजपूत जाति में इस प्रथा का सर्वाधिक प्रचलन था। पाटन राव बहादुरसिंह जब 1601 ई. में मुँगेर के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए तो उसकी रानी कल्याण वँवर महासती हुई। इसी प्रकार राव शेखा के वीरगति प्राप्त करने पर वि. सं. 1545 में उसकी दो रानियां सती हुई, जिसमें एक गांवड़ी (बांयल) की तथा दूसरी पाटण की तँवरी जी थी। छोटे जागीरदारों मे राव बलभद्रसिंह (पाटन) के लघुभ्राता पूरणमल जी (जीलो) के पौत्र गोकुलदास के स्वर्गवास पर उसकी पत्नी गोरजादेवी वि. सं. 1700 को सती हुई थी, जिसका स्मारक मंदिर जीलो गांव में अवस्थित है। इस संबध में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस युग में सती प्रथा का प्रचलन केवल राजपूत जाति तक ही सीमित नहीं था, वरन् अन्य जातियों में भी इसके उदाहरण कम नही मिलते। अन्य जातियों मे प्राय: स्त्रियाँ पति वियोग की पीड़ा को सहन न करने पाने स्थिति मे सती हो जाती थी। अमरसर के एक

अभिलेख से ब्राह्मण स्त्री के सती होने की बात ज्ञात होती है। अन्य साक्ष्यों मे राव शेखा के समय की नाई जाति की महासती कोल्या (अमरसर), ब्राह्मण सती पालीवाल (कोटपूतली), मनोहरपुर के बोबाडी गाँव की जाट सती (सन् 1850 ई.) देवली, करीरी गांव की अहीर जाति की सती (1800 ई.) तथा गुर्जर जाति की दीपा सती (पंवाला-कोटपूतली) व वैश्य जाति की सती खेमा (डोकन) जैसे अनेक प्रमाण हैं, जिनके स्मारक आज भी उक्त गाँवों में अवशेष हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कई स्थलों पर सतियों के मंदिर, मढी व छतरियां बनी हुई हैं, जिन्हे पवित्र स्थान माना जाता है। समाज के लोग सतियों की पूजा-अर्चना करते रहे हैं। सती प्रथा एक अमानवीय सामाजिक कृत्य था, जिसको नैतिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि बादशाह अकबर और बाद में ब्रिटिशकाल में अंग्रेजों ने इसे रोकने का प्रयास किया, किन्तु यह प्रथा इस क्षेत्र में स्वतन्त्रता काल तक चलती रही। जैसे कि नारायणपुर के श्री ज्वाला सहाय की अकाल मौत पर उनकी पत्नी बादामी, जो चैत्र बदी पंचमी, वि. स. 2003 (1948 ई.) में सती हुई थी। सती बादामी का स्मृति मंदिर नारायणपुर मे अवस्थित है।

सामान्यत: सती होने वाली स्त्री पूर्ण रुप से स्त्री श्रृंगार कर व घोडे पर बैठकर श्मशान के लिए प्रस्थान करती थी तथा गाजे बाजे के साथ में चिता में प्रवेश कर भस्म हो जाती थी। कई बार सती होने वाली स्त्री 'अणख' (निषेधात्मक आदेश) दे जाती थी, जिसका पालन कुटुम्बी अनिवार्यत: करते थे।

उल्लेखनीय है कि तोरावाटी प्रदेश में तँवर-शेखावत काल में प्राय: सभी जातियों में सती प्रथा का प्रचलन था। फलस्वरुप यहाँ अनेक सतियों की मान्यता रही है, जो इस काल (मध्यकाल) में पनपी। सती हो जाने की प्रथा को अवैदिक, अमानवीय तथा अवांछनीय मानते हुए सन् 1829 ई. में इस पर कानूनन प्रतिबन्ध लगाया गया था, किन्तु लुके-छिपे अन्य कुरीतियों की तरह यह प्रथा भी राजस्थान में विशेषकर तोरावाटी एवं शेखावाटी प्रदेश में चलती रही। 4 सितम्बर 1987 (दिवराला सतीकांड) की घटना ऐसी देशव्यापी प्रतिक्रिया हुई कि इस पर राज्य सरकार ने सती प्रथा की रोक पर नया अधिनियम बनाकर इस पर रोक लगाई।

गोद प्रथा :- यह प्रथा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। जब उच्च कुल या राजघराने में कोई वैधानिक उत्तराधिकारी नही होता था अर्थात ठिकानों के राव-राजा या अन्य किसी जागीरदार के यहाँ के पुत्र नही होता था, तो वे हिन्दु विधान के अनुसार अपना वारिस या उत्तराधिकारी गोद ले सकते थे। सामान्यत: सबसे निकटस्थ पुरुष संबंधी अथवा जागीर की वंश परम्परा से सीधा रक्त संबध रखने वाले व्यक्ति को ही उत्तराधिकरी के रुप में अपनाया जाता था। उदाहरणार्थ पाटन के राव किशनसिंह के कोई पुत्र नही था, अत: उसने अपने छोटे भाई प्रतापसिंह के पुत्र मुकुन्दसिंह को गोद लिया और उसे अपना उत्तराधिकरी बनाया। जब राव मुकन्दसिंह के भी कोई पुत्र नही हुआ तो उसने राव उदयसिंह को गोद लिया, जो भूतपूर्व राव बरवीराम की वंश परम्परा का रक्त संबधी था। इसी प्रकार जैसा कि उल्लेखित है कि शाहपुरा के राव बिशनसिंह के नि:सन्तान रहने पर गढ़ के पृथ्वीसिंह के पुत्र हनुवन्तसिंह गोद आये और शाहपुरा के अगले राव बने। उल्लेखनीय है कि यह गोद लेने की प्रथा न केवल यहाँ के तँवर-शेखावत राजपूत समाज में ही विद्यमान थी अपितु अन्य जाति के लोग भी अपना वारिस गोद ले सकते थे। यह परम्परा वर्तमान तक अधिकांश जाति समाजों मे आज भी प्रचलित है।

त्याग, नेग, दान दक्षिणा, टीका, दहेज आदि :- सामान्यत: रियासत कालीन समाज मे त्याग, नेग दान, दक्षिणा, टीका दहेज, आदि प्रदान करने की परम्परा रही थी। त्याग प्रथा राजपूतों में घर कर गई थी, जो विवाह के अवसर पर चारण-भाटों को देना पड़ता था। राजा या ठिकानेदार तो किसी प्रकार से इसके व्यय को वहन कर लेते थे, लेकिन छुटभैया जागीरदारों के लिए यह दुर्वहनीय बोझ बन जाता था। यहाँ तक की चारण भाट जब तक त्याग से सन्तुष्ट नही होते थे, बारात को खाना तक नही खिलाया जाता था। प्राय: 19वीं सदी तक यह प्रथा जोरों पर रही। इसी तरह विभिन्न धार्मिक-सामाजिक उत्सवों जैसे सगाई, विवाह, मृत्युभोज, डसोटण तथा महल मंदिर, तालाब व बावड़ी निमार्ण के अवसर पर ठिकानेदारों द्वारा नेग व दान दक्षिणा देने का रिवाज था। नेग या दान-दक्षिणा लेने वालों में सामान्यत: खवास (नाई), ब्राह्मण (जोशी पुरोहित), दमामी, चारण-भाट, धाय मां, कलावन्त, वैद्य व साधु-संत आदि होते थे।

नेग या दान दक्षिणा में रुपये पैसे (मोहर) या कोई वस्त्र-वस्तु दी जाती थी। लेकिन सन्त-महात्मा तथा ब्राह्मण आदि को भूमि दान करने का प्रचलन भी था। प्रमाण के रुप में मनोहरपुर ठिकाने के शासक राव तिलोकचन्द ने वि. सं. 1689 मे अपना राजतिलक होने के उपलक्ष्य में पुरोहित मथुरादास को उदिकपुर गांव उदिक (दान) मे दिया था। इसी तरह पूर्व उल्लेखित है, पाटन राव बीकोजी ने माणकनाथ नाम के साधु को माणकुण्ड (पाटन) का जमीनी पट्टा प्रदान किया था।

इसी भांति चारण, भाट, बडुवे व राणीमंगों को भी विभिन्न अवसरों पर दान दक्षिणा दी जाती थी। प्राय: राव-राजाओं द्वारा उन्हे पुरस्कृत करने की विभिन्न रीतियाँ थी, जिनमें लाख पसाव देना, सोने का कडा व मोती देना, हाथी-घोडे सिरोपाव देना, घड़ावुट गलजौड़ देना आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त नगद इनाम व कभी-कभी गांव तक दान दिये जाते थे। यथा-जसवंतसिंह का जन्म वि. सं. 1764 में हुआ था। तब मनोहपुर राव जगतसिंह ने पुत्र प्राप्ति की खुशी में बारहठ देवीदान को बोचावास गांव प्रदान किया था। इस प्रसंग मे एक ओर पारम्परिक प्रथा का उल्लेख कर देना भी यहाँ समीचीन होगा कि राजकुमारों व ठिकानों के कँवर-भँवरो का नाम व कुल उनके कुल के पुश्तैनी बडुवों की पोथियों मे लिखा जाता था तथा राणीमंगा भाट रानियों की वंशावली उनकी पोथियों मे अंकित करते थे। प्राय: ये वर्ष

में एक बार ठिकानों मे जाते थे तथा तब तक की वंशावली प्रविष्टियां पोथी मे अंकित कर लेते थे। ठिकानों की तरफ से उन्हें आतिथ्य सत्कार तथा प्रचुर दान दक्षिणा दी जाती थी। यथा-राव कपूरो जी (पाटन) ने बडुवा कल्याणदास को यथोचित दान देकर सत्कार किया-**'राव कपूरा जी रावड़ो भंदो बंधवायो समत: पंदरासौ पैंतीस की साल भैई मैं लिखार घड़ावुट गलजोड़ दन सोना का कड़ा मोती दन बाजणा घेवर जीमाया बड़वाजी किलाणदास जी ने गढ़ पाटिण सुथान।'**

तत्कालीन समाज में टीका व दहेज देने की परम्परा भी विद्यमान थी। दहेज को दायजा (डायजा) नाम से उच्चारित किया जाता था। विशेषकर राजघरानों मे दायजा की वस्तुएँ बहुकीमती हुआ करती थी, जिसमें पोशाकें, स्वर्ण व रत्नाभूषण, सोने चांदी के पात्र जैसी अनेकानेक वस्तुएँ होती थी। इनके अतिरिक्त दहेज में हाथी-घोडे, दास-दासियाँ आदि भी दिये जाते थे। उल्लेखनीय है कि त्याग प्रथा को छोडकर उपर्युक्त सभी परम्पराएँ कमोबेश राजपूतों के साथ सामान्य वर्ग की अन्य जातियों में भी प्रचलित थी। जिसे वे अपनी हैसियतानुसार निभाया करते थे। कुछ अवसरों पर 'हेड़ा और बाड़ा' भी दिया जाता था, जिसमें एकत्रित लोगों को निश्चित मात्रा में अनाज मिलता था। 'भूर' एक अन्य प्रकार की दक्षिणा थी, जो विवाह कार्य पूर्ण होने पर बांटी जाती थी। रक्षाबन्धन पर राखी बंधवाने वाला अपनी हैसियत अनुरुप दान देता था। पुत्र जन्म पर धाय माँ को नेग दिया जाता था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मिश्र, रतनलाल : शेखावाटी का इतिहास, पृ. 272*
2. *राठौड़, विक्रमसिंह : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 17*
3. *औझा, गौरीशंकर हीराचन्द : राजपूतकालीन संस्कृति, पृ. 43*
4. *शर्मा, महावीर प्रसाद : तोरावाटी का इतिहास, पृ. 89-90*
5. *टॉड, जेम्स : एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान, Iपृ. 58*
6. *कविया, गोपालदान : शिखरवंशोत्पत्ति, पृ. 8-9*
7. *शास्त्री, रामचन्द्र : शेखावाटी प्रकाश, अध्याय 5, पृ. 9*
8. *शर्मा, महावीर प्रसाद : तोरावाटी का इतिहास, पृ. 103*
9. *ऋग्वेद (10.18.7)*
10. *दुबे, एच.एन. : भारतीय संस्कृति, पृ. 273*
11. *शर्मा, महावीर प्रसाद : तोरावाटी का इतिहास, पृ. 143*
12. *पूर्णमल बड़वा (डाबला, सीकर) की बही के अनुसार*
13. *शर्मा, महावीर प्रसाद : तोरावाटी का इतिहास, (प्रथम संस्करण) 1980-81, पृ. 184-86*
14. *वही, पृ. 186*
15. *टॉड, जेम्स : एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम-I, पृ. 506*
16. *बडुवा, पूर्णमल जी (डाबला) की बही।*
17. *शर्मा, महावीर प्रसाद : तोरावाटी का इतिहास, पृ. 152-153*
18. *भाटी, नारायणसिंह (सं.) : मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग-2, पृ. 447 व 453-54*
19. *शर्मा, गोपीनाथ : आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 208*
20. *झाझड़, सुरजनसिंह शेखावत : शेखावाटी के शिलालेख एक अध्ययन, पृ. 68*
21. *शेखावत, रघुनाथसिंह : शेखावत और उनका समय, पृ. 143,*
22. *बडुवा, पूर्णमल जी (डाबला) की बही।*
23. *मनोहर, राघवेन्द्रसिंह : राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 206*
24. *मिश्र, रतनलाल : शेखावाटी का इतिहास, पृ. 268*

Conserving Biodiversity in Rajasthan: A Case Study of Todgarh Raoli wild Life Sanctuary, Rajasthan

Dr. Rajesh Sharma
Lecturer, S. D. Government College, Beawar

Dr. Deepali Sharma
Lecturer, S.D. Government College, Beawar

shodhshree@gmail.com

India is a land of diverse natural resources. It has good traditions for conservation of nature. Since time immemorial, conservation of natural resources has been the integral part of many indigenous communities. Ancient Indian mythological literature like the Vedas, Ramayan, Mahabharat, the Bhagwat Gita, Puran, Folklore, Folk talks and legends etc are all replete with the importance of plants and the conservations was correlated with the religious ethics. Human should conserve biodiversity because of its benefit for example services and biological resources which are essential to live our life on earth. However, it also provides spiritual benefits as well as social benefit. It is true for Rajasthan which has suffered an almost unabated devastation of its natural biological heritage.

Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary located in central position of Arawalli range of Rajasthan. The sanctuary is fortunately a cradle of biodiversity. This region is the ecotone of both vegetational segments like xerophytic vegetation as well as mesic vegetation. Rawat tribe lives dominantly in remote forest area of this sanctuary. A considerable amount of oral information on household conservations techniques of plants is available with this tribe's. These people have inherited good knowledge about propagations, protections and conservations of local flora with its hidden values from their ancestors, which is passed from one generation to another through oral communications. Traditional uses of plants bio-diversity from Arawalli hill of Rajasthan were investigated[4] and unrecorded ethno-medicinal uses and conservations of biodiversity from Todgarh-Raoli wild life sanctuary, Rajasthan was reported[5]. Ethno-botanical survey of Rajasthan – An update and plants in material culture of tribal's and rural communities of Rajshmand district were reported[3]. the pioneer studies on medicinal plants and its conservations in Arawallis were undertaken yet conservations of plants in Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary have not adequately been studied by earlier researchers in details.

In the present paper an attempt has been made to document and acknowledge

the precious traditional knowledge on propagations, protections and conservations of local flora with its hidden values from their ancestors, which is passed from one generation to another through oral communications. This vital knowledge needs to be scientifically and systematically documented before its loss due to rapid changes in the community on account of attaining modern civilization by the rural population.

Materials and Methods:

An exhaustive field surveys were made in different tribal locations and different seasons of Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary. Rainy season is the best time to visit many places, tribesmen and rural people to establish the reciprocal communication. Interviews were conducted with the tribal people, and Medicine men. The information which was provided to us was oral information and it was crossed examined at different places.

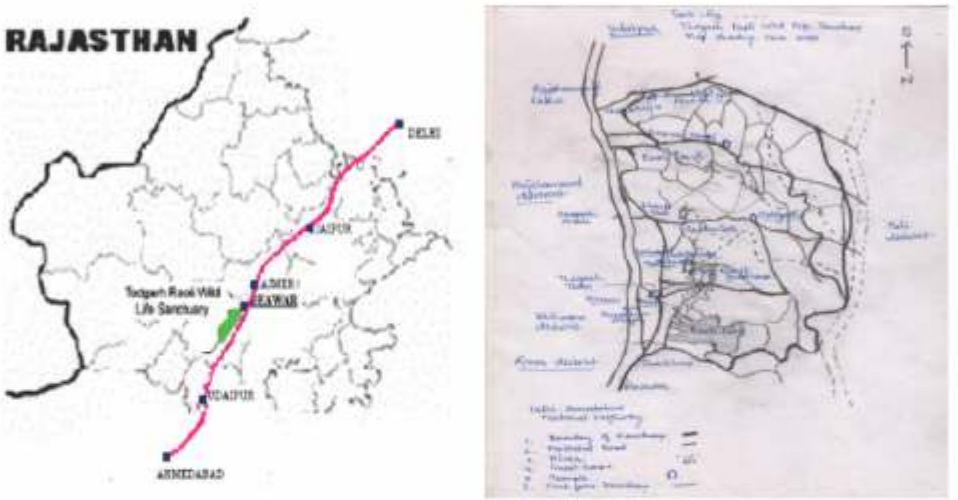

Fig.-1 Location Map of Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary

Biodiversity Conservation Methods:

The forest represents a long tradition of environmental conservation by tribal of this sanctuary. Therefore, there is an urgent need not only to protect forest but also to revive and reinvent such traditional practices of nature conservation and environmental management.

In-situ Biodiversity Conservation:

In-situ conservation means the conservation of species within their natural habitats, this way of conserving biodiversity is the most appropriate method for biodiversity conservation. In this strategy Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary is the area with high biodiversity means the area in which number of plants and animals are present. After that this high biodiversity area is covered in the form of reserve forest and sanctuary. Although it is reserve forest yet Rawat tribe lives dominantly in remote forest area of this sanctuary. The life style of these tribal support the conservations because income of these ethnic races depend on forest so they supports to conserve it in their natural habitat.

Ex-Situ Conservation Methods:

Ex-situ conservation involves the conservation of biological diversity outside of their natural habitats. This involves conservation of genetic resources, as well as wild and cultivated or species, and draws on a diverse body of

techniques and facilities. Tribals of this area develop their ex-situ Biodiversity conservation methods as following:

- By forming Gene banks: In this store seeds, sperm & ova at extremely low temperature and humidity under the soil in the sanctuary.
- It is very helpful to save large variety of species of plants in a very small space. E.g. sperm and ova banks, seed banks.
- Collections of In vitro plant tissue.
- In agriculture, ex-situ conservation measures maintain domesticated plants which cannot survive in nature unaided.

Common Methods of Conservations Adapted:

- Tribals of this sanctuary have developed their common house hold methods of conservations and preservations of plants, seeds, bark, fruits and gums. Their agriculture styles protections of plants by plants also helps in conservations. Tribal people and rural communities are closely interwoven with their environment and local flora. It becomes the integrated parts of their culture and custom and folklore. A large number of plants are being used by tribal to cure human and veterinary ailments, thus considerable amount of information on medicinal properties of these plants is available with these communities. The plants growing around them form an integral part of their culture and customs.
- **Religious aspects-** "sackers growes" has been developed. The traditions are also reflected in a variety of practices regarding the use and management of trees, forests and water.

Conclusions:

The work is especially focused to document precious traditional knowledge on propagations, protections and conservations of local flora in Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary with its hidden values from their ancestors, which is passed from one generation to another through oral communications. This vital knowledge needs to be scientifically and systematically documented before its loss due to rapid changes in the community on account of attaining modern civilization by the rural population.

It is evident from the ongoing account that tribal and rural repository of Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary contains several herbal medicines for the treatments of one ailment are more conserved. There are many areas in the Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary which have many commercially important medicinal plants species and if managed properly these can be a sustainable source of income for local and tribal people. The conservations of plants in this area is according to their utilizations like medicinally important plants are conserve o n religious aspects and other plants like wood yielding, sans binders, plants are useful in roof of tribal's, food and fodder plants, plants they are commercially important for earning source are also conserve. Medicinal plants> food yielding plants> Earning source plants> Ethno-botanical plants> Fodders> Gum yielding plants> Fuel important> Sand binders> Agricultural plants> others useful plants. A few parts were found to be effective against more than one disease so it is very important to conserve.

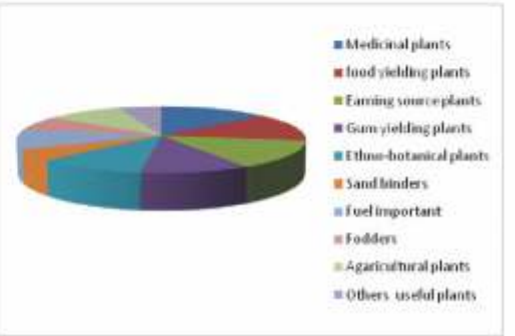

References:

1. *Choudhary B L Kateva S S and Galav P K 2008, Plant in material culture of tribal's and rural communities of Rajsamand district of Rajasthan. Indian J. Trad. Knowl., 7(1) 11-22.*
2. *Jain Anita Kateva S S Galav P K and Nag A 2007, Unrecorded ethno-medicinal uses of bio-diversity from Todgarh Raoli Wildlife Sanctuary Rajasthan, India. Acta. Bot. Yunnanica 29(3) 337-344.*
3. *Katewa S S Choudhary B L Jain A and Galav P K 2003, Traditional uses of Plants bio-diversity from Aravalli hills of Rajasthan, Indian J. Traditional Knowledge 2(1) 27-39.*
4. *Katewa, S. S. 2009. Indigenous People and Forests: Perspectives of an Ethno-botanical study from Rajasthan (India)-Herbal Drugs: Ethno-medicine to Modern Medicine. Springer Berlin, pp. 33-56.*

Motor Vehicle Accident and Liability : Basis and Types

Dr. C. P. Gupta
Principal, HLC, Department of Law, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

The word 'liability' has a wide connotation. It is a broad term of large and comprehensive significance and means legal responsibility or obligation to do a thing. According to Bouviers Law Dictionary, a 'liability' is the "State of being bound or obliged in law or justice". Black's Law Dictionary defines the word 'liability' as meaning "the state of being bound or obliged in law or justice to do, pay or make good something, legal responsibility". The above definitions and some American cases were referred to by Tek Chand J. in *First National Bank Ltd. v. Seth Sant Lal*[1] and it was observed that the term 'liability' was of large and comprehensive significance and when construed in its usual and ordinary sense in which it is commonly employed, it expresses the state of being under obligation in law or in justice.[2]

Thus, what the term 'liability' simpliciter should connote. When liability of one is substituted by that of another, that is, when one becomes liable by legal fiction for the wrong or neglect of another, the term 'liability' is prefixed by the appellative 'vicarious'.

Vicarious Liability :

Vicarious liability has been described in Winfield & Jolowicz on Tort[3] as under:

"The expression 'vicarious liability' signifies the liability which A may incur to C for damage caused to C by the negligence or other tort of B. What is required is that A should stand in a particular relationship to B and that B's tort should be referable in a certain manner to that relationship. A's liability is truly strict, though for it to arise, a case of negligence, there has to be fault on the part of B. The commonest instance of this in modern law is the liability of an employer for the torts of his servants done in the course of their employment.

Peter Barrie[4] defines the expression 'vicarious liability':

"Vicarious Liability, Where a person is liable for an act committed by someone else on his behalf. The commonest situation is employment; an employer is liable for the acts of his employee committed within the scope of their employment. In most injury claims about the acts of an employee, it is the

employer who will be named as the defendant (and who will hold the relevant liability insurance policy)."

The following two passages from Shawcross[5] may usefully be quoted:

"The acts of the servant for which the master is thus liable must have been committed within the course of that servant's employment. It is within the course of employment if it is either a wrongful act authorized by the master or a wrongful and unauthorized mode of doing same act authorized by the master. Thus in *Beard v. London General Omnibus Co.*,[6] the conductor of an omnibus decide himself to turn the vehicle round at the end of a journey, and in doing so collided with another vehicle. The company was held not liable. But in *Ricketts v. Tilling (Thos.) Ltd.*,[7] the company was held liable for the negligence of the driver of one of the company's omnibuses in wrongly allowing another person to drive the vehicle whereby a collision resulted. The liability of the master for the consequences of his servant's acts, even though they have been expressly prohibited, rests on this, that if the servant was acting within the scope of his employment and the prohibition is relevant in determining the limits of his employment then the master is still liable for the wrongful mode in which that servant carries out his duties.

It is not to be thought that every time some one engages another to do something for him the relationship of master and servant with its legal consequence arise. The question of the right of control in its full significance is vital. Where an employer sends his servant to work for another, it is a question of fact depending on the arrangement made between the two employers, and again, the degree of control exercised by each, whether that servant becomes the servant of the temporary employer, or remains the servant of the general employer.

The liability, however, reaches its peak degree in the situation represented in the principle of absolute liability classically enunciated in the decision of the House of Lords in *Rylands v. Fletcher.*[8]

Where an enterprise is engaged in a hazardous or inherently dangerous activity, the enterprise is strictly and absolutely liable to compensate all those who are affected by the accident, and such liability is not subject to any of the exceptions which operate vis-a-vis the tortuous principle of strict liability[9] under the rule in *Rylands v. Fletcher.*[10]

The rule in *Rylands v. Fletcher*[11] has been described as the "wild beast theory" and this description is an apt one as in *Price v. South Metropolitan Gas Co.*[12] It applies to "anything likely to do mischief if it escapes" and, therefore, the thing must, like a wild beast or accumulated water have power to escape. In fact as later decisions show, the rule was applied to a variety of things, to wit : (i) fire;[13] (ii) gas;[14] (iii) electricity;[15] (iv) explosives;[16] (v) engines;[17] (vi) motor vehicles containing petrol;[18] (vii) noxious fumes;[19] (xiii) other dangerous things, such as rusty wire or flagpole,[20] poisonous vegetation and chair-o-plane.[21]

In *Rylands v. Fletcher*,[22] the plaintiff was the occupier of certain mines and the defendants were the owners and occupiers of a mill standing on land adjoining the plaintiff's land. The defendant wished to construct a reservoir and employed a competent engineer and a contractor to do it. There were certain old passages of disused mines on the defendant's lands which were connected with vertical shafts which communicated with the land above. These shafts were filled with mud and earth and so were not apparent. When the reservoir was constructed and filled with water, the water broke through the shafts, ran along the passages and flooded the plaintiff's mines. The defendants were held liable, though there was no negligence on their part.

This rule of strict liability admits of certain exceptions. In order to defend himself against the rule of strict liability, the defendant is entitled to show that the escape of the dangerous thing was

caused by the plaintiff's own default (*contributory negligence*) or by an Act of god (*vis major*) or by the act of a stranger (*novus actus interveniens*), or that the accumulation was with the consent of the plaintiff (*volenti non fit injuria*) or by a statutory authority, or the act of an enemy alien.

The Compensation Measures:

Liability to pay compensation has been provided for under three distinct sections of the Motor Vehicles Act, 1988, namely, sections 140, 163A and 168. Section 140 bears the heading *Liability to pay compensation in certain cases on the principle of no fault.* Section 163A is prefaced by the heading *Special provisions as to payment of compensation on structured formula.* The following are the elements common to both these sections, namely :-

(I) compensation is payable in cases of death or permanent disablement due to an accident arising out of the use of a motor vehicle;

(ii) the claimant is not required to plead or establish that the death or permanent disablement in respect of which the claim has been made was due to any wrongful act or neglect or default of the owner of the vehicle or of any other person.

(iii) the expression 'any other person', not only includes the driver but conceivably allows in the scenario the principle of *actus novus interveniens*, which means that compensation shall be payable even if the accident has been brought about by the intervening act of any third party; and such an eventuality can be conceived inter alia in the following two circumstances, namely,—

(a) where the vehicle is left unattended in a public place with its ignition key, and a third person enters the driver's cabin and manipulates it to an extent of getting the vehicle in motion; or

(b) where the regular driver of the vehicle in question knowingly allows any other person to drive or attempt to drive.

Claim For Compensation:

Section 168 of the Motor Vehicles Act, 1988 corresponds to section 110B of the Motor Vehicles Act, 1939. Said section 110B had provided that

"On receipt of an application for compensation made under section 110A, the Claims Tribunal shall, after giving parties an opportunity of being heard, hold an inquiry into the claim and may make an award determining the amount of compensation which appears to it to be just and specifying the person or persons to whom compensation shall be paid; and in making the award the Claims Tribunal shall specify the amount which shall be paid by the insurer or owner or driver of the vehicle involved in the accident or by all or any of them, as the case may be."

But for the proviso appended to sub-section (1) of section 168 of the Act, the text of sub-section (1) of section 168 of the 1988 Act and section 110B of the 1939 Act are not different, since neither of them has included anything to make the users of motor vehicles and the claimants of compensation aware of what they should plead and establish in order to claim or in order to avoid payment of compensation under the relevant provision of the Act. Neither of these provisions has specifically stated that in order to claim compensation the claimant should plead and establish or the defendant to rebut that in the phenomenon of the accident there was any other wrongful act or neglect or default of the owner of the vehicle or of the driver or of any person.

Fault Liability and No Fault Liability:

There have been cross-currents of though as regards necessity to prove a fault in fixing the liability for compensation, and even in England, the Judges have taken different views with regard to the necessity for proof of negligence in actions for personal injuries caused by accidents.

Mr. Justice V.R. Krishna Iyer of the Kerala High Court (as he then was) was the first to suggest a theory of no fault in compensation cases for death or bodily injury arising out of use of motor vehicles. In *Kesavan Nair v. State Insurance Officer*,[23] it was hence observed :

"It is not altogether irrelevant to observe that motor vehicle accidents in the State are increasing at an alarming rate but there is hardly any serious check by the concerned authorities to ensure careful driving. The innocent victim is faced with legal difficulties, in recovering damages. On account of the legal position laid down in *Mangilal v. Parasram*, [24] the insurer is liable to pay only if the insured is liable to pay. It often times happens that a prosecution precedes a civil case and since the prosecution is in the control and direction of the police, if it ends in an acquittal on account of the indifference in conduct of the prosecution, the insured pleads non-liability and the insurer also sometimes escapes. Out of a sense of humanity and having due regard to the handicap of the innocent victim in establishing negligence of the operator of the vehicle, a blanket liability must be casted on the insurer, instead of its being restricted to cases where the vehicle's operator has been shown to be negligent. This is a matter for the legislature and not the court. But this is a lacuna in the view which I think it would be just to rectify."

In *Marine & General Insurance Co. Ltd. v. Dr. Balkrishna Ramachandra Nayan*,[25] Vaidya, J, thus, concluded his reasoning, to finally hold that—

"In the light of this fundamental and basic nature of the law of torts, I am of the view that whether we apply the law of torts or not, the liability to pay just compensation arises when the injuries are caused by the use of the motor vehicle. The Tribunal has power to determine what is just compensation irrespective of whether the defendant was at fault or was negligent or careless or not. When a person is injured by use of a vehicle, that itself is an infringement of a right.

Conclusion and Several Kinds of Liabilities:

Excepting cases of owner driven cars, public service vehicles are usually driven by regularly employed drivers; and accidents are generally attributable to the negligence of the driver. Under the law of torts, the master or the owner of the offending vehicle is liable for the tort committed by the driver, by virtue of the fact that the driver is in employment of the owner of the vehicle. This liability is known as the vicarious or the constructive liability, which is a liability under the law of torts.

The compulsory insurance cover of the motor vehicle in respect of third party risk is a statutory liability, since section 146 of the Motor Vehicles Act enjoins that no person shall use, except as a passenger, or cause or allow any other person to use, a motor vehicle in a public place, unless there is in force in relation to the use of the vehicle by that person or that other person, as the case may be, a policy of insurance complying with the requirements of Chapter XI of the Motor Vehicles Act, 1988.

The compulsory insurance of motor vehicles against third party risk being, thus, imposed by the statute, it may well be construed as a statutory liability.

As between the owner, that is the party insured and the insurer, the liability is contractual, and the contract between the two is a contract of indemnity and the consideration is the premium regularly paid by the insured to the insurer for keeping the contract alive.

The liability in respect of a motor vehicle is, thus, a triple blend consisting of liability such as tortuous, contractual and statutory.

Halsbury's Laws of England[26] classifies these events or insurable factors, in the following words:

"There are three topics to be considered in relation to what in commercial parlance is called the risk, namely, (1) the risk in the sense of the contractual definition of the peril insured against; (2) the risk in the sense of the subject-matter insured against the stipulated peril; (3) the risk in the sense of the circumstances in which the stipulated peril has to affect the assured, either in the relation to a defined subject matter or in

relation to his incurring a particular liability or loss."

The first in the above passage is the contractual liability; that in second above, which relates to the subject-matter, that is the motor vehicle, is the statutory liability; and that in third above relatable to the circumstances in which the peril occurs is the tortious liability, the so-called vicarious liability of the owner of the vehicle for the wrong committed by his driver.

References:

1. *See AIR 1959 Punj. 328.*
2. *See Mohd. Yaqub v. Union of India, 1970 SCWR 763 : 72 Punj LR (D)1 : IWR (1970) 2 Del 167 : AIR 1971 Del. 45 (48, 49).*
3. *Sixteenth Ed., 2002, p. 701, Sweet & Maxwell, London.*
4. *Compensation for Personal Injuries, 1st Indian Edition, 2002, p. 12, Oxford University Press.*
5. *The Law of Motor Insurance : II 1949 Edn., pp. 50, 51, Butterworths, London.*
6. *See (1900) 2 Q.B. 530 (C.A.)*
7. *See L.R. (1915) 1 KB 644 : 31 TLR 17.*
8. *See (1868) LR 3 HL 330 : (1961-73) All ER 1.*
9. *See M.C. Mehta v. Union of India, AIR 1987 SC 1086 (1099) : (1987) 1 Com. LJ 89 : 1987(1) ACC 157 : (1987) 1 SCC 395 : (1987) 1 Supreme 65 : 1987 SCC (Lab) 37 : (1987) 435 Rep. 104 (SC).*
10. *See (1868) LR 3 HL 330 : (1861-73) All ER1.*
11. *Ibid.*
12. *See (1875) 65 LJ QB 126.*
13. *See Balfour v. Barty-Kong, (1957) 1 All. E.R. 157 : (1957) 1 Q.B. 496.*
14. *See North Western Liabilities v. L.J. & A. Co., (1936) AC 108.*
15. *See National Telephone Co. v. Baker, (1892) 2 Ch. 186.*
16. *See Solai Mohomed v. Abdul Samath, (1935) 69 MLJ 218.*
17. *See Longlands v. Br. T. Corporation, (1956) 2 All. E.R. 702.*
18. *See Farry v. Kendricks Transport, (1956) 1 All. E.R. 1543.*
19. *See West v. Bristol Tramways Co., (1908) 2 KB 14.*
20. *See Shiffman v. Grand Priong, (1936) 1 All. E.R. 557.*
21. *See Hale v. Jenning Bros., (1938) 1 All. E.R. 579.*
22. *See (1868) LR 3 HL 330 : (1861-73) All ER 1.*
23. *See 1971 ACJ 219 (Ker.).*
24. *See AIR 1971 MP 5 : 1970 ACJ 85 (MP).*
25. *See AIR 1977 Bom. 53 : 1976 ACJ 288 (302) (Bom.).*
26. *3rd Edn., Vol. 22, p. 299.*

MGNREGA and Its Position, Progress and Performance

Yogendra Kumar
Lecturer, Government Girls' College, Ajmer

Dr. Mahendra Ranawat
Associate Professor, B.P. University, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Mahatma Gandhi NREGA was enacted on 7 September 2005 as *"An Act to provide for the enhancement of livelihood security of the households in rural areas of the country by providing at least one hundred days of guaranteed wage employment* MGNREGA *in every financial year to every household."*

There was no legal provision to get employment in Indian constitution before the launching of this act but we see glimpses of economic and social justice in many programmes indirectly. MGNREGA act has been designed by famous economist "JENE DREZE". It is first act of the country which assures the rural people about employment for 100 days under this act. There is provision of providing employment in 15 days to adult person who applies for the employment. If the local authorities fails to provide him employment then he can get unemployment allowance. Under this act every person gets minimum wages and this act provides the same wages to the male and female workers.

This programme has been launched on Feb 2006 in Anantpur district of Andhra Pradesh. In first phase of the plan, it includes 200 district .It was extended to 130 more districts in second phase and in april 2008 it was again launched in 274 more districts in third phase . Now this programme is successfully running in all the districts of the country. It was renamed on 2nd oct. 2009 as MGNREGA.

Besides employment generation, the objective of the scheme is to create durable asssets for strengthening the livelihood source on a sustainable basis. It serves as a social safety net by providing a source of guaranteed employment-as such it is an "employer of last resort." The MGNREGA aims to achieve the twin objectives of rural development and employment. These two objectives are a landmark and milestone and would help to enhance human resource for inclusive growth. When the act was passed, there was a fairly strong consensus that this was an intiative that would have the potential to transform rural India.

Objectives Of Study:

1. To introduce MGNREGA
2. To asses the impact of MGNREGA on the level of employment and income.
3. To find out the problems regarding functioning of MGNREGA and the problem faced by workers.
4. To study the effect of financial inclusion for timely payment of wages and ensuring transparency by government.
5. To suggest the policy measures to make the scheme better.

Research Methodology : The study is based on secondary data. Prominent source of the secondary data is official website of the government of India for MGNREGA www.nrega.nic.in and various publications of Department of Planning Directorate of Economics & Statistics Jaipur, Government records at district administration, Block Development Officers (BDOs), concerned department, related banks and post offices. Published reports and Books on MGNREGA.

Present study covers the performance analysis of MGNREGA for ten consecutive financial years. The period of the study starts from F.Y. 2006-07 to 2015-16

Salient Features Of The Act:

- **Registration:** Adult members of a rural household willing to do unskilled manual work,may apply for registration either in writing, or orally to the local Gram Panchayat (GP). The unit for registration is a household. Under the Act, each household is entitled to a 100 days of employment every year.
- **Job Card:** After due verification of place of residence and age of the member/s (only adult members are eligible for employment), the registered household is issued a Job Card (JC). Job Card forms the basis of identification for demanding employment. A JC is to be issued within 15 days of registration. Each JC has a unique identification number. The demand for employment in the GP, or at block level has to be made against the JC number. Job Cards are also supposed to be updated with days of work and payment made to the beneficiary as and when the work is undertaken.
- **Application for Work:** A written application seeking work is to be made to the GP or Block Office, stating the time and duration for which work is sought. The GP will issue a dated receipt of the written application for employment, against which the guarantee of providing employment within 15 days operates.
- **Unemployment allowance:** In case employment is not provided within 15 days, the state (as per the Act) will pay an unemployment allowance to the beneficiary.
- **Provision of Work:** While allocating work, the below mentioned considerations are followed: Work is provided within 5 kilometres (kms) radius of the village. In case, work is provided beyond 5 kms, extra wages of 10 per cent are payable to meet additional transportation and living expenses. Priority is awarded to women, such that at least one-third of the beneficiaries under the Scheme are women. At least 50 per cent of works, in terms of cost, are to be executed by the Gps.
- **Wages:** Wages are to be paid as per the State-wise Government of India (GoI) notified MGNREGA wages. Wages are also to be paid according to piece rate, as per the Schedule of Rates (SoRs). Payment of wages has to be done on a weekly basis and not beyond a fortnight in any case. Payment of wages is mandatorily done through the

individual/joint bank/post office beneficiary accounts.

- **Planning:** Plans and decisions regarding the nature and choice of works to be undertaken in a FY along with the order in which each work is to be taken up, site selection, etc. are all to be made in open assemblies of the Gram Sabha (GS) and ratified by the GP. Works that are inserted at Block and District levels have to be approved and assigned a priority by the GS before administrative approval can be given.
- **Cost Sharing:** The GoI bears the 100 per cent wage cost of unskilled manual labour and 75 per cent of the material cost, including the wages of skilled and semi-skilled workers.
- **Worksite Management:** To ensure that the workers are directly benefitted under the Scheme, the Act prohibits the use of contractors or machinery in execution of the works. To ensure that the spirit of the Act is not diluted and wage employment is the main focus, MGNREGA mandates that in the total cost of works undertaken in a GP, the wage expenditure to material expenditure ratio should be 60:40. Worksite facilities such as crèche, drinking water and shade have to be provided at all worksites.
- **Transparency and Accountability:** Social audit, to scrutinise all the records and works under the Scheme are to be conducted regularly by the GS. Grievance redressal mechanisms and rules have to be put in place for ensuring a responsive implementation process.

Employment Generation Through MGNREGA:

MGNREGA focuses on the districts having high incidence of poverty. However, it is goes beyond poverty reduction and recognizes employment as a legal right. Sceptics considered it as a populist measure while others have considered it as a landmark towards poverty alleviation and empowerment of the poor.

One of the most important aspects of MGNREGA is that the villagers can rightfully demand employment. The authority is responsible for providing employment in response to demand or providing employment allowance otherwise. For performance analysis, it is essential to look at the response of government in providing employment against the demand raised by workers. MGNREGA can target development using huge demand for casual jobs. It has made a dent on poverty by increasing employment opportunities

Table 1: No. of Households Who Have Demanded Employment & Provided Employment

Financial Year	No.of Households Who have Demanded Employment	No.of Households Provided Employment		Number of Households Availed 100 days of Employment
		(in number)	(in percentage)	
2006-07	21496072	21135164	98.32	2161286
2007-08	34292001	33903476	98.86	3602405
2008-09	45518907	45115358	99.11	6521268
2009-10	52864608	52530453	99.36	7083663
2010-11	55763244	54954225	98.54	5561812
2011-12	48353103	47867493	98.99	3621253

2012-13	47889792	46039604	96.13	4491932
2013-14	48873098	45187471	92.45	4402564
2014-15	45899523	39476508	86.00	1740731
2015-16	49870700	42066893	84.35	2527235

Source: Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act official website,

http:// mgnrega.nic.in

Table-1 Presents the No. of households who have demanded employment and the No. of households provided employment in financial years 2006-2007 to 2015-16. In the beginning it was 98.32% and in 2015-16 it was found 84.35%. There is minor variation in different financial years, meaning that government was able to produce employment opportunities for those who demanded employment.

Employment To SC and ST : In India, important social groups such as scheduled castes and schedule tribes which are at the lowest rung of the social and economic hierarchy together constitute about 23 percent of the total population. However, their shares in the development outcomes are far too low in terms of resource endowments as well as human development indicators. Their presence is disproportionately high in groups such as agriculture labour households, small and marginally farmers as well as unorganized workers. poverty and vulnerability is also high among these groups compared to other social groups. Given this situation, MGNREGA appeared to be critical source of employment for the rural poor, particularly for categories such as distressed families from SC and ST.

Table 2: Employment of SC and ST Under MGNREGA

Person days In Lakhs

Financial year	Total	SCs	% Age of SC Participation	STs	% Age of ST Participation	Others	% Age of Others	Average Person days per Household
2006-07	9050.56	2295.24	25.36	3298.72	36.45	3456.6	38.19	42.82
2007-08	14376.14	3943	27.43	4207.75	29.27	6225.39	43.3	42.4
2008-09	21632.86	6336.16	29.29	5501.64	25.43	9795.06	45.27	47.95
2009-10	28359.59	8644.84	30.48	5874.4	20.71	13840.35	48.8	53.99
2010-11	25715.23	7875.63	30.63	5361.79	20.85	12477.81	48.52	46.79
2011-12	20156.9	4390.18	21.78	3632.37	18.02	12134.3	60.19	42.11
2012-13	20547.2	4420.12	21.51	3355.73	16.33	12771.3	62.15	44.63
2013-14	20750.4	4677.34	22.54	3526.22	16.99	12546.8	60.46	45.92
2014-15	14897.8	3355.04	22.52	2538.3	17.04	9004.44	60.44	37.74
2015-16	17646.6	3998.84	22.66	3145.2	17.82	10502.6	59.51	41.95
AVG.	19313.32	4993.639	25.42	4044.212	21.891	10275.46	52.68	44.63

Source: Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act official website,

http:// mgnrega.nic.in

1. Data presents the percentage of employed in MGNREGA as category wise from the f.y. 2006-07 to 2015-16. It is found that the average percentage of SCs, STs, and other category in these f.y. was 25.42, 21.89 and 52.68 respectively.
2. The participation of sc is increasing trend from 25.36 percent in 2006-07 to 30.63 percent in 2010-11, but subsequently declined to 22.66 percent in 2015-16.
3. The participation of ST is continuously decreasing from 36.45 percent in 2006-07 to 17.82 percent in 205-16, The data suggests that as a measure of social protection to the poor and vulnerable social groups, the scheme is making a difference by augmenting their employment and incomes.
4. The average person days per employee households came 44.63% during this period. This is much less than the guaranteed days i.e. 100 days decided by the MGNREGA act 2005it points towards the inefficiency of responsible authorities in implementing this scheme.

Participation Of Women Under MGNREGA:

By generating employment for women at fair wages in the village, MGNREGA can play a substantial role in economically empowering women and laying the basis for greater independence and self esteem.

Implementation of MGNREGA has contributed to very high levels of women empowerment, particularly in the following aspects-that as the work is organized by women's groups the gender perspective gets built in automatically -for the first time equal wages are really paid and this has boosted the earnings of women

Table 3: Employment of Women Under MGNREGA

Financial year	Total	Women*	% Age of Women Participation
2006-07	9050.56	3637.02	40.19
2007-08	14376.14	6109.11	42.49
2008-09	21632.86	10357.36	47.88
2009-10	28359.59	13640.48	48.1
2010-11	25715.23	12274.21	47.73
2011-12	20156.9	9588.92	47.57
2012-13	20547.2	10612.8	51.65
2013-14	20750.4	10886.2	52.46
2014-15	14897.8	8197.93	55.03
2015-16	17646.6	9854.31	55.84

Source: Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act official website,
http:// mgnrega.nic.in
*Women are involved in SC, ST and other category

The act stipulate that priority shall be given to women in such a way that a minimum of one-third of the beneficiaries are women who have registered and have requested for work .The percentage of women employed during this period increased up to 55.84 in f.y. 2015-16. Overall we can say that the share of women in total person days was approx. half. This is a good sign for this scheme.

Financial Performance And Inclusion

The finance forms the most critical input for every programme's implementation –in order to grow and survive the central government provides funds for the wages and for ¾ th of the material costs The state government pays for 1/4th of the material costs. The actual percent of expenditure on wages, material and other administrative heads in various years in Table 3.

TABLE 4: Financial Allocation of MGNREGA Funds

Financial Year	Financial Outcomes					
	Total Funds Available Including O.B (Rs. In lakhs)	Total Expenditure (Rs. In lakhs)	% Age of Expenditure Against Total Available Fund	% Age of Expenditure On Wages	% Age Of Expenditure on Material	% Age Of Administrative Expenditure
2006-07	1207355	882335.54	71.24	67.93	32.07	2.52
2007-08	1934244	1586610.42	79.43	69.92	30.08	3.16
2008-09	3729008.6	2725068.67	73.08	69.2	30.8	3.48
2009-10	4950771.55	3790977.96	76.57	69.77	30.23	3.29
2010-11	5280709.7	3937727.04	74.57	68.36	31.64	4.57
2011-12	3561615.99	4144991.23	116.38	76.95	23.05	3.75
2012-13	17656041.28	3944245.59	22.34	72.97	27.03	4.72
2013-14	3815137.68	4227268.92	110.8	72.82	27.18	5
2014-15	3552457.06	3965549.05	111.63	66.8	33.2	4.6
2015-16	3561615.99	4102140.19	115.18	77.31	22.69	3.79
		MEAN	85.12	71.20	28.97	3.89

Source: Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act official website, http:// mgnrega.nic.in

We can observe that the percentage of MGNREGA funds on wages is higher than the defined ratio. The share of expenditure on wages has increased from 67.93 percent in 2006-07 to 77.31 percent in 2015-16, while the share of expenditure on material has reduced and expenditure on administration has also shows a slight variation. The mean expenditure on wages and expenditure on material is 71.20 percent and 28.97 percent respectively during the given period.

The financial inclusion is the process of ensuring delivery of financial services to vulnerable groups, which is timely, adequate and at an affordable. With a view to infuse transparency and enhancing the integrity of wage payment under MGNREGA, and also to encourage saving among the rural poor, schedule II of MGNREGA act was amended to make wage disbursement to MGNREGA workers through institutional accounts in banks or post offices as a statutory requirement .Wage payments through MGNREGA have intitiated the biggest "financial inclusion" drive with the requirement that all wage payments be made through banks and post offices. Payments of wages to workers employed under MGNREGA can be done with speed, reliability, low transaction costs and leakage, if each workers has a bank account in which wage are transferred periodically.

According to a recent announcement, under the

new system of financial inclusion, 10.02 crore accounts of MGNREGA workers have been opened and about 90 percent of wages have been disbursed through these accounts upto 2015-16. Such huge flow of funds from the government treasury to poor rural households provides an immense opportunity to bring the beneficiaries into the fold of organized banking system.

The wage payments through banks and post office had been a step forward in many ways, notably by enabling millions of peoples to open bank or post office accounts and by making it much hard for corrupt middle man to embezzle wage funds.It separates the implanting agency from the payment agency .Hence as against direct payment of cash to the labourers by the panchyat/block authorities (or even contractors),who could keep a share of the money goes directly into the account of the labourers. This would discourage corrupt authorities from fudging the muster rolls. Moreover, the payment through banks and post offices would promote the habit of savings among rural unskilled workers.

Creating Community Assets Under MGNREGA:

The act attempts to unlock the potential of the rural poor to contribute to the reconstruction of their environment. To achieve this, it has laid emphasis on creation of productive assets in village. The focus of the MGNREGA shall be on the following works.

(i) Water conservation and water harvesting.

(ii) Drought proofing (including afforestation and tree plantation).

(iii) Irrigation canals including micro and minor irrigation works.

(iv) Provision of irrigation facility, horticulture plantation and land development facilities to land owned by households belonging to the Schedule Castes (SCs) and Schedule Tribes (STs) or below poverty line (BPL) families.

(v) Renovation of traditional water bodies including desilting of tanks.

(vi) Land development.

(vii) Flood control and protection works including drainage in water logged areas;

(viii) Rural connectivity to provide all-weather access.

(ix) Any other work which may be notified by the central government in consultation with the State government.

Work completed : Table 5 presents condition of work going on every year between the period 2006-07 to 2015-16. The rate of work completed is falling every year, which from 2006-07 was 47.22% and in the period 2015-16 fell up to a minimum of 15.58 %. The average rate of work completed during study period is 32.94%. It forces the inefficiency of the agencies unable for completed work lower level i.e. on the level of gram panchayats.

Table 5. Completed Work

Financial year	Total Works Taken up	Total Works Completed	% Age of Works Completed
2006-07	900622	425279	47.22
2007-08	1805534	832771	46.12
2008-09	2774679	1214169	43.76
2009-10	4616988	2259381	48.94
2010-11	5098990	2590422	50.8
2011-12	6639099	1499570	22.59

2012-13	7243761	1478753	20.41
2013-14	10180862	1867491	18.34
2014-15	11127196	1733323	15.58
2015-16	11127196	1733323	15.58
Avg.	6151492.7	1563448	32.934

Source: Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act official website, http:// mgnrega.nic.in

Conclusions and Suggestions

1. All the programmes under MGNREGA must be well planned and well ahead of time with a definite time frame for completion.
2. While taking up works under MGNREGA, only those works to be taken up that result in creation of durable assets.
3. Selection of works by gram sabha in villages and display after approval of shelf of projects, to ensure public choice, transparency and accountability and prevent material intensive, contractor based works and concocted works records.
4. Specific efforts should be made to reduce the time gap between work done and payment received by rural workers in MGNREGA.
5. To achieve financial inclusion and inclusive growth, the mode of payment is universalized to wage payment through the bank and post office accounts.
6. Apointing full time profesional for implementing MGNREGA at all levels which is vitally necessary for implementing the scheme
7. Regular measurement of work done according to a schedule of rural rate sensitive supervision of works by qualified technical personnel on time. Reading out muster rolls on work site during regular measurement- to prevent bogus records and payment of wages below prescribed levels.
8. Audit -Provision of adequate quality of work site facilities for women and men labourers creation and maintenance of durable adequate audit and evaluation mechanism widespread institution of social audit and use of findings.
9. More transparency is needed about the sanctioned work and financial involvement therein.

References:

1. *Azeez, N.P Abdul and S.M. Jawed Akhtar, (2015), "Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act(MGNREGA) –Provisions, Implementation And Performance",New Century Publications New Delhi pp.1-25,123-124*
2. *Azhagaiah R.and G. Radhika (2014) "impact ofmgnrega on the economic well-being of unskilled workers: evidence from puduchery region", pacific business review international, april,Volume 6 issue 10*
3. *GOI (Government of India), Ministry of Labor and Employment (2010) Report on Employment and Unemployment Survey (2009-10), Labor Bureau, Government of India.*
4. *Khera R.(2008), Employment Guarantee Act, Economic and Political Weekly, 43 (35) , 30 August*
5. *Singh H.M. and G.S. Benjwal "Analysis of the performance of MGNREGA", abhinav journal of research in arts & education ,volume no.2, issue no.6 ISSN 2277-1182 11*
6. *Shah M.(Eds.)(2012) "MGNREGA Sameeksha An Anthology of Research Studies on the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005", Ministry of Rural Development, Government of India, ORIENT Blackswan, New Delhi*

Websites:

- *http:/www.mgnrega.nic.in*
- *http://rural.nic.in/*
- www.abhinavjournal.com

Consideration In A Contract: An Analysis

Laxmi Agarwal
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Consideration is an essential part of a contract. Consideration plays an important role to formation of contract. Clause 2(d) defines the consideration. It stipulates that if:

(a) At the desire of the promisor

(b) The promise or any other person

(c) Has done or abstained from doing, or does or abstains from doing, or promises to do or abstains from doing something,

(d) Such act, or abstinence or promise is called a consideration for the promise.

Origins of Consideration : Whether the doctrine of consideration was an indigenous product, or in part derived from the doctrine of causa promissionis of canon or civil law, has long been a matter of controversy, and it cannot be said that its pedigree has yet been explained in a fully satisfactory way.[1] Those who have seen it as a purely homespun product have sought its origin either in a doctrine associated with debt in mediaeval case law (the doctrine of quid pro quo), or in the acceptance by the sixteenth century judges of a notion that only bargains (ie commercial contracts of exchange) should be enforced,[2] or in a transmutation of the need to show damage in a tort action into detriment suffered as a form of consideration in a contract action.[3] The opposing view, which the present writer has argued at length elsewhere, relates the early doctrine of consideration in assumpsit to the earlier doctrine of consideration in relation to uses of land (the ancestor of the modern trust) and sees its ultimate source in canon and civil law, though the precise mechanism of the reception remains problematical.[4]

The Doctrine of Consideration : The purpose of the doctrine of consideration is to put some legal limits on enforceability of agreements and to establish which promise should be legally enforceable. It limits the freedom of individuals to make binding legal promises; only those promises which are supported by consideration are enforceable, others are not binding, ever if the promisor intends to bind himself by the promise.[5]

The other principal achievement of the sixteenth and early seventeenth centuries was the evolution of a body of doctrine to define the scope of the newly recognised promissory liability. Where assumpsit was merely taking over a long-established liability, previously remedied by debt sur contract- such as liability to pay the price of goods sold- new doctrine was not urgently required; where innovation in the form of recognition of new contractual liabilities was involved, it was. The answer given to the problems posed was the doctrine of consideration which is found in assumpsit cases around the mid-sixteenth century.[6] A consideration meant a motivating reason, and the essence of the doctrine was the idea that the action ability of a parol promise should depend upon an examination of the reason why the promise was made. The reason for the promise became the reason why it should be enforced, or not enforced. In contemporary thought a promise was a declaration of will, and the effect of the doctrine was to deprive a bare declaration of will of legal effect. Only a declaration of will supported by a good reason or motive bound the declarer to performance.[7]

Consideration Analysed : This basic idea was capable of great elaboration in two respects. First, the courts could and did develop case by case, a vast body of learning as to which reason was good or sufficient, and which not. Would a promise in consideration of natural love and affection to a kinsman be actionable? Would a promise to pay a debt, in consideration that a debt was owed? Would a promise in consideration of a nominal payment? here what starts life as a list of good consideration eventually comes to be summed up in terms of a general principle, the first attempt to formulate such a principle being found in coke's argument in stone v Wythipol:[8] every consideration that doth charge the defendant in an assumpsit must be to the benefit of the defendant or charge of the plaintiff, and no case can be put out of this rule.

The reference to a charge is an echo of the passage in st.Germain's Doctor and student (1530) where the author in a critical discussion of contract law, offers the idea of induced reliance as an alternative theory of promissory liability to an analysis in terms of consideration.[9] But by 1588 detriment consideration had uneasily absorbed the idea that a promise should bind if the promisee had been induced to rely upon it.

Secondly, the courts evolved or adapted an analysis in temporal terms of the relationship between promise and consideration, which is first found in Hunt v Bate(1568).[10] A promise might be motivated by something in the past, for example a past favour: such a past (or executed) consideration was in general bad. A consideration might be some continuous state of affairs such as the existence of a marriage and this was a continuous consideration, and good. A present consideration meant an act or promise contemporaneous with the promise, and a future (or executor) consideration something yet to happen, such as a marriage not yet celebrated. Into this analysis which in part survives was fitted the important rule that an actionable counter promise would rank as a good consideration.[11]

Mutual Promises : This rule was settled by 1589, when in Strang borough v Warner[12] it was said: note, that a promise against a promise will maintain an action on the case, and seems to have originated in connection with bets, the earliest case being west v stowel (1577);[13] plainly unless an unperformed counter-promise is a good consideration, a bet can never be enforced. When the plaintiff's promise was relied upon as a consideration it had to be a present consideration –i.e. contemporaneous with the defendant's promise, and as in the case of other present consideration the plaintiff did not have to perform before he could sue; in the case of a future consideration performance had to be shown, for without performance no consideration yet existed. Seventeenth century case law settled that one party to such an agreement could not withdraw without the consent of the other, and thus it came to be law

that wholly executor contracts were both binding and actionable.

But this was a highly unsatisfactory rule, for often it was not the intention that one party could sue without performing his side of the agreement and a right of action represents a bird in the bush, as compared with actual performance a bird in the hand. In time the courts evolved an intricate body of law whereby mutual promises were commonly treated as mutually dependent, the obligation to perform one side being treated as conditional upon performance of the other.[14] The involved old learning on dependent and independent promises was summed up in the notes to pordage v cole (1669)[15] and cutter v powell (1795).[16]

At The Desire of The Promisor: The first ingredient of consideration is that the promisor must desire the act or forbearance. It follows that the act performed at the desire of a third party cannot be consideration, in P.K Nanjundasamy v kankaraju[17] it was postulated that where a person contracts a marriage in consideration of a promise of settlement, there was good consideration viz. marriage. Where the desire emanates from a third person and not the promisor the promise is void under section 25 as being without consideration. In Durgaprasad's case[18] defendants promised to pay a commission on the articles sold in a market built by the plaintiff, not at the desire of the defendant but at the suggestion of the collector of the place. Such a promise was held void being without consideration. The words in section 2(d) are at the desire of the promisor and in section 25(2) it is voluntary almost in contradistinction to the former.[19] A mere promise to subscribe a sum of money or entry of such promised sum in a subscription list does not furnish consideration unless there has been some request by the promisor to the promise to do something in consideration of the proposed subscription.[20]

The Promise or Any Other Person: A second principle is that there must be consideration to the promisor (or at his request to some other person) by the person enforcing the contract[21] or by the promise or other person under the act consideration may proceed from the promise or any other person. This is a departure from the English law under which consideration must move from the promise ie the party who wishes to enforce a contract must furnish or have furnished consideration for the promise of the other party, the whole consideration or in part (namely even if provided partly by agent partner or co-partner). In Dutton v Poole[22] the father of a bride was about to fell timber on his estate to provide a marriage portion for her, and refrained from doing so on the eldest son promising to pay the amount to her. It was held that the daughter could maintain an action against the son on the promise to the father. She was neither a party to the contract nor had the consideration moved from her; it had moved from the father: the decision was based on such nearness of relationship between the plaintiff and the party from whom the consideration moved, that the plaintiff might be considered a party to the consideration. Thus a stranger to the consideration could by construction of law, be regarded as a party to it if he was closely related to the person from whom the consideration actually proceeded. This decision was set aside in 1861 by tweddle v Atkinson[23] where the respective fathers of the husband and the wife agreed that each should pay a sum of money to the husband, and that the husband should have full power to sue for such sums. After the death of both the contracting parties, the husband sued the executors of the wife's father on the agreement. The action was held not maintainable. The husband was a stranger to the consideration, and the plea of nearness of relationship to the contracting parties was regarded as of no consequence.[24]

Privity of Consideration: In view of the clear a language used in defining consideration in section 2(d), it is not necessary that consideration should be furnished by the promisee. A promise is enforceable if there is some consideration for it and it is quite immaterial whether it moves from the promise or why other person. In chinnaya v Ramayya[25] an old lady be deed of gift made over certain landed property to the defendant her

daughter. By the terms of the deed, which was registered it was stipulated that an annuity of Rs. 653 should be paid every year to the plaintiff, who was the sister of the old woman. The defendant on the same day executed in plaintiff's favour an Iqrarnama(agreement) promising to give effect to the stipulation. The annuity was however, not paid and the plaintiff sued to recover it.

it was clear that the only consideration for the defendant's promise to pay the annuity was the gift of certain lands by the old woman to the defendant. The defendant therefore, tried to defend herself on the ground that the promise (the plaintiff) had furnished no consideration. Briefly, the whole situation was this: the defendant's promise was given to the plaintiff, but consideration was furnished by the plaintiff's sister. The court could have easily allowed the plaintiff to recover the annuity, as consideration given by any other person is equally effective.

Privity of Contract: The rule of privity of contract which means that a stranger to contract cannot sue has taken firm roots in the English common law. In its sixth interim report the committee stated: where a contract by its express terms purports to confer a benefit directly on a third party, the third party shall be entitled to enforce the provision in his own name. provided that the promiser shall be entitled to raise against the third party, any defence that would have been valid against the promisor . in the case of Beswick v Beswick[26] B was a coal merchant. The defendant was assisting him in his business. B entered into an agreement with the defendant by which the business was to be transferred to the defendant. B was to be employed in it as a consultant for his life and after his death the defendant was to pay to his widow an annuity of £ 5 per week, which was to come out of the business. After B's death the defendant paid B's widow only sue sum of £ 5. The widow brought an action to recover the arrears of the annuity and also to get specific performance of the agreement. It was held that she was entitled to enforce the agreement. Thus the plaintiff was allowed to enforce the agreement in her personal capacity, although she was not a party to it and it was considered not necessary to infer a trust in favour of the plaintiff. Lord Denning MR concluded with the words: where a contract is made for the benefit of a third person who has a legitimate interest to enforce it, it can be enforced by the third person in the name of the contracting party or jointly with him or if he refuses to join by adding him as a defendant. In that sense, and it is a very real sense, the third person has a right arising by way of contract. He has an interest which will be protected by law. The observations to the contrary are in my opinion erroneous. It is different when a third person has not legitimate interest, as when he is seeking to enforce the maintenance of prices to the public disadvantage.[27]

Exception To The Privity Rule:

1. Trust: If the right of the third party does not arise out of contract but out of a trust the cestuique trust or the beneficiary has a right of action.

2. Acknowledgement or Estoppel : Where the promisor has by his conduct whether it is by acknowledgement or by part payment or by estoppel created privity of contract with the stranger, he cannot latter demur to the action initiated by the stranger. In sadiq Alikhan v Jai Kishori[28] the privy council pointed out that execution of a deed by a minor cannot operate as any estoppel against him when he attains majority.

3. Charge: These exception arises when a charge in favour of a person is created on specific immovable property. In such an event the charge is enforceable at the instance of the person beneficially interested, though he may not be a party to the document creating the charge.[29]

4. Family Arrangements or Marriage Settlements: the fourth exception arises in cases of family arrangements or marriage settlements or otherwise when a charge is created on specific immovable property intended to benefit a third person or where provision is made for the marriage expenses of female members.[30]

Adequacy of Consideration: Consideration need not be adequate to the promise since English Law required only a detriment to support a promise and nowhere insisted the detriment to be equivalent in value to the promise made. But inadequacy can be evidence to show want of consent, mistake, fraud, coercion or undue influence. What is required is some benefit or some detriment.[31] Adequacy cannot be an issue unless it is grossly trivial and shocking so as to lead to an inference of want of consent.[32] Lord Westbury said in Barell v Dann[33] "An equity may be founded on gross inadequacy of consideration but it can only be when the inadequacy is such as to involve the conclusion that the party either did not understand what he was about, or was the victim of some imposition." Where fraud, coercion or undue influence is alleged inadequacy of consideration will be a piece of evidence to support such a plea. Consideration has also to be competent not illusory or unreal. If it is physically impossible, vague, ambiguous or loose, or legally impossible, the contract cannot be enforced. A promise at some time is too vague to be enforced. A contract by a decree-holder to certify payment to the court cannot have for its consideration a part payment of the decree amount.[34]

Conclusion: Consideration is a benefit which must be bargained for between the parties, and is the essential reason for a party entering into a contract. Consideration must be of value and is exchanged for the performance or promise of performance by the other party (such performance itself is consideration). In a contract one consideration is exchanged for another consideration. Acts which are illegal of so immoral that they are against established public policy cannot serve as consideration for enforceable contracts.

Consideration may be past, present and future. Consideration must be something of value. The consideration need not be adequate to the promise for the validity of an agreement. Contracts may become unenforceable or rescindable for failure of consideration when the intended consideration is found to be worth less than expected, is damaged or destroyed, or performance is not made properly.

Without lawful consideration is not meaningful for any valid contract. Contract considered many essential elements and lawful consideration is integral part or element of a valid contract. Which lawful consideration follows some rule then we called good consideration. But some exceptions to the rule - no consideration, no contract. In English law a contract under seal is enforceable without consideration.[35]

References:

1. *See simpson History pt. II chs 4-7 for a full account. See also baker in on the laws and customs of England: Essay in honor of Samuel E Thorne (ed Morris S Arnold, 1981)*
2. *Strenuously argued by fifoot himself; see also shatwell 1 Sydney L Rev 289*
3. *In different forms argued by Holdsworth and recently by milsom*
4. *Chesire, fifoot, frumston 15th edn.*
5. *PS Atiyah an introduction to the Law of contract, 15th edn, 1995, p 118 , Pollock &mulla: mullaindian contract and specific relief acts 12th edition*
6. *The history of consideration is controversial; in addition to the words listed at p 1, n 1, above, see holmes the common law lect vii; salmond essays in jurisprudence and legal history pp 187 ff; Milsom (1954) CLJ 105; Barton 85 LQR 372; Baker 94 seldon society 255 ff. baker in Arnold on the laws and customs of England 336. The earlistassumpsit case in the printed reports to mention considerationeo nomine is joscelin v Shelton (1557) 3 leon 4, benl 57, moo KB 51: the consideration was a future marriage, and the case concerned a promised marriage gift or dowry.*
7. *Cheshire, fifoot&furmston's 15th edition*
8. *(1588) Cro Eliz 126*
9. *91 YB Seldon Society 230*
10. *3 Dyer 272a*
11. *Cheshire, fifoot&furmston's 15th edition*
12. *4 Leon 3.*
13. *2 Leon 154*
14. *See stoljar History ch 12 and the same author in 2 sydney L Rev. 217*

15. 1 wmssaund 319
16. 6 Term Rep. 320cheshire, fifoot&furmston's 15th edn.
17. AIR 1919 Mad 500,595
18. (1880) 3 All 221.
19. Raja of venkatagiri v shrikrishnayya AIR 1948 Pc 150
20. Doraisamyiyer v Arunachala AIR 1936 Mad 135 , V.G Ramchandra , the Law of contract In India vol. I , 2nd edn.
21. Dunlop Pneumatic Tyre Co. Ltd. V Selfridge & co. Ltd. (1915) AC 847
22. (1688) 2 Lev 210
23. (1861) 1 B & S 393
24. Pollock &mulla: mullaindian contract and specific relief act 12th edn.
25. (1882) 4 Mad 137:6 IndJur 402
26. (1966) 3 All ER 1
27. Avtarsingh: contract act & specific relief 10th edition
28. AIR 1928 Pc 152, 156
29. SuryanarayanaRao v Basivi Reddy, (1932) 55 Mad 436: 62 MLJ 533
30. Saiyedsajad Ali khan v Mst. Badshah Begum AIR 1936 Oudh 385, V.G Ramchandra: Law of contract in india 2nd edition
31. AG of Bengal v Juggeswar, (1877) 3 Cal 192
32. Underhill v Harwood (1804) 32 ER 824
33. (1843) 67 ER 181
34. Karim Bux v Debi (1933) ALJ 670, 104
35. www.legalserviceindia.com visited on 03.09.2016, 12.30pm

Human Rights In India And Judicial Trends

Dr. Devendra Kumar Sharma
Principal, Rajdhani Law College, Jaipur

shodhshree@gmail.com

With the democracy having been adopted as he only acceptable from Government in the world and its roots having dependent on the soil and in the minds of the people, the human rights have become a way of life and as essential part of human living. We the Indians take pride in belonging to the largest democracy on the globe with a rich culture and the fact that Indian Constitution was drafted when the Universal Declaration for Human rights was drafted and adopted. Accordingly we do note with satisfaction that our Constitution and other statues taking source and strength from it contain all the important provisions of human rights demanded to be there by the international convents and other documents on the subject[1].

Removing Every Term From Every Eye : The Cherished Goal

The goal of our democracy, if it is to be summed up in a sentence, is to recall the father of the nation and his most pregnant words uttered at the dawn of independence: to wipe every tear from every Indian eye'. This goals has often been reminded and reiterated not only by our rulers starting with the visionary first prime minister, Pt. Jawaharlal Nehru but also by our law makers and other agencies working for the accelerated development of our country. It is for this reason that our judiciary, as the watchdog of our democracy, has also reminded out governments of this Cherished goal setforth by the founding fathers of our constitution and the architects of our democracy, The Supreme court of India underscored this objective in som parkas Rekhi v. Union of India and other some 20 years back in the following words:

Jawahar Lal Nehru warned the constituent Assembly about the problem of poverty and social change. 'The service of India means the service of millions who suffer. It means the ending of poverty and ignorance and disease and inequality of opportunity. The ambition of the greatest man our generation has been to wipe every tear from every eye. That may be beyond us, but as long as there are tears and suffering, so long our work will not be over.'[2]

The concept of human rights has assumed great significance globally during

the recent past and it has become a matter of serious concern all over the globe in the present day to day life. In all the societies irrespective of social – political – economic – ethnic – ideological disparities and differences, it has been observed that people treat each other depending upon their motivation may be of love, gratitude, hatred greed etc. Human beings display certain needs which must be satisfied if they have to survive, grow and develop their pretensions as well as for the development of the society. These basic needs have been incorporated in almost all the national constitutions which contain catalogues of human rights and basic fundamental freedoms.

Human right are no doubt the inherent rights of a man, without which one cannot live with dignity. During the ancient and medieval period, the concept of human rights was unknown[3] Though the concept of human rights is very old it assumed great importance only after the Second World War. The aftermath of the Second World War witnessed tremendous concern for humanity. As a result great progress was made in the field of human rights The Universal Declaration of Human Rights which was adopted by the UN General Assembly on 10th Dec. 1948, has been proclaimed "as a common standard of achievement for all people and all nations". It incorporates not only the traditional Civil Liberties but also Social, Economic and Cultural Rights. Together with it, the two international human instruments, namely, the International Covenant on Civil and Political Rights, 1966, and The International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, 1966, have been wide connotation to the concept of human right.[4] The preamble of the Declaration adumbrates the concept of these rights in the world:

"Whereas recognition of the inherent dignity and of the equal and inalienable rights of all members of the human family is the foundation of freedom, justice and peace in the world, whereas disregard and contempt for human rights have resulted in barbarous acts which have outraged the conscience of manking, and advent of a world in which human beings shall enjoy freedom of speech and belief and freedom from fear and want has been proclaimed as the highest aspiration of the common people. Whereas it is essential, if man is not to be compelled to have recourse, as a last resort, to rebellion against tyranny and oppression, that human rights should be protected by the rule of law.

Whereas it is essential to promote the development of friendly relations between the national.

Whereas the peoples of the United Nations have in the Charter reaffirmed their faith in fundamental human rights, in the dignity and worth of the human person and in the equal rights of men and women and have determined to promote social progress and better standards of life in larger freedom, whereas member states have pledged themselves to achieve, in co-operation with the United Nations, the promotion of universal respect for the observance of human rights and fundamental freedoms, whereas a common understanding of these rights and freedoms is of the greatest importance for the full realization of this pledge.[5]

Though the Universal Declaration of Human rights was adopted towards the close of 1948 and the ball was set rolling for more international covenants and national efforts to integrate them in their own laws but the concept of these rights is as old as human civilization. The concept of democratic governance by a limited sovereign given by Locke [6] and the Magna Carta of England [7] are accepted to have provided substances to these rights. As such, the human rights may be called as the rights which are inherent in nature and without which we cannot live as human beings because such rights and freedoms allow us to fully develop and grow congenial atmosphere.

The Indian constitution was drafted in 1949 at a time when deliberations for the Universal Declaration were in the air. Therefore, the framers of the Indian Constitution were influenced by the concept of human rights it had already guaranteed most of the human rights which later

came to be embodied in the International convenants1966.

It is satisfying to note that all the above mentioned rights are provided in the Covenants and are also guaranteed to the India poor under the constitution.

We can make a brief mention of these rights and their provisions:

(i) Rights to equality and non-discrimination.[8]

(ii) Right to life and personal liberty.[9]

(iii) Right against arbitrary arrest.[10]

(iv) Right against self – incrimination.[11]

(v) Freedom of Movement.[12]

(vi) Freedom of though and expression.[13]

(vii) Right to assemble peacefully.[14]

(viii) Right to form association.[15]

(ix) Right to Property.[16]

(x) Right against slavery.[17]

(xi) Equal access to public services.[18]

(xii) Right to take part in public affairs.[19]

(xiii) Right to growth during childhood.[20]

(xiv) Right to get human rights enforced.[21]

(xv) Equality before law.

From the above references of the provisions in the International documents adumbrating the human rights to the member of civilized societies and the rights outlined in the constitution of India, we feel very much satisfied that all the essential rights of the poor persons that help them feel equal members of the democratic society and those required for their proper growth and development are available to them in the Indian setup.

The latest judicial trend reveals the India courts are quite enthusiastic in using in the law as a tool of social revolution.

What is being realized is that the process of social change through law involves not only the legislature but law courts also interact and react thorough interpretative device.

That is why judiciary successfully hammers out Human Rights jurisprudence in the light of the philosophy envisaged in our National charter. It is perhaps with this philosophy in mind that courts in India have been endeavoring to shield the cause of the poor and wage war against the plight condition of prisoners. [22], destitute women [23], bonded labour [24], agricultural and industrial labour [25], etc. Public Interest Litigation [26] strategy is showing signs of warming up and shaping legal ideology in consonance with the philosophy of Human Rights.

Chief justice Bhagwati has rightly observed that the Courts in India should not be guided by any verbal or formalistic canons of Construction but by the paramount object and purpose for which this constitution has been enacted [27]. He too has made law as a tool of social transformation for creating a new social order imbued with social justice[28]. He made a prophetic observation which has inspired the poor, the weak and the destitute to seek protection of the court against exploitation, injustice and tyranny. Chief justice Bhagwati highlighted the new-swing and significance of judicial process in these words.[29]

"Today a vast revolution is taking place in the judicial process, the theatre of the law is fast changing and the problems of the poor are coming to the forefront. The Court has to innovate new methods and devise new strategies for the purpose of providing access to the justice to large masses of the people who are denied their basic human rights and to whom, freedom and liberty has no meaning"

II. Human Rights Jurisprudence And Public Interest Litigation

The concept of "Public Interest Litigation" is of recent origin. It originated in the United States in 1965 while in England it began during the years of Lord Denning in 1970's It was, however, adopted in India in 1981 when justice Krishan Iyer delivered some epoch-making judgments in Public Interest Litigation cases[30]. Justice Iyer defied the term "PIL" as a process of obtaining justice for the people, of voicing people's

grievances through the legal process. The aim is to give to the common people of this county access to the Courts to obtain legal redress.[31] Keeping in view the constitutionals commitment towards human rights the courts in India have developed Public Interest Litigation as a dynamic Instrument by lowering the threshold levels of locus-standi. The traditional view of locus-standi that only an 'aggrieved person' who had personally suffered a legal injury by reason of violation of his rights or legally protected interests could file a suit for the redress of his grievance is now being liberally interpreted to allow standing to any pro bono public.[32]

Now the rule of locus-standi has been made broad based the people-oriented to allow access to justice through class actions.[33] The very idea to relax traditional rule of locus-standi is that justice becomes available to the lowly and lost. [34] A plethora of judicial decisions reveal that Courts in India have always given a patient hearing to the cause of the poor whose rights had been at stake and earnestly upheld the philosophy of human rights jurisprudence envisaged in our constitution.

III. Right To Live With Human Dignity

Human rights are part and parcel of Human dignity which is adequately secured by various provisions[35] of the constitution of India. The importance of the concept of Human dignity is well exemplified by its inclusion in the National and International basic legal texts.[36] The Preamble to the constitution of India assures among other things "dignity of the individual". The Supreme Court has further expanded the scope of 'right to life' by saying that any act which damages or injures or interferes with the use of any limb or faculty of a person, either permanently or even temporarily would be within the inhibition of Art. 21. Justice Bhagwati J. Said : "We think that right to life includes the rights to live with human dignity and all that goes along with it, namely, the basic necessaries of life such as adequate nutrition, clothing and shelter over the head and facilities for reading, writing and expressing oneself in diverse forms, freely moving about and mixing and commingling with fellow human being.[37]

To be true, man cannot enjoy his life unless he is treated as a human being and not as a commodity. Human dignity is the basic factor amongst human-rights, without which all human rights are without sense. It is with this philosophy in mind that judiciary has shown its deep concern for such people. Through judicial activism it has given new contents and meaning to letter of law. The Supreme Court has held that the right to live with human dignity is the fundamental right of every citizen and the state is under duty to provide at least minimum conditions ensuring Human right dignity.38

IV. Right to Livelihood

Again in Delhi Transport Corporation v. D.T.C. Majdoor Congress,39 the above principal was reiterated by the Supreme Court. In this case the Supreme Court considered the case of the employees of the Delhi Transport Corporation who were being deprived of the employment. Such employment was taken to be right to livelihood of those persons. In this case also deprivation of their employment would have resulted in threat to their very existence.

V. Right to Shelter

The right to shelter is one of the principal rights the constitute the entire spectrum of Human rights jurisprudence. The apex court has given wider coverage [40] to the philosophy of right to shelter under the constitution of India. Similarly, in Prabhakaran Nair v. state of Tamil Nadu [41] the then justice Mukherjee after emphasizing the urgent necessity of having a National Housing Policy went to the extent of saying "right to, shelater is one of the fundamental rights."

Right to shelter, therefore includes adequate living place, safe and decent structure, clean and decent surrounding, sufficient light, pure air and water, electricity, sanitation and other civil amenities like roads, etc. so as to have easy access to his daily avocation. The right to shelter

therefore, does not means a mere right to a roof over one's head but right to all the infrastructure necessary to enable them to live and develop as a human being.

Vi. Right To Privacy

Right to privacy – synonymous with right to be left alone is becoming heart beat of Human Rights movement both at National and International level. A question arose for the frist time in Kharak Singh v. State of U.P., whether right to privacy was included in the right to personal liberty. The issue involved in the instant case [42] was whether the 'Surveillance' of the petitioner under U.P. Police Regulations amounts of infringement of Fundamental Rights. The Supreme court after referring to the views of American judges on privacy and also to its fouth and fifth confer any right to privacy, but recognised that an unauthorized intrusion into person's home and disturbance caused to him thereby is as it were the violation of common law rights of man an ultimate essential ordered liberty, if not of the very concept of civilization.

In a very recent case,[43] the Supreme Court again got an opportunity to express its opinion on the question whether right to privacy was implicit in Article 21. Resolving the existing controversy, the court unequivocally held that right to privacy was implicit in Article 21 According to it, a citizen has right to safeguard the privacy of his own, his family, marriage, procreation, motherhood, child-bearing and education among other matters.

VII. Right to Health and Medical Assistance

The Courts in India are showing keen interest introjecting the health of the people in the society. The judiciary has accepted it in clear-cut manner that administrative as well as judicial wings of this state are under a duty not to adopt an indifferent attitude in this respect.[44] In D.S. Nakara v. Union of India,[45] the court held that, Then comes the old-age in the life of every man, be he mon arch, or a Mahatma, a worker or a pariah. The old-age overtakes each one, death being the fulfillment of life providing freedom from bondage. But here socialism aims at providing an economic security to those who have rendered unto society what they were capable of doing when they were fully equipped with their mental and physical prowess. In the fall of life the state shall ensure to the citizen a reasonably decent standard of life, medical aid, freedom from want, freedom from fear and the enjoyable leisure, relieving boredom and the humility of dependence in old-age.

The Supreme Court of India through its verdict handed down in Parmanand Katara v. Union of India. [46] It has been held by the Supreme Court that it was not only moral but legal duty of the doctors of state hospitals to immediately attend to a patient without waiting for the police to come. If the doctors refuse to provide treatment, it will amount to violation of fundamental Right to life guaranteed under Article 21 of the constitution.

VIII. Right to Healthy Environment

The uniqueness of Indian Constitution lies in the fact that it reflects the Human Right approach to environment protection through various constitutional mandates. [47] The constitution of India obligates the state as well as the citizens to protect and improve the environment. Article 21 of the constitution guarantees a fundamental Right to be lived in a proper environment, free of danger disease and infections.

The Supreme Court of India has entertained writ petitions under Art. 32 regarding the environmental issues and ordered the closure of stone quarries on the ground that their operation was upsetting the ecological balance. [48]The uniqueness of judicial approach lies in the fact that it has endeavored to read Art 48-A into Art. 21 of the constitution and regarded the right to live in healthy environment as a part of life and personal liberty of the people.e

In a significant judgment in India Council of Enviro-legal Action v. Union of India,[49] the Supreme Court has held that if by the action of private corporate bodies a person's Fundamental Rights is violated the Supreme Court would not accepted the argument that it is not 'state' within the meaning of Art. 12 and therefore, action

cannot be taken against it. If the court finds that Government or authorities concerned have not taken action required of them by law and this has resulted in violation of right to life of citizens, it will be the duty of the court intervene. Therefore the Supreme Court held that writ was maintainable and directed the authorities concerned to perform their statutory duties under various Acts. environmental (Protection) Act, 1986, Water Prevention and Control of Pollution Act, 1974, Air (prevention and Control of Pollution) Act 1981 and Hazardous Wastes (Management and Handling) Rules, 1989.

The foregoing discussion reveals that judiciary in India is playing a significant role in protecting Human Rights of the people. The latest trend available depicts that Courts are using law as tool of social revolution. India judges have started interpreting law in its contextual and social setting. They are now no longer being guided by any formalistic consigns of construction. What is evident from judicial approach is that the apex Court is using law as a tool of social transformation for creating a new social order imbued with social justice.

The entire traditional philosophy of self-incrimination jurisprudence has undergone a vast change because of judicial endeavor. The scope of Art. 21 of the Constitution has been widened in the light of changing values of Indian society. The new interpretation of Art 21 has brought about a vital change in the field of Human Rights jurisprudence. All this ultimately enables us to conclude that Indian judiciary has endeavoured hard to uphold the spirit of Universal Declaration of Human Rights, 1948, International covenant on Economic, Social and cultural Rights, 1966 thereby achieved a tremendous success in resurrecting the Human Rights Jurisprudence.

References

1. *Human rights to the India poor: Reasons for the poor reach : Dr. Subhash C. Sharma*
2. *Human right of The Indian poor: reasons for the poor reach – Dr. Subhash C. Sharma*
3. *Human rights evaluation, issues and challenges, - Dr. M.R. Biju.*
4. *Human rights evaluation issues and challenges. – Dr. M.R. Biju.*
5. *General Assembly Resolution 217 (A) (III) of 10 Dec. 1948.*
6. *Locke, Two Treatises of Government in MDA Freeman, Lloyd's introduction to jurisprudence (1994 Indian Edition), pp. 139-40.*
7. *Magna carta was adopted in England in the year 1215.*
8. *Article 1 of the covenant on civil and political Rights and Articles 14,15 and 16 of the continuation of India.*
9. *Articles 6 and 9 of covenant and Article 21 of the constitution.*
10. *Article 9 of covenant and Articles 22 of the Constitution.*
11. *Article 14 of covenant and Articles 20 of constitution.*
12. *Article 12 of covenant and Articles 19 of the constitution.*
13. *Article 18 of covenant and Articles 19 of the constitution.*
14. *Article 22 of covenant and Articles 19 of the constitution.*
15. *Article 23(3) of the Declaration and Article 19 of the constitution.*
16. *Article 17 of the Declaration and Article 300-A read with 19 (i) (g) of constitution.*
17. *Article 8 of the covenant and Article 23 of the constitution.*
18. *Article 21 of Declaration and Arts. 15,16 and 23 of constitution.*
19. *Article 25 of the covenant and Articles 325 and 326 of constitution.*
20. *Article 14 of the covenant and Article 24 of constitution.*
21. *Article 8 of Declaration and Article 32 of constitution.*
22. *Veena seth v. state of Bihar, AIR 1984 SC 339; Sunil Batra v. Delhi admn, AIR 1980 SC 1579.*
23. *State of Haryana v. Darshana Devi, AIR 1979 SC 855.*
24. *Neerja Chaudhary v. State of M.P. AIR 1984 SC 1099.*
25. *Ibid.*
26. *Fertilizer corporation, Union sindri v. Union of India, AIR 1984 SC 344; people's Union for*

democratic rights v. Union of India, AIR 1982 SC 1473.

27. Bandhua Mukti Morcha v. Union of India, AIR 1984 S.C. 802
28. Ibid.
29. Ibid
30. Municipal council, Ratlam v. Vardhichand and others, AIR 1980 S.C. 1622; fertilizers corporation Kamgar union v. Union of India, AIR 1981 S.C., 344.
31. Ibid
32. S.P. Gupta v. Union of India 1981 Supp. SCC 87 at pp. 381-87
33. Bhagwati, J. in people's Union for Democratic rights v. Union of India (1982) 3 SCC 235.
34. Ibid
35. For detail see constitution of India. The preamble, Articles 21, 39 (e) and (f), 41 and 42.
36. Ibid, also see covenant on Civil and political Rights, 1966, and Covenant on social, Economic Cultural Rights, 1966.
37. Francis Coralie v. Union of Delhi, AIR 1981 SC 746 at 753
38. Vikram Deo Singh Tomar v. State of Bihar, AIR 1988 SC 1782.
39. Delhi Transport Corporation v. D.T.C. Majdoor Congress, AIR 1991 SC 101.
40. Francis Coralie Mullin v. Union Territory of Delhi, AIR 1981 SC 746.
41. AIR 1987 SC 2117.
42. AIR 1963 SC 1295.
43. R. Rajagopal v. State of T.N. AIR 1995 SC 264; People's Union for Civil Liberties v. Union of India, AIR 1997 SC 568.
44. Municipal Corporation of Delhi v. Suraj Ram, (1995) 2 Cr. L.j. 571
45. AIR 1983 SC 130.
46. State of Punjab and others v. Mohinder Singh Chawla and others (1997) 2 SCC 83.
47. For details see Constitution of India, Arts. 21 and 48 A.
48. AIR 1985 SC 652; AIR 1985 SC 1259; AIR 1987 SC 359; AIR 1987 SC 2426.
49. (1996) 3 SCC 212; see also Vellore citizen welfare forum v. union of India (1996) 5 SCC 647.

Claim Settlement in Life Insurance

Dr. Chitra Rathore
Assistant Professor, S.S. Jain Subodh P.G (Autonomous) College, Jaipur

shodhshree@gmail.com

The Insurance Policy is taken by the consumers to compensate them in the event of happening of an unforeseen event. It is a hedge against unavoidable circumstances. In general insurance the loss is payable only on happening of some specific event. If the insured does not suffer any loss no claim is paid to him. The premium is charged on yearly basis and no accumulation takes place. However the scenario is different in case of life insurance. If the insured dies during the policy period he gets the sum assured along with the bonus accrued under the policy if any. If the insured survives the policy period he gets the maturity amount accrued under the policy. In this lesson we shall learn the various aspects in settlement of life insurance claim.

Payment of claim is the ultimate objective of life insurance and the policyholder has waited for it for a quite long time and in some cases for the entire life time literally for the payment. It is the final obligation of the insurer in terms of the insurance contract, as the policyholder has already carried out his obligation of paying the premium regularly as per the conditions mentioned in the schedule of the policy document. The policy document also mentions in the schedule the event or events on the happening of which the insurer shall be paying a predetermined amount of money (S.A.). There may be three types of claim in life insurance policies–

1. Survival Benefit Claim
2. Maturity Benfit Claim
3. Death Benefit Claim

Survival Benefit: Survival benefit is not payable under all types of plans. It is payable in endowment or money back plans after a lapse of a fixed period say 4 or 5 years, provided firstly the policy is in force and secondly the policyholder is alive. As the insurer sends out premium notices to the policyholder for payment of due premium, so it sends out intimation also to the policyholder if and when a survival benefit falls due. The letter of intimation of survival benefit carries with it a discharge voucher mentioning the amount payable.

The policyholder has merely to return the discharge voucher duly signed along with the policy document. The policy document is necessary for endorsement to the effect that the survival benefits which was due has been paid. The survival benefit can take different forms under different types of policies.

It is a final payment under the policy as per the terms of the contract. Any insurer is under obligation to pay the amount on the due date. Therefore the intimation of maturity claim and discharge voucher is sent in advance with the instruction to return it immediately. If the life assured dies after the maturity date, but before receiving the claim, there arises a typical problem as to who is entitled to receive the money. As the policyholder was surviving till the date of maturity, the nominee is not entitled to receive the claim. The policy under such conditions is treated as a death claim where the policy does not have a nomination. The insurer in such a case shall ask for a will or a succession certificate, before it can get a valid discharge for payment of this maturity claim. In case the policy has been taken under Married Women's Property Act, the payment of maturity claim has to be made to the appointed trustees, as the policyholder has relinquished his right to all the benefits under the policy. It is for this relinquishment of right that the policy money enjoys a privileged status of being beyond the bounds of creditors etc. If the maturity claim is demanded within one year, before the maturity it is called a discounted maturity claim. This amount is much less than the maturity claim.

If the life assured dies during the term of the policy, the death claim arises. If the death has taken place within the first two years of the commencement of the policy, it is called an early death claim and if the death has taken after 2 years, it is called a non early death claim.

Claim Documents & Forms and Settlement Procedure

The documents required for payment of maturity claim:

- Age proof, if age is not admitted.
- Original policy document for cancellation.
- In case assignment is executed on a separate paper, that document has to be surrendered.
- Discharge form duly executed.
- Indemnity bond in case the policy document is lost or destroyed, duly executed by the policyholder and a surety of sound financial standing.

The documents required for payment of a death claim. (i) An intimation of death by the nominee or a near relative. (ii) Proof of age if not already admitted. (iii) Proof of death. (iv) Doctor's certificate who attended the deceased during his last illness. (v) Identity certificate from a reputable person who saw the body of the deceased life assured. (vi) Certificate of cremation or burial from a reputable person who attended the funeral. (vii) An employer certificate if any, of the deceased. If the policy has been assigned validly or if there is a valid nomination in the policy document, no further proof of title to the policy money is necessary. In other cases, the satisfactory evidence of title to the estate of the deceased is required from competent court of law. e.g. (i) A probate of the will, if a will has been executed by the deceased life assured. (ii) A succession certificate if no will has been left. (iii) A certificate from the Administrator General, if the total amount of the estate left does not exceed Rs. 2,000/-. In case there is a rival claim court's prohibitory order may be required to prevent the insurer from making the payment to the nominee as mentioned in the policy document.

In case the life assured has disappeared Under Indian Evidence Act, 1872, Section 108, a person who has disappeared is presumed to be dead only if he has not been heard of for 7 years by those who would naturally have heard of him, if he had

been alive. The claimant has to produce the decree of the court to the effect that the assured should be presumed to be dead. The legal heirs are required to keep on paying the premium payment till such court order is received failing which the policy will be treated as a paid up policy. In case the premature death claim In case of a premature death claim, i.e. a death within two years of the commencement of the policy, the insurer asks from claimant documents in order to eliminate the possibility of any suppression of a material fact at the time of submitting the proposal. (i) Hospital treatment details where the assured was hospitalised. (ii) Certified copies of postmortem report (iii) The police investigation report if death is due to an accident or unnatural cause.

Procedure of Claim Settlement

Maturity Benefit

If the policyholder lives through the duration of the policy and becomes eligible to get the maturity value it is called the settlement of a maturity claim. As the policyholder is alive, the nomination is of no significance. Age is normally admitted at the stage of the proposal. If it has not been admitted for some reason, it is necessary to submit the age proof before the payment of the maturity value. Much before the date of maturity the insurer sends the claim discharge voucher which has to be returned duly signed and witnessed along with the policy document for payment of the maturity value.

Death Claim

In case of the death of the policyholder at anytime during the duration of the policy, the claim amount becomes payable to Death Claim In case of the death of the policyholder at anytime during the duration of the policy, the claim amount becomes payable to the claimant generally is required to fill in a form giving certain routine information about his title to the policy money and the information relating to death, which is normally called a claimant's statement. The claim settlement process consists of:

1. Intimation of Claim
2. Documentation
3. Submission of required Documents for Claim Processing
4. Settlement of Claim

Premature claim

It is a premature claim if the death has occurred within two years from the commencement of the policy or the date of last revival, or medical examination. The insurer takes certain precautions before making payment under such a premature claim. If the premature death has been due to an accident, it is necessary to get a police inquiry report in lieu of the attending physician certificate. Suicide, if it has taken place within one year of the beginning of the risk, exempts the insurer from the liability of the payment of the claim. The propensity to commit suicide is a moral hazard and is not expected to continue beyond one year. If the policyholder disappears and he has not been heard of for 7 years by those who would naturally have heard of him, if he had been alive, he is presumed dead as per Sec 108 of the Indian–Evidence Act, 1872. However, it is necessary to keep the policy in force during this period by payment of the due premiums on the due dates.

IRDA Regulation On Policyholders Protection

The Insurance Regulatory and Development Authority has issued the Protection of Policyholders' Interests Regulations, 2002. This regulation states the matters to be stated in the life insurance policy for the protection of policyholder's interests. It also lays down the procedure to be adopted towards the settlement of claim under a life insurance policy.

Claims procedure in respect of a life insurance policy

(I) A life insurance policy shall state the primary documents which are normally required to be submitted by a claimant in support of a claim.

(ii) A life insurance company, upon receiving a claim, shall process the claim without delay. Any queries or requirement of additional documents, to the extent possible, shall be raised all at once and not in a piecemeal manner, within a period of 15 days of the receipt of the claim.

(iii) A claim under a life policy shall be paid or be disputed giving all the relevant reasons, within 30 days from the date of receipt of all relevant papers and clarifications required. However, where the circumstances of a claim warrant an investigation in the opinion of the insurance company, it shall initiate and complete such investigation at the earliest. Where in the opinion of the insurance company the circumstances of a claim warrant an investigation, it shall initiate and complete such investigation at the earliest, in any case not later than 6 months from the time of lodging the claim.

(iv) Subject to the provisions of Section 47 of the Act, where a claim is ready for payment but the payment cannot be made due to any reasons of a proper identification of the payee, the life insurer shall hold the amount for the benefit of the payee and such an amount shall earn interest at the rate applicable to a savings bank account with a scheduled bank (effective from 30 days following the submission of all papers and information).

(v) Where there is a delay on the part of the insurer in processing a claim for a reason other than the one covered by sub-regulation (4), the life insurance company shall pay interest on the claim amount at a rate which is 2% above the bank rate prevalent at the beginning of the financial year in which the claim is reviewed by it.

Conclusion

Life Insurance is a business related with the emotions of the Insured, so equally important is the Claim settlement by the Insurer well in time. The primary role of an Insurance company is to settle claims as that is the value add which is provided to the clients. So the settlement of the claims has to be very carefully, well in time and without any ignorance. As the reputation and business of the insurance company lies on to it. Equally important part for the Insurer or the clients is to read and go through the policy terms and conditions properly and present the appropriate documentation for the systematic proceeding of the claim settlement process.

References:

1. *Gupta, P.K., Insurance and Risk Management.*
2. *IRDA Journal*
3. *Hand Book for insurance Agents.*
4. *Mishra M.N., Insurance principles and practices*
5. *Kutty, ShashidharanK. ,-Managing Life Insurance*
6. *Dr.A.Murthy, Principles and practice of Insurance*
7. *Kaninika Mishra, Fundamentals of Life Insurance: Theories and Applications.*
8. *www.licindia.in*

Contribution of Women in Indian National Movement During Extremist Phase

Vikram Jha
Lecturer, B.J.S. Rampuria P.G. College, Bikaner

shodhshree@gmail.com

Studies on women's role in the nationalist movement or of the implications social or political-of their momentous entry into the public sphere are scant. Important works on the national movement mostly fail to examine the significance of women's participation in the freedom struggle. The history of national movement would be incomplete without mentioning the contributions of women. Women shouldered critical responsibilities in India's struggle for freedom. The sacrifice made by the women of India occupies the foremost place. They fought with true spirit and unafraid courage and faced various tortures, exploitations, and hardships to earn us freedom. When most of the men freedom fighters were in prison, the women came forward and took charge of the struggle. The list of great women whose names have gone down in history for their dedication and undying devotion to the service of India is a long one.

Women's Participation in Nationalist Movement: Extremist Phase

The closing decade of the nineteenth century and early years of the twentieth century witnessed emergence of a new and younger group within the Indian National Congress who were sharply critical of moderate policy of loyalty to British and advocacy of the constitutional means. The younger group alias extremists demanded for more vigorous political actions and methods than those of the meetings, petitions, memorials etc. If we focus over the social composition of moderate leadership, we can underline two specific features; firstly the moderate leaders were very successful in their professions so politics was only a part time affair for them. Secondly, almost all of them were English educated people. So, they were not sharing social base with common people. On the other hand, the new, extremists, emerged appealed to a wider circle of the lower middle class, students and sections of peasants and workers. Instead of prayers and petitions, self reliance and constructive work became the new slogan, self help, passive resistance, use of vernaculars, utilization of traditional popular customs like village fair came to be recognized as the best way of bridging the gulf between have and have not's.

With the beginning of the extremist phase, the nature and focus of the national movement took a major shift. In this phase, women's interests and concerns started taking a concrete shape. Unlike the late 19th century, when women organizations were mostly formed by men, in this phase, many such organizations were established by women themselves. Four reasons can be underlined behind this phenomenon:

(a) Feminist Movement.

(b) Feminist Literature.

(c) Swadeshi Movement.

(d) Organizations established by women.

Unlike the western Feminist movement, India's movement was initiated by men, and later joined by women. The efforts of these men included abolishing sati, abolishing the custom of child marriage, abolishing the disfiguring of widows, introducing the marriage of upper caste Hindu widows, promoting women's education, obtaining legal rights for women to own property, and requiring the law to acknowledge women's status by granting them basic rights in matters such as adoption. The nineteenth century was a period that saw a majority of women's issues come under the spotlight and reforms began to be made. Much of the early reforms for Indian women were conducted by men. However, by the late nineteenth century, they were joined in their efforts by their wives, sisters, daughters, protégées and other individuals directly affected by campaigns such as those carried out for women education. Emboldened women gained greater autonomy through the formation of independent women's own organizations. Likewise, women writers by actively entering the scene and shifting attention from social perspective to personal ones provided a new direction for both social and fictional development. They focused on women's freedom, their rights to health and were in general critical of those practices which denigrated women.

The work of women writers is different from the work of their male predecessors. There is a shift from married or abandoned women to questions which relate to the formation of female self. Women in the beginning are to be seen an active agents of the making of their selves (an unfinished story, Swarnkumari Devi) and as an individual endowed with psychological perceptions (Sattnianadhan's novel). The novels reflect upon moral values, the question of right and wrong and to say about religious strictures which confine women with their rigid practices. Tarabai Shinde made fun of the reformist zeal and labeled it as male self indulgence. She advocated speeding up of processes of enabling women so that they could define their own directions. By beginning to focus attention on questions like choice and freedom, Swarnakumari Devi and Karupa Bai Sattnianadhan drew attention to the personhood of women. Not only this affects the work of later male writers and their construction of womanhood but also called attention to the intellectuals being a woman. In this line Rokeya Sakhawat Hossain went a step further and created an imaginary utopian world which offered comment on both the reality and aspirations of women. Belonging to an orthodox muslim family, she was able to learn both English and Bengali through sheer determination. Besides playing a dominant role in the women's movement in writing fiction, Rokeya Sakhawat Hossain also wrote two fictional works- Padmaraga in 1903 and Sultana Dreams in 1905. Both of them have stronger gender statements. Moreover she founded an education institution for the Muslim girls in Bhagalpur (Bihar) in the year 1909. Later in the year 1911, she also founded Sakhawat Memorial Balika Vidyalaya in Calcutta. There are many other female writers in the line, the writing of whom made woman emboldened enough to become a part of mainstream of life and National Movement.

In 1890's the women constantly participated in congress activities. Among them women activists like Pandita Ramabai (who was awarded by the medal of Keiser- i- Hind for community service in 1919. On 26th October, 1989, in recognition of her contribution to the advancement of Indian

women, the Government of India issued a commemorative stamp.) and female professionals like Dr. Kadambini Ganguly who organized the women's conference in Calcutta on the partition of Bengal in 1905, were notable.

The early twentieth century, further active political female participation occurred with the increase in nationalism, mass strife for self rule including the boycott of British goods and events such as the arrest of extremist leader B.G. Tilak led to the strike in bombay. Women joined the agitation, organized Swadeshi meetings, boycotted foreign articles and donated money. Swarnakumari Devi founded 'Sakhi Samiti' with the aim of educating widows to be self-reliant. She also started organizing *Mahila Shilpa Melas* which served three major purposes: Fund raising for Sakhi Samiti; Making women self reliant; and Promoting indigenous cottage industry as a mark of Swadeshi. These fairs created a new role for women in the national movement and also made self-reliance of women and national interest as complementary to each-other. Further, Sarala Debi Chaudharani stressed upon the need of a permanent women's organization. This stand of hers was widely opposed by her male counterparts. But in reply to her opponents, she blamed them for still living in the 'shade of Manu' who could not accept women's independent voices and actions. [Sarala Devi, 'A Women's Movement, *Modern Review*, October, 1911] She founded '*Bharat Stree Mahamandal*' which mainly focused on women related social and political issues but also enabled and trained women in putting their demands to the government.

During this phase, on the one hand, INC with it extremist policies wanted to involve masses in the national movement, on the other, women through participation in organizations like *Sakhi Samiti* and *Bharat Stree Mahamandal* were quite prepared to adopt the new role of active participants in the national movement. However, women's active participation during this phase in the national movement - especially in the programmes of Swadeshi and boycott - was not a nationwide feature rather region specific. Since Bengal was the major sufferer of the hostile policy of British, as a part of which it had undergone partition, the outrage against the British Rule was much stronger in the region and so women's participation in Swadeshi Movement in Bengal was remarkable. For example, about five hundred women assembled in Jenokard Village in the district of Murshidabad to protest against partition of Bengal and also to advocate use of *Swadeshi* goods. Many women belonging to nationalist families formed support groups for the movement. Besides, middle class women contributed their jewelry and money for the cause of Swadeshi.

Though Bengal stood first in women's participation in Swadeshi Movement but in other parts also there were few instances of women's participation. In Maharashtra, one hundred twenty high caste Brahmin women took part in a meeting on Swadeshi presided over by Parvati Bapat, where they adopted a resolution to boycott the foreign goods. Similarly in Punjab, women organized a Ladies Meeting at the Industrial and Agricultural Exhibition of 1909 where they spoke for promoting Swadeshi at Lahore.

Thus, during the extremist era, the Swadeshi Movement provided a new opportunity to women outside the elite circle to participate in the national movement. It cannot be denied that during this phase women moved ahead from their symbolic presence to substantial presence. Referring to this changing nature of women's participation, Forbes has rightly commented:

> *The activities of these Bengali women sympathetic to the Swadeshi movement were quite representative roles in the INC.*
>
> *different from their There the delegates appeared as the equals of men, but their true significance was symbolic ... In the protest movement against the partition of Bengal, women*

did not do the same things as men. Instead they used their traditional roles to mark a range of political activities. While the public and the private continued to exist as distinct categories, usual definitions of appropriate in each sphere were redefined and given political meaning. [Forbes, [1998]

Even the wives of Governor Generals and British administrators also contributed in the emancipation of women during those days like lady Dufferin, lady Curzon, lady Harding. Lady Dufferin founded a national organization with its regional offices in order to provide medical help to women. Later in 1914, this organization gave way to formation of Indian Woman Medical services. Similarly, lady Curzon, in order to give training to maids established Victoria Memorial scholarship fund in 1903. In 1916, it was the efforts of lady Harding which were culminated into the formation of Lady Harding Medical College in Delhi to provide medical education to women.

Anjuman-e-khawateen-e-Islam, a Punjab-based Muslim women organization was formed in 1914. It's founder member was Amir-u-Nisha. In 1914 Annie Wood Besant's influence increased in the Congress. Under her mediation the door of Congress was opened for the Extremists in 1915 resulted into famous Lucknow Session of 1916. Annie Besant also advocated emancipation of Indian women. In fact, many Indian women joined her Home Rule Movement. According to her, the Home Rule Movement was rendered tenfold more effective by the involvement of large number of women, who brought to it the uncalculating heroism, the endurance, and the self sacrifice of the feminine nature (Meera Desai, p. 135). She became the first chairperson of the Women's Indian Association formed in the year 1917. It was the first national women's organization founders of which were Margret Kugins and Dorothy Jinarajadasa. These along with Malati Patwardhan, Ammi Swaminathan, Mrs. Dadabhai and Mrs. Angujmal were its secretaries. The organization had its monthly magazine called Stri Dharma. Its main works were to build up education, religion, politics and equity bases society. W.I.A. joined itself with self respect movement in Madras. Dorothy De La Hey helped in establishing Madras's first Women's College known as Queens Mary College. It was opened by government in 1914 as the Madras College for Women. But in 1917 it was renamed Queen Mary College after the Queen Empress. It was the third oldest Women's college in the country, the second oldest in the south and the oldest in Madras city. Under Dorothy De La Hey the college was not only to play a major role in the emancipation of woman in the south but also encouraged many of its brighter students to join its neighbor, Presidency College, for higher studies. Another forerunner of women's participation in the National Movement was Sarojini Naidu. She worked as an active politician and freedom fighter. In 1917, she led the delegation to meet Mr. Montagu for women's suffrage and played a major role in decision making in whole of the National movement.

It is thus significant to underline here that the extremist phase resulted into double advantage for women. One, increase in participation of ordinary women in Swadeshi movement; the other, substantial role of women in INC in place of mere symbolic role .It was the extremist period which provided army of trained female volunteers to Gandhi to launch national movements like NCM ,CDM, QIM .Thus, one can unequivocally claim that there was a major shift in the nature of women's participation in the national movement during the extremist phase.

Conclusion:

We can conclude by summing up that the lives and conditions of the large majority of women, or their response to changing historical forces have consistently been unexplored and thus marginalised in history. The issues of child marriage, *Sati*, denial of remarriage to widow, widow tonsure, polygamy and restrictions on

women's education dominated during extremist phase of national movement. Women who participated in the extremist era of national movement revolted against their traditional roles and thus exhibited their radical approach. Extremist Movement expended the base of national movement and to some extent enlarged the scope for women's participation.

References

1. *Bala, Usha (1995) Indian Women and Social Change in India, New Delhi, Heritage Publishers.*
2. *Basu, Aparna. (1976/1990) 'The Role of Women in the Indian Struggle for Freedom", in B.P. Nanda (ed.). Indian Women: From Purdah to Modernity, Delhi, Nehru Memorial Museum and Library (NMML) and Vikas/Radiant Publishers.*
3. *Forbes, Geraldine. (1889) Women in Modern India, Cambridge, Cambridge University Press.*
4. *Heimsath, Charles H. (1964) Indian Nationalism and Hindu Social Reform, Princeton, NJ Princeton University Press,*
5. *Jana Matson Everett, Women and Social Change in India, New Delhi, Heritage Publishers, 1995.*
6. *Kaur, Manmohan. (1985) Women in India's Freedom Struggle, Delhi, Sterling Publishers.*
7. *Kumar, Radha (1993) History of Doing, New Delhi, Zubaan.*
8. *Kumar, Raj Rameshwari Devi and Romila Pruthi. (2003) Annie Besant: Founder of Home Rule Movement, Pointer Publishers.*
9. *Sandip Bandopadhyay, (1991)"Women in Bengal Revolutionary Movement", Manushi, No. 65, July-August.*
10. *Sharma, Radha Krishna. (1981) Nationalism, Social Reform and Indian Women, New Delhi Janaki Prakashan.*
11. *Susie Tharu and K. Lalitha, (ed.) (1991) Women Writings in India, Vol. I, New York, The Feminist Press.*

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees -1400 Rs

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No._____ Date_____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : **Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma** ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर